MPAMI-102

स्वरवाद्य–रागों और तालों का अध्ययन I

एम0पी0ए0 संगीत – प्रथम वर्ष

संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग

मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

MPAMI-102

स्वरवाद्य–रागों और तालों का अध्ययन I

एम0पी0ए0 संगीत – प्रथम वर्ष

संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग

मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाईपास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पीछे,
हल्द्वानी, जिला नैनीताल, पिन कोड – 263139
फोन नं0 : 05946–286000/01/02
फैक्स नं0 : 05946–264232,
टोल फ्री नं0 : 18001804025
ई–मेल : **info@uou.ac.in**
वेबसाईट : **www.uou.ac.in**

MPAMI-102

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एच0पी0 शुक्ल
निदेशक–मानविकी विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 विजय कृष्ण
पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग,
डी0एस0बी0 कैम्पस, नैनीताल,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

डॉ0 आशा पाण्डे कृष्ण
विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग,
एच0एन0बी0 गढ़वाल विश्वविद्यालय,
श्रीनगर

डॉ0 मल्लिका बैनर्जी
संगीत विभाग,
इंदिरा गांधी राष्टीय मुक्त
विश्वविद्यालय, दिल्ली

द्विजेश उपाध्याय
अकादमिक परामर्शदाता, संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन

द्विजेश उपाध्याय
अकादमिक परामर्शदाता, संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संपादन

डॉ0 विजय कृष्ण
पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग,
डी0एस0बी0 कैम्पस, नैनीताल,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

डॉ0 चन्द्रशेखर तिवारी
वरिष्ठ संगीतज्ञ,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 रेखा साह
पूर्व विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग,
डी0एस0बी0 कैम्पस, नैनीताल
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

द्विजेश उपाध्याय
अकादमिक परामर्शदाता, संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन

1.	डॉ0 महेश पाण्डे	प्रथम खण्ड़ – इकाई 1, 2 व 3 , तृतीय खण्ड़ – इकाई 1 व 2
2.	डॉ0 रेखा शाह	द्वितीय खण्ड़ – इकाई 1, 2 व 3 , तृतीय खण्ड़ – इकाई 3
3.	श्री सतीश श्रीवास्तव	चतुर्थ खण्ड़ – इकाई 1 व 2
4.	डॉ0 विजय कृष्ण	चतुर्थ खण्ड़ – इकाई 3

कापीराइट : @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
संस्करण : सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशन वर्ष : जुलाई 2013, पुनर्प्रकाशन–जुलाई 2019
प्रकाशक : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल–263139
ई–मेल : books@uou.ac.in

इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी, चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

MPAMI-102

एम0पी0ए0 संगीत – प्रथम वर्ष
स्वरवाद्य–रागों और तालों का अध्ययन I – एम0पी0ए0एम0आई0–102

खण्ड / इकाई	खण्ड / इकाई का नाम	पृष्ठ
खण्ड 1	**भारतीय स्वरलिपि पद्धति एवं भारतीय स्वर वाद्य**	
इकाई 1	स्वरलिपि पद्धतियों का अध्ययन एवं तुलना।	1–13
इकाई 2	भारतीय स्वर वाद्यों (तत् व सुषिर) की उत्पत्ति एवं विकास।	14–28
इकाई 3	तन्त्र वाद्य के घराने।	29–46
खण्ड 2	**रागों का विस्तृत अध्ययन**	
इकाई 1	राग निर्माण; वादी, सम्वादी, अनुवादी एवं विवादी स्वर का महत्व।	47–55
इकाई 2	राग एवं रागिनी की व्याख्या; रागों का समय चक्र; ग्राम और मूर्च्छना।	56–66
इकाई 3	पाठ्यक्रम के रागों का पूर्ण वर्णन, तुलना एवं स्वर समूह द्वारा राग पहचानना।	67–79
खण्ड 3	**संगीतज्ञों का जीवन परिचय, ग्रन्थ अध्ययन एवं निबंध लेखन**	
इकाई 1	संगीतज्ञों (एन0 राजम, उ0 हाफिज अली खॉ, उ0 बिस्मिल्लाह खॉ, पं0 वी0जी0जोग, अन्नपूर्णा देवी) का जीवन परिचय एवं भारतीय शास्त्रीय संगीत में योगदान।	80–93
इकाई 2	संगीत के प्रसिद्ध ग्रन्थों (नाट्यशास्त्र, बृहद्देशी, स्वरमेलकलानिधि व संगीत दर्पण) का अध्ययन।	94–110
इकाई 3	संगीत संबंधी विषयों पर निबंध लेखन।	111–119
खण्ड 4	**स्वरलिपि वताललिपि में लिखना**	
इकाई 1	मसीतखानी गत का परिचय; पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत, स्थाई व अन्तरे के तोडों को लिपिबद्ध करना।	120–149
इकाई 2	रजाखानी गत का परिचय, पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत, स्थाई व अन्तरे के तोडों को लिपिबद्ध करना।	150–178
इकाई 3	पाठ्यक्रम की तालों के ठेकों को लयकारी (दुगुन, तिगुन, चौगुन व आड) सहित लिपिबद्ध करना।	179–191

इकाई 1 – स्वरलिपि पद्धतियों का अध्ययन एवं तुलना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 स्वरलिपि पद्धति का ज्ञान एवं महत्व
1.4 भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति
 1.4.1 स्वर चिन्ह
 1.4.2 सप्तक चिन्ह
 1.4.3 स्वर मान
 1.4.4 स्वर सौन्दर्य के चिन्ह
1.5 पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर स्वरलिपि पद्धति
 1.5.1 स्वर चिन्ह
 1.5.2 सप्तक चिन्ह
 1.5.3 स्वर मान
 1.5.4 स्वर सौन्दर्य के चिन्ह
1.6 स्वरलिपि पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन
 1.6.1 प्राचीनकाल एवं आधुनिक स्वरलिपि पद्धतियों की तुलना
 1.6.2 भातखण्डे एवं पलुस्कर स्वरलिपि पद्धतियों की तुलना
1.7 आकार मात्रिक एवं पाश्चात्य स्वरलिपि का संक्षिप्त अध्ययन
 1.7.1 आकार मात्रिक स्वरलिपि पद्धति
 1.7.2 पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0आई–102) के प्रथम खण्ड की पहली इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि संगीत के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की स्वरलिपि पद्धतियों का चलन आज संगीत शिक्षा में होता है।

प्रस्तुत इकाई में स्वरलिपि पद्धतियों का वर्णन प्रस्तुत है। वर्तमान समय में संगीत के तीव्र गति से हुए प्रचार–प्रसार का महत्वपूर्ण कारण स्वरलिपि पद्धति के आधार पर संगीत शिक्षण है। आप जो भी गाते बजाते हैं, उसे लिखित रूप में स्वरलिपि पद्धति द्वारा सुरक्षित रख सकते हैं। मध्यकाल तक जब स्वरलिपि पद्धति का अविष्कार नहीं हुआ था, तब गुरू शिष्य परम्परा द्वारा संगीत सीखने में बहुत कठिनाईयाँ आती थी। परन्तु 100 वर्ष पूर्व संगीतज्ञ पं0 विष्णु नारायण भातखंडे एवं पं0 विष्णु दिगम्बर पलुष्कर के द्वारा स्वरलिपि पद्धति का जन्म हुआ। इस इकाई में स्वरलिपि पद्धति के विषय में सविस्तार वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप स्वरलिपि पद्धति के महत्व को समझा सकेंगे तथा वर्तमान शिक्षण प्रणाली इसके द्वारा जिस प्रकार सुविधाजनक हो गई है वह भी जान सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप विभिन्न रागों के स्वरूप एवं गीत रचनाओं को स्वरलिपि बद्ध कर लिखित रूप में उसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात :–

- आप बता सकेंगे कि संगीत में स्वरलिपि पद्धति का प्रयोग क्यों किया जाता है?
- आप समझा सकेंगे कि स्वरलिपि पद्धति द्वारा संगीत में रागों, बंदिशों, स्वर सौन्दर्य को लिखित रूप में सर्वसुलभ बनाया जा सकता है।
- आप रागों में बद्ध रचनाओं को सुनकर स्वयं स्वरलिपि बद्ध करने में समर्थ हो सकेंगे, जिससे नवीन रचनाओं को समझा सकेंगे।
- छात्रों में गायन–वादन हेतु अभूतपूर्व क्षमता उत्पन्न होगी।
- स्वरलिपि के द्वारा संस्थागत संगीत शिक्षा की सुव्यवस्था के साथ–साथ व्यक्तिगत संगीत शिक्षण में भी विशेष लाभ प्राप्त होगा।

1.3 स्वरलिपि पद्धति का ज्ञान एवं महत्व

भारतीय संगीत के क्षेत्र में स्वरलिपि पद्धति के जन्म से नई क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। आधुनिक काल में संगीत का जिस प्रकार प्रचार–प्रसार हो रहा है उसका एक मात्र कारण है – स्वरलिपि मूलक संगीत शिक्षा की व्यवस्था। प्राचीनकाल से मध्यकाल तक मुख्य रूप से गुरू शिष्य परम्परा द्वारा गुरू के सम्मुख शिक्षा दी जाती थी। उस समय स्वरलिपि पद्धति के चलन में न होने से शिक्षण पद्धति में सभी कुछ कंठस्थ करना होता था। उस समय मौलिक रूप में संगीत शिक्षण दिया जाता था। मध्यकाल के पश्चात आधुनिक काल के पूर्वाध में प्रसिद्ध संगीतज्ञ पं0 विष्णु नारायण भातखंडे एव पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के प्रयासों के द्वारा स्वरलिपि पद्धति का जन्म हुआ, जिससे संगीत शिक्षण अत्यन्त सुविधाजनक हो गया। मध्यकाल में संगीत में जो अंतत मतभिन्नताऐं उत्पन्न हुई थी उनके कारण संगीत के स्वरूप में कुछ बिखराव सा हो गया था और इसका प्रमुख कारण था, किसी भी चीज का लिखित रूप में प्रचलन में न होना। सम्भव है कि प्राचीन काल में स्वरलिपि का प्रयोग केवल प्रबन्धों की रचना या ध्रुपदों की रचना करने तथा उन्हें समझने हेतु किया जाता होगा, परन्तु प्रत्यक्ष शिक्षा देते समय बंदिश की स्वरलिपि शिष्यों के सन्मुख नहीं आती होगी। गुरू अपने शिष्यों को सिखाते समय भी स्वरलिपि का आधार नहीं देते थे। गुरू की रचना तीन–चार पीढ़ियों के पश्चात केवल कंठगत रूप में ही विद्यमान रहती थी। बंदिश की स्वरलिपि रचनाकार के पास होती थी या कालान्तर में नष्ट हो जाती थी। ऐसी स्थिति में बंदिश की प्रामाणिकता का कोई लिखित आधार उपलब्ध नहीं होता था। एक ही गुरू के अनेक शिष्य एक ही बंदिश को भिन्न–भिन्न तरीके से गाते हुए मिलते थे। कालान्तर से ये शिष्य – 'हमारे घराने में उक्त बंदिश इसी प्रकार से गायी जाती है या हमारे गुरू ने हमें इसी प्रकार से सिखाया है' इस प्रकार से भी कहते रहे होंगे।

स्वरलिपि के आधार पर संगीत की शिक्षा अधिक वैज्ञानिक हो गयी है। वर्तमान समय में जो संगीत का प्रचार–प्रसार तीव्र गति से हुआ है उसका एक महत्वपूर्ण कारण स्वरलिपि मूलक संगीत शिक्षण का चलन भी है। स्वरलिपि का स्थान संगीत शिक्षण में महत्वपूर्ण है। स्वरलिपि पद्धति के जन्म से पूर्व विद्यार्थी एवं शिष्य गुरू से प्राप्त ज्ञान को कंठस्थ कर लय ताल के साथ गेय पदों का गायन करता था, परन्तु इसमें बहुत अधिक समय लगता था क्योंकि जब तक शिष्य को गुरू द्वारा लिया गया पाठ कंठस्थ नहीं होता था तब तक उसे सीखते रहना पड़ता था। इतना होते हुए भी संगीत सीखने के पश्चात भी शिष्य को रागों के विषय में पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाता था। गायन–वादन का

प्रदर्शन करने हेतु यह उचित है, परन्तु इससे रागों का शास्त्रीय ज्ञान उतना नहीं हो पाता था जितना वर्तमान में स्वरलिपि पद्धति के कारण सम्भव हो सका है। आधुनिक काल में स्वरलिपि पद्धति के कारण संगीत शिक्षण अत्यन्त सुविधाजनक एवं सर्वसुलभ हो गया है। विद्यालयी संगीत शिक्षा में स्वरलिपि पद्धति द्वारा बहुत कम समय में संगीत शिक्षक एक ही साथ बहुत अधिक विद्यार्थियों को भली—भांति संगीत शिक्षा दे सकते हैं। संगीत शिक्षक विद्यार्थियों को प्रयोगात्मक रूप से राग एवं अन्य रचनाओं को सिखाने से पूर्व इनके गीतों की स्वरलिपि लिखवा देते हैं तथा इसके उपरान्त गेय रचना की पक्तियों को स्वर लिपि के अनुसार गाकर समझाते हैं जिसका अनुकरण सभी छात्र करते हैं। इस पद्धति से सरलतापूर्वक विद्यार्थी लगन से अपने पाठ को सीखते है। स्वरलिपि पद्धति के द्वारा गीत के विभिन्न अंग स्थायी, अन्तरा आदि के प्रत्येक अव्यव में स्वरों का प्रयोग होता है तथा स्वरों में विश्रान्ति के स्थानों को भी विद्यार्थी भली—भांति समझ लेते हैं। मात्र प्रयोगात्मक दृष्टि से अगर स्वरलिपि का आश्रय न लेते हुए संगीत शिक्षण किया जाता है तब उसमें अधिक समय की आवश्यकता होती ही है, साथ में इस विषमता से गायन व वादन में वैज्ञानिकता का भी ह्रास होने लगता है। पुराने समय में गुरू—शिष्य परम्परा में केवल गा—बजा कर ही संगीत शिक्षण होता आया है। परन्तु वर्तमान समय में यह सम्भव नहीं है। आजकल घरानेदार संगीत शिक्षण में भी स्वरलिपि पद्धति का पूर्ण रूप से प्रयोग होने लगा है क्योंकि आज गुरू एवं शिष्य दोनों के पास ही संगीत शिक्षण हेतु अधिक समय नहीं रहता तथा शिष्य को गुरू के सम्मुख सीखने के पश्चात अभ्यास हेतु यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि वह अपने सबक को लिपिबद्ध करके निरन्तर उसका गायन, वादन कर सके। विद्यालयों में स्वरलिपि पद्धति के अभाव में संगीत शिक्षण असम्भव है। क्योंकि यहाँ एक ही कक्षा में बहुत विद्यार्थी होते हैं जिन्हें अलग—अलग प्रयोगात्मक रूप से सिखाने के लिए बहुत अधिक समय की आवश्यकता होती है। समय के अभाव में कक्षा के प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी बंदिश कंठस्थ करवाना आज के शिक्षकों को सम्भव नहीं है, क्योंकि निर्धारित अवधि में निर्धारित पाठ्यक्रम भी पूरा करना होता है। अतः बंदिश की स्वरलिपि समझाकर और उसका आधार देकर विद्यार्थियों से कम समय में अधिक और सही बंदिशें निकाली जा सकती है। विद्यार्थियों को जो भी सिखाना है, उसका आधार उन्हें समझाने से वे अल्पावधि में अधिक शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

स्वरलिपि का आधुनिक शिक्षा में अत्यधिक उपयोग यह भी है कि जो विद्यार्थी थोड़ी बहुत संगीत शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं वे भी अन्य कई पुस्तकों में लिखित बंदिशों को गा—बजा सकने में कुछ अंश में सफल होते हैं।

1.4 भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति

हिन्दुस्तानी संगीत में भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति उत्तम मानी जाती है। इसे लिखना एवं पढ़ना विष्णु दिगम्बर पलुष्कर पद्धति की अपेक्षा सरल एवं सुगम है। दक्षिण भारत में पलुष्कर पद्धति का चलन है परन्तु उत्तर भारत में मुख्य रूप से भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति का प्रयोग होता है।

1.4.1 स्वर चिन्ह :—

(i) शुद्ध स्वरों के लिए इस पद्धति में कोई चिन्ह नहीं होता है।
जैसे — रे ग म प स्वर, चिन्ह रहित हैं अर्थात यह शुद्ध हैं।

(ii) कोमल स्वरों के लिए स्वर के नीचे आड़ी रेखा खींच दी जाती है।
जैसे — रे ग ध, यह स्वर कोमल कहलाते हैं।

(iii) तीव्र स्वर जो मात्र 'म' स्वर ही होता है इसको दर्शाने के लिए 'म' स्वर के ऊपर एक खड़ी रेखा खींच दी जाती है। जैसे — म'

1.4.2 सप्तक चिन्ह :–

(i) सप्तक को दर्शाने के लिए भी निम्न चिन्ह होते हैं। मध्य सप्तक के स्वरों में कोई चिन्ह नहीं होता है। जैसे – रे ग म । यह स्वर चिन्ह रहित होने से मध्य सप्तक के स्वर कहलाएगे।

(ii) मन्द्र सप्तक के स्वरों को दर्शाने के लिए इन स्वरों के नीचे एक बिन्दु लगा दिया जाता है। जैसे – ऩी ध़ प़ । यह स्वर मन्द्र सप्तक के हैं।

(iii) तार सप्तक के स्वरों के लिए स्वरों के ऊपर एक बिन्दु लगा देते हैं। जैसे – गं मं पं । इन स्वरों को तार सप्तक के स्वर कहेंगे।

1.4.3 स्वर मान :– स्वर मान के लिए निम्न चिन्हों से उन्हें दर्शाया जाता है।

1 मात्रा के लिए कोई चिन्ह नहीं होता है, जैसे	स
1½ मात्रा को दर्शाने के लिए –	स–रे
2 मात्रा को दर्शाने के लिए –	स–रे–
½ मात्रा को दर्शाने के लिए –	रे ग म प
⅓ मात्रा को दर्शाने के लिए –	रे ग म
1/6 मात्रा को दर्शाने के लिए –	रेगमपधप

1.4.4 स्वर सौन्दर्य के चिन्ह :–

(i) स्वर सौन्दर्य को दर्शाने के लिए स्वर में निम्न प्रकार चिन्ह लगाए जाते हैं। मींड को दर्शाने के लिए स्वरों के ऊपर अर्द्धचन्द्राकार चिन्ह लगाते हैं। जैसे – प ग

(ii) कण स्वर को दर्शाने के लिए मुख्य स्वर के ऊपर कण स्वर को सूक्ष्म रूप में लिख देते हैं, जैसे मप

(iii) खटका को दर्शाने के लिए स्वर को कोष्ठक में लिखते हैं, जैसे – (प)

खटका का अर्थ यह है कि मुख्य स्वर के आगे व पीछे के स्वर को लिया जाता है, जैसे – (प) को दर्शाया है तब उसको इस प्रकार लेंगे – **(ध प म प)**

(iv) गीत उच्चारण के लिए निम्न चिन्ह प्रयुक्त किए जाते है, जैसे – **श या ऽ ऽ म**

स्वरलिपि पद्धतियों का विशेष महत्व है परन्तु भारतीय शास्त्रीय संगीत की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए या किसी भी रचना को पूर्ण रूप से लिपिबद्ध करना किसी भी स्वरलिपि पद्धति के लिए असंभव है।

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. स्वरलिपि पद्धति का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. भातखंडे स्वरलिपि पद्धति में स्वर चिन्हों को बताइये।

ख) एक शब्द में उत्तर दीजिए :—

1. कोमल स्वरों में कौन सा चिन्ह प्रयोग होता है?
2. तार सप्तक के स्वरों के ऊपर कौन सा चिन्ह लगाते हैं?
3. मींड़ दर्शाने के लिए किस प्रकार का चिन्ह लगाते हैं?

ग) सत्य/असत्य बताइये :—

1. तीव्र मध्यम में स्वर के नीचे रेखा लगती है।
2. मध्य सप्तक के लिए स्वरों में कोई चिन्ह नहीं लगता है।
3. मन्द्र सप्तक में स्वरों के ऊपर बिन्दु लगाते हैं।

1.5 पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर स्वरलिपि पद्धति

उत्तर भारत में भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति का ही चलन है। परन्तु दक्षिण भारत में पूर्ण रूप से पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर स्वरलिपि पद्धति का प्रयोग बहुतायत में होता है। पलुस्कर पद्धति भातखण्डे पद्धति से थोड़ी भिन्न तथा उसके अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक प्रतीत होती है। पलुस्कर पद्धति में मात्राओं का लेखन सूक्ष्मता के साथ होता है। उन्होंने पाश्चात्य पद्धति से मिलते जुलते कई पृथक चिन्हों का प्रयोग किया है।

1.5.1 स्वर चिन्ह :—

1. शुद्ध स्वरों के लिए इस पद्धति में कोई चिन्ह नहीं होता है। जैसे — रे ग म प स्वर चिन्ह रहित हैं अर्थात यह शुद्ध हैं।
2. कोमल स्वरों के लिए स्वर के नीचे हलन्त लगाया जाता है। जैसे — रे् ग् ध्, यह स्वर कोमल कहलाते हैं।
3. तीव्र स्वर जो मात्र 'म' स्वर ही होता है इसको दर्शाने के लिए 'म' स्वर के नीचे हलन्त खींच दिया जाता है। जैसे — म्र

1.5.2 सप्तक चिन्ह :—

1. सप्तक को दर्शाने के लिए भी निम्न चिन्ह होते हैं। मध्य सप्तक के स्वरों में कोई चिन्ह नहीं होता है। जैसे — रे ग म । यह स्वर चिन्ह रहित होने से मध्य सप्तक के स्वर कहलाएगें।
2. मन्द्र सप्तक के स्वरों को दर्शाने के लिए स्वरों के ऊपर एक बिन्दु लगा दिया जाता है। जैसे — निं धं पं । यह स्वर मन्द्र सप्तक के हैं।
3. तार सप्तक के स्वरों के लिए स्वरों के ऊपर एक रेखा लगा देते हैं। जैसे — ग' म' प' इन स्वरों को तार सप्तक के स्वर कहेंगे।

1.5.3. स्वर मान :— स्वर मान के लिए निम्न चिन्हों से उन्हें दर्शाया जाता है।

1 मात्रा के लिए पड़ी रेखा से रेखांकित किया जाता है, जैसे — स

1½ मात्रा को दर्शाने के लिए, स ० रे
०

2 मात्रा को दर्शाने के लिए, स रे
ऽ ऽ

½ मात्रा को दर्शाने के लिए,	रे	ग	म	प
	o	o	o	o
⅓ मात्रा को दर्शाने के लिए,	रे	ग	म	
	⅓	⅓	⅓	
1/6 मात्रा को दर्शाने के लिए,	रे	ग	म	
	1/6	1/6	1/6	

1.5.4 स्वर सौन्दर्य के चिन्ह :–

(i) स्वर सौन्दर्य को दर्शाने के लिए स्वर में निम्न प्रकार चिन्ह लगाए जाते हैं। मींड को दर्शाने के लिए स्वरों के उपर अर्द्धचन्द्राकार चिन्ह लगाते हैं, जैसे– प ग

(ii) कण स्वर को दर्शाने के लिए मुख्य स्वर के ऊपर कण स्वर को सूक्ष्म रूप में लिख देते हैं, जैसे [म]प

(iii) खटका को दर्शाने के लिए स्वर को कोष्ठक में लिखते हैं, जैसे – (प)

खटका का अर्थ यह है कि मुख्य स्वर के आगे व पीछे के स्वर को लिया जाता है, जैसे – (प) को दर्शाया है तब उसको इस प्रकार लेगे **(ध प म प)**

(iv) गीत उच्चारण के लिए निम्न चिन्ह प्रयुक्त किए जाते है, जैसे – **श या – – म**

आधुनिक संगीत शिक्षा में स्वरलिपि का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है। पुरानी बंदिशों की शिक्षा देने हेतु संग्रहित बंदिशों का आधार लिया जाता है। अलग–अलग घरानों में या विद्यालयों में संगीत सीखकर शिक्षक के पद पर कार्य करने वाले अध्यापकों को अपने शिष्यों को शिक्षा देने में सुलभता हो सके इस कारण पाठ्यक्रम की पुस्तकों में स्वरलिपि सहित राग की बंदिशें दी जाती हैं। इसका एक कारण यह भी है कि राग की निश्चित बंदिश सभी विद्यार्थियों को निश्चित तरीके से सिखायी जा सके।

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. विष्णु दिगम्बर स्वरलिपि पद्धति का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. विष्णु दिगम्बर स्वरलिपि पद्धति में स्वर चिन्हों को बताइये।

ख) एक शब्द में उत्तर दो :–

1. कोमल स्वरों में कौन सा चिन्ह प्रयोग होता है?
2. तार सप्तक के स्वरों के ऊपर कौन सा चिन्ह लगाते हैं?
3. मींड़ दर्शाने के लिए किस प्रकार का चिन्ह लगाते हैं?

1.6 स्वरलिपि पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन

संगीत के गेय या वाद्य रूप को स्वर, तालबद्ध एवं शास्त्रीय परम्परागत रूप में सुरक्षित और गुरू—शिष्य परम्परा को चिरस्थायी अक्षुण्ण बनाये रखने की एक सुबोध परम्परा है नोटेशन पद्धति। यह स्वरलिपि बद्ध गायन और वाद्य की परम्परा यूरोपीय संगीत पद्धति में भी प्राप्य है। भारतीय संगीत में उपलब्ध इन स्वरलिपि पद्धतियों को शायद यूरोपीय नोटेशन सिस्टम से ही अधिक प्रेरणा मिली है। जो भी हो, भारतवर्ष में मूलतः दो शैलियाँ प्रचलित है— उत्तर भारतीय और कर्नाटकीय। उत्तर भारत में प्रधानतः भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति तथा दक्षिण में विष्णु दिगम्बर पलुस्कर स्वरलिपि पद्धति का चलन है।

1.6.1 प्राचीनकाल एवं आधुनिक स्वरलिपि पद्धतियों की तुलना — हिन्दुस्तानी संगीत स्वरलिपि की पद्धति कोई नई वस्तु नहीं है। वैदिक वाड़गमय में मंत्र पढ़ने में आवाज़ की उच्चता—नीचता अर्थात् उदात्त अनुदात्त के चिन्ह लिखे ही नहीं जाते थे वरन् हस्त संकेत में भी होते थे। षड्ज, ऋषभ, गाँधार, मध्यम, इत्यादि सप्तस्वरों के नाम छोटे करके उनको स, रि, ग, म इत्यादि कहना भी एक स्वर संकेत(स्वरलिपि) की ही प्रणाली है। जबसे षड्ज, ऋषभ, इत्यादि संज्ञायें प्रचार में आई तभी से संगीत ग्रन्थों में उनको छोटा करके स, रि इत्यादि छोटे नामों से पुकारने लगे। उनके शुद्ध विकृत भेदों के लिये कोई चिन्ह ग्रन्थों में नहीं होते थे। इसका कारण यह है कि स्वर 'रागों' में या 'जातियों' में आते हैं। प्रत्येक 'जाति' के स्वरों की शुद्ध—विकृत अवस्थायें जाति के ग्राम—मूर्छना अथवा राग के 'मेलों' से निश्चित होती थी, अतएव उनको और विशेष चिन्हों की आवश्यकता नहीं थी। इसका उदाहरण इस प्रकार समझिये कि 'बागेश्री' 'काफी' मेल से उत्पन्न हुआ है इतना कहने से ही उसमें गंधार, निषाद, कोमल एवं बाकी सब स्वर शुद्ध निश्चित मान लिये जाते थे। गंधार, निषाद को उनकी कोमल अवस्था दिखलाने के लिये विशेष चिन्ह नहीं थे। इसलिए पुराने ग्रन्थों में विकृत स्वरों के लिये चिन्ह नहीं है।

संगीत रत्नाकर में मन्द्र तथा तार सप्तक के स्वरों के लिये चिन्ह है, मन्द्र स्वरों के ऊपर बिन्दी होती है एवं तार स्वरों के ऊपर एक खड़ी लकीर होती है। गीत के शब्द के अन्तिम स्वर के ठहराव के लिये उसके आगे पूज्य दिया जाता है। एक मात्रा के अवकाश में आने वाले अनेक स्वर एक साथ छोटे अक्षरों में लिखे जाते हैं। रत्नाकर के स्वराध्याय में सातवें जाति प्रकरण में 'पंचमी' नाम की जाति का गीत ऐसे लिखा गया है :—

पा धनि नी नी मा नी मा पा	1	गा गा सा सा मां मां पां पां	2
ह र ० मू ० र्ध जा ० न		नं म हे ० श म म र	
पां पां धां नीं नीं नीं गा सा	3	पा मा धा नी निध पा पा पा	4
प ति बा ० हु स्तं ० भ		न म नं ० तं ० ० ०	
पा पा री री री री री री	5	मां निंग सा सध नी नी नी नी	6
प्र ण मा ० मि पु रू षा		मु ख० प झ० ० ल ० क्ष्मी	
सा सा सा मा पा पा पा पा	7	धा मा धा नी पा पा पा पा	8
ह र मं ० बि का ० प		ति म जे ० यं ० ० ०	

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि गीत के शब्द नीचे और स्वर ऊपर लिखे हुये हैं। पूरे एक मात्रा अवकाश के स्वर दीर्घ लिखे गये हैं जैसे सा, री, गा, मा इत्यादि। आधे मात्रा अथवा उससे भी कम अवकाश के स्वर ह्रस्व लिखे जाते हैं जैसे धनि, निध, सध इत्यादि। मन्द्र स्वर ऊपर बिन्दी देकर लिखे गये हैं और तार स्वर ऊपर खड़ी लकीर देकर लिखे हुये हैं।

स्वरलिपि साधन है, साध्य नहीं। सीढ़ी है मंजिल नहीं अतएव वह सीढ़ी सरल होनी चाहिये। स्वरलिपि क्लिष्ट होने से संगीत पढ़ने में कठिनाई होती है। हिन्दुस्तानी संगीत की स्वरलिपि अति सरल है। वैदिक 'उदात्त', 'अनुदात्त' संकेत एवं रत्नाकर की स्वरलिपि के आधार पर वह साधी हुई है। उसका विचार आगे किया जाता है।

किसी भी गीत को अथवा वाद्य प्रबन्ध को स्वर ताल चिन्हों के सहित लिखने की रीति को स्वरलिपि कहते हैं। पुराने ग्रन्थों की भाँति हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में भी स्वर छोटे नामों से पुकारे तथा लिखे जाते हैं जैसे सा, रे, ग, म, प, ध, नि।

हिन्दुस्तानी संगीत का शुद्ध मेल 'बिलावल' माना गया है क्योकि संगीत सीखने वालों को पहले इसी ठाठ के स्वरों की तालीम दी जाती है। बिलावल(शुद्ध मेल) के स्वर ये हैं– स–री तीव्र–ग तीव्र–म कोमल–प–ध तीव्र–नी, तीव्र–यह सब स्वर शुद्ध मेल के स्वर हैं इसी लिये शुद्ध स्वर कहलाते हैं।

शुद्ध स्वरों के लिये हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के स्वरलिपि में कोई चिन्ह नहीं होता। वह इस प्रकार लिखे गये हैं। स, री, ग, म, प, ध, नी। बाकी पाँच स्वर अर्थात् री कोमल, ग कोमल, तीव्र म, कोमल ध, कोमल नी, विकृत स्वर कहलाते हैं। विकृत के मानी बदले हुये, यानि वह अपने शुद्ध स्थान से हटे हुए होते हैं। विकृत स्वरों के लिए चिन्ह होता है। कोमल विकृत का चिन्ह स्वर के नीचे आड़ी लकीर देने से होता है जैसे री – कोमल री; ग – कोमल ग; ध – कोमल ध; नि –कोमल नी। तीव्र विकृत केवल एक स्वर मध्यम है। उसका चिन्ह ऊपर खड़ी लकीर देने से होता हैं जैसे ' म' – तीव्र म।

यही दो स्वर चिन्ह वैदिक स्वर संकेत में आते हैं। अनुदात्त यानी वो अखर जो नीचे के स्वरों में कहे जाते हैं उनके नीचे आड़ी लकीर दी जाती है। ऋग्वेद में स्वरित यानी ऊँचे स्वरों में कहने वाले अक्षरों के ऊपर खड़ी लकीर दी जाती है।

हिन्दुस्तानी संगीत में स्वरों के लिखने के लिये वैदिक चिन्ह तीव्र कोमल के लिये और रत्नाकर के चिन्ह मन्द्र तार के लिये, थोड़े अन्तर के साथ, लिये गए हैं। रत्नाकर में मन्द्र सप्तक के स्वरों के ऊपर बिन्दी होती है, वही बिन्दी हिन्दुस्तानी संगीत में तार स्वरों के ऊपर और मन्द्र स्वरों के नीचे दी जाती है। ऊपर बिन्दी रखने से वाद्य संगीत का संकेत होता है क्योंकि वाद्यों में मन्द्र सप्तक के स्वर ऊपर की तरफ बजते हैं। रत्नाकर के तार सप्तक के स्वर का चिन्ह तीव्र विकृति के लिये उपयोग किया गया है। यह विकृति केवल मध्यम स्वर को ही होती है, अतएव मध्यम के ऊपर 'म' ऐसी लकीर देकर तीव्र मध्यम समझा जाता है। तार सप्तक के स्वरों के ऊपर बिन्दी रखने से बड़ी सरलता हो गई है।

रत्नाकर के अनुसार हिन्दुस्तानी संगीत स्वरलिपि में भी गीत के अक्षरों के ऊपर उनके स्वर लिखे जाते हैं। इसी ग्रन्थ के अनुसार एक मात्रा के अन्दर आने वाले सब स्वर एक साथ लिखे जाते हैं। रत्नाकर में एक मात्रा काल के स्वर दीर्घ एवं आधी मात्रा या उससे भी कम अवकाश वाले स्वर ह्रस्व करके लिखे गये हैं और वह सब एक साथ लिखे गये हैं। हर एक स्वर या अक्षर का अवकाश अलग–अलग चिन्हों से नहीं दिखलाया गया। हिन्दुस्तानी संगीत स्वरलिपि में एक पूरी मात्रा आकार के स्वरों की अपेक्षा एक मात्रा से कम कालावधि के स्वर छोटी आकृति करके लिखे जाते हैं। यह छोटे स्वर सब ऐसे एक 'कंस' में लपेटे जाते हैं। उदाहरणार्थ 'ग' यह एक पूरी मात्रा का एक स्वर हुआ, 'गम' इसमें आधी मात्रा का एक एक ऐसे दो स्वर, 'गमप' इसमें तिहाई मात्रा का एक ऐसे तीन स्वर एवं 'रेगमप' में एक चौथाई मात्रा का एक एक ऐसे चार स्वर हुए।

भारतीय संगीत की विशेषता यह है कि उसमें स्वरोच्चार करते समय प्रायः स्वर का आरम्भ क्या गाने में क्या बजाने में ठीक उसी पर नहीं किया जाता। किसी और ऊँचे या नीचे स्वर से उठकर उद्दिष्ट स्वर पर आया जाता है। यह हमारे संगीत में बहुत महत्वपूर्ण है। वरन् यूं कहिये कि इनमें हमारे संगीत का प्राण है। पुराने ग्रंथों में स्वरोच्चार के विषय में 'गमक' समझाये गये हैं।

<u>1.6.2 भातखण्डे एवं विष्णु दिगम्बर पलुस्कर स्वरलिपि पद्धतियों की तुलना</u> — भातखण्डे जी और विष्णु दिगम्बर जी का आर्विभाव ऐसे युग में हुआ जिसको अन्धकार युग कहा जा सकता है। कला और संस्कृति के क्षेत्रों में उस समय शिथिलता छायी हुई थी। संगीत और विलासप्रियता का घनिष्ठ सम्बन्ध था। मुस्लिम शासन काल में ग्रन्थकारों और कलाकारों के पारिवारिक सम्बन्ध के अभाव के साथ ही कला को प्राप्त मुस्लिम आश्रय के फलस्वरूप संगीत विज्ञान और संगीत कला के मध्य एक बहुत बड़ी खाई उत्पन्न हो गयी थी। मुस्लिम सत्ता के उपरान्त ही ब्रिटिश सत्ता का पदार्पण हुआ तथा ब्रिटिश राज्य काल में तो भारतीय संगीत को लोग पूर्णतः विस्मृत कर चुके थे। इसी कार्य को, जो असम्भव प्रतीत होता था, पण्डित भातखण्डे ने अपने हाथ में लिया। संगीत के प्रति अपार प्रेमवश, उन्होंने अपना पूर्ण जीवन भारतीय संगीत, कला एवं विद्या के उत्थान के लिये अर्पित कर दिया। इन दोनों महापुरूषों के सामने दो समस्याऐं थी। जनसाधारण के लिये शास्त्रीय संगीत सुलभ कराना और उसे लोकप्रिय बनाना तथा संगीत की गायन—वादन शैलियों का सुधार और वैज्ञानिक नोटेशन पद्धति का प्रचलन। नोटेशन पद्धति से यद्यपि किसी कलाकार का निर्माण नहीं होता, बल्कि यह तो केवल उस सीमा तक सहायता करती है जहाँ तक जनता में संगीत के प्रति रूचि में अभिवृद्धि होती है।

भातखण्डे जी और विष्णु दिगम्बर जी का तो यही लक्ष्य था कि संगीत की प्रतिष्ठा बढ़े और घर—घर में संगीत का बोलबाला हो। शिक्षित वर्ग के बच्चों के जीवन में संगीत घुल—मिल जाये। वे यह भी चाहते थे कि विश्वविद्यालयों और कालेजों के पाठ्यक्रमों में संगीत समावेश हो। स्वरलिपि के पीछे एक उद्‌देश्य यह भी था कि भारतीय संगीत की सांस्कृतिक परम्परा के अनन्त वैभव को सामान्य जन के समक्ष उपस्थित किया जाये।

इस दृष्टिकोण से 19वीं शती के अन्तिम पचास वर्ष से 20वीं शती के प्रथम पचास वर्ष तक को भारत के पुनर्जागरण का काल कहा जा सकता है। जिस काल में इन्होंने जन्म लिया, उस समय न तो संगीत का कोई शास्त्रीय विवरण बतलाया जाता था, न ही कोई व्यवस्थित स्वरलिपि। ऐसी स्थिति में भातखण्डे जी ने प्राचीन संगीत ग्रन्थों का अध्ययन किया और भारत का भ्रमण कर संगीतज्ञों से भेंट की। पुस्तकालयों में जाकर संगीत ग्रन्थ पड़े। तदोपरान्त उन्होंने अपना संशोधन कार्य प्रारम्भ किया। एक सबल स्वरलिपि का ढंग निकाला और 'श्री मलक्ष्यसंगीतम्', क्रमिक पुस्तक मलिकायें इत्यादि कई पुस्तकें लिखी। जिन वस्तुओं को योग्य और निपुण उस्ताद किसी को नहीं सिखलाते थे, उनका संग्रह करके अत्यन्त सरल स्वरलिपि में लिखकर छः भागों में पण्डित जी छोड़ गये हैं। परम्परागत रागदारी गीत, ध्रुपद, ख्याल, तरानें, ठुमरियाँ, टप्पे इत्यादि को सीखकर उन्होंने स्वर लिपिबद्ध किया।

The two outstanding figures pandit Vishnu Digambar and Pandit V.N. Bhatkhande who realy personified in themselves the various aspects of the musical activity. The two 'Vishnus' of Maharasthra together represent the first great attempt at the revival of Hindustani Music in modern times. They achieved success through public concerts by opening music schools; through evoling a compact system of Notation.

इनसे पूर्व श्री सुरेन्द्र मोहन टैगोर, कृष्णवन्धोपाध्याय, क्षेत्रमोहन गोस्वामी आदि के द्वारा भी वाद्य संगत को स्वर लिपिबद्ध कर लिखने का प्रयास हुआ, किन्तु यह सब प्रयत्न कितने सफल हुए यह कहना दुष्कर है। आज समस्त उत्तर भारत में शिक्षण प्रशिक्षण के शिक्षा क्रम में इसी क्रमिक साहित्य को प्रमाण माना जाता है। उत्तर भारत में सामान्य विद्यार्थियों में भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति का ही प्रचलन है। विष्णु दिगम्बर पद्धति इससे थोड़ी भिन्न रही है, यह अधिक वैज्ञानिक है। पलुस्कर पद्धति में मात्राओं का लेखन अधिक सूक्ष्मता के साथ किया जाता है। इन्होंने पाश्चात्य पद्धति से मिलते—जुलते विशेष प्रकार के पृथक—पृथक चिन्ह बनाये, जबकि भातखण्डे जी ने 1—1 मात्रा के अन्तर में ही विभिन्न मात्रा के स्वर चिन्हों को दर्शाने का प्रयत्न किया, इन्होंने विष्णु दिम्गाबर जी के समान कुछ विशेष चिन्ह प्रयोग नहीं किये। दोनों पद्धतियों की तुलना निम्न सारणी द्वारा स्पष्ट हो जायेगी, जिसमें ताल पक्ष के चिन्हों को भी दर्शाया गया है।

भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति	विष्णु दिगम्बर पलुस्कर स्वरलिपि पद्धति
स्वर चिन्ह	**स्वर चिन्ह**
शुद्ध स्वर– रे ग म (चिन्ह रहित)	शुद्ध स्वर– रे ग म (चिन्ह रहित)
कोमल स्वर– रे ग म	कोमल स्वर– रे् ग् म्
तीव्र स्वर– म'	तीव्र स्वर– म्र
सप्तक चिन्ह	**सप्तक चिन्ह**
मध्य सप्तक– ग म प(चिन्ह रहित)	मध्य सप्तक– ग म प(चिन्ह रहित)
मन्द्र सप्तक– ग़ म़ प़	मन्द्र सप्तक– गं मं पं
तार सप्तक– गं मं पं	तार सप्तक– ग' म' प'
स्वर मान	**स्वर मान**
1 मात्रा के लिए कोई चिन्ह नहीं होता है, जैसे– स	1 मात्रा के लिए पड़ी रेखा से रेखांकित किया जाता है, जैसे– स
1½ मात्रा को दर्शाने के लिए, स–रे	1½ मात्रा को दर्शाने के लिए, स रे ०
2 मात्रा को दर्शाने के लिए, स– रे–	2 मात्रा को दर्शाने के लिए, स रे
½ मात्रा को दर्शाने के लिए, रे ग	½ मात्रा को दर्शाने के लिए, रे ग म प (० ० ० ०)
⅓ मात्रा को दर्शाने के लिए, रे ग म	⅓ मात्रा को दर्शाने के लिए, रे ग म (⅓ ⅓ ⅓)
1/6 मात्रा को दर्शाने के लिए, रेगमपधप	1/6 मात्रा को दर्शाने के लिए, रे ग म (1/6 1/6 1/6)
ताल चिन्ह–	ताल चिन्ह–
सम X	सम 1
खाली 0	खाली +
विभाग ।	विभाग ।
ताली–	ताली
ताली संख्या	विभाग संख्या
जैसे– 2, 3, 4	जैसे– 1, 5, 13

भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति एवं पं0 पलुस्कर पद्धतियों में कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैः—

1. दोनों पद्धतियाँ छपाई की दृष्टि में सरल एवं सस्ती है।
2. दोनों पद्धतियों को आसानी से पड़ा एवं समझा जा सकता है।
3. स्वरों के साथ उनके कोमल तथा तीव्र होने का चिन्ह दिया रहता है, जिससे स्वरों की स्थिति का बोध होता है।
4. खटका, मुरकी, गमक आदि के चिन्हों का प्रयोग इन पद्धतियों में आंशिक रूप से किया जाता है।

इन दोनों पद्धतियों में कुछ विशेषताओं के साथ—साथ कुछ कमियाँ भी देखी जा सकती है।

1. दोनों पद्धतियों में नाद के छोटे—बड़े पन को दर्शाने के लिए चिन्ह का प्रयोग नहीं किया गया है।
2. इन पद्धतियों पर स्वरों पर शान्त रहने के लिए कोई चिन्ह प्रयोग में नहीं लाए गये हैं।
3. भारतीय राग में स्वरों का विशेष महत्व है, जैसे— दरबारी कान्हड़ा, मियाँ मल्हार एवं मुल्तानी आदि रागों में कोमल गान्धार विभिन्न तरीकों से लगता है। किसी में थोड़ा चढ़ा हुआ, किसी में थोड़ा उतरा हुआ। ऐसी स्थिति में इस प्रकार के स्वरों को लिपिबद्ध करने के लिए कोई विशेष चिन्ह प्रयोग नहीं किये गये हैं।

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :—

1. भातखण्डे एवं विष्णु दिगम्बर स्वरलिपि पद्धति में स्वर चिन्हों की विवेचना कीजिए।
2. संगीत रत्नाकर में वर्णित स्वरलिपि पद्धति को संक्षेप में समझाइए।

1.7 आकार मात्रिक एवं पाश्चात्य स्वरलिपि का संक्षिप्त अध्ययन

भारतवर्ष में भातखण्डे एवं विष्णु दिगम्बर स्वरलिपि पद्धति के अतिरिक्त रवीन्द्र संगीत के अन्तर्गत आकार मात्रिक तथा पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति के अन्तर्गत स्टाफ नोटेशन पद्धति का चलन है। कविरत्न रवीन्द्रनाथ ठाकुर जिन्होंने संगीत की एक नई विधा को जन्म दिया, उसी विधा का नाम है रवीन्द्र संगीत। जिसका प्रभाव सम्पूर्ण पूर्वी भारत पर तो है ही, अन्यत्र भी उसे गाया बजाया जाता है। रवीन्द्र संगीत को आकार मात्रिक स्वरलिपि पद्धति के माध्यम से लिपिबद्ध किया जाता है।

इसके साथ पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति का भी संगीत में अत्यधिक महत्व है। इसका प्रयोग वर्तमान में हमारे फिल्म संगीत में विशेष रूप से होता है। पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति में स्टाफ नोटेशन नामक पद्धति सबसे प्रमुख है। भातखण्डे पद्धति से पलुस्कर पद्धति एवं पलुस्कर पद्धति से पाश्चात्य पद्धति अधिक उत्तम है।

1.7.1 आकार मात्रिक स्वरलिपि पद्धति — रवीन्द्रनाथ के 215 गीत ऐसे है जिन्हें हिन्दुस्तानी संगीत में से रूपान्तरित किया था। ध्रुपद, ख्याल से जुड़े इन गीतों का विशेष महत्व है। रवीन्द्रनाथ ने अपने गीतों की रचना में कुल 90 राग—रागिनियों को स्थान दिया है। जिनमें भूपाली एवं भैरवी उन्हें अधिक प्रिय थे। रवीन्द्रनाथ करीब 2000 गीत लिखे है और उन्हें आकार मात्रिक नामक स्वरलिपि में लिपिबद्ध किया है। रवीन्द्रनाथ की स्वरलिपि पद्धति सरल एवं शीघ्र ग्रहण करने के योग्य है। आकार मात्रिक स्वरलिपि पद्धति में शुद्ध स्वरों में कोई चिन्ह नहीं लगाते है। इस लिपि में एक विशेष बात यह है कि कोमल एवं तीव्र स्वरों के लिए चिन्ह नहीं लगाते बल्कि स्वर का नाम बदल देते है, जैसे—

शुद्ध स्वर	कोमल स्वर
रे ग ध नि	ऋ ड़ द ण

मन्द्र सप्तक के स्वरों में स्वर के नीचे हलन्त का चिन्ह लगाया जाता है तथा तार सप्तक के स्वरों के ऊपर खड़ी रेखा खीची जाती है।

1.7.2 पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति – पाश्चात्य संगीत में किसी धुन अथवा गीत को स्वरलिपि के अनुसार ही गाया अथवा बजाया जाता है। पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति में स्टाफ नोटेशन पद्धति को ही स्वीकार किया गया है। इस पद्धति में प्रबलता के चिन्हों के प्रयोग से नाद के छोटे–बड़े पन को भी सुगमता से दर्शाया जा सकता है। इस लिपि में प्रत्येक स्वरों के साथ ही उनका काल मान भी लिपिबद्ध रहता है। विभिन्न प्रकार के सप्तकों को दर्शाने के लिए विभिन्न प्रकार के चिन्हों का प्रयोग किया जाता है। इस पद्धति में प्रारम्भ में किसी एक रेखा को मध्य सप्तक का सा मानकर उसमें विशेष प्रकार का अण्डाकार चिन्ह बना देते हैं। इसके पश्चात ऊपर के स्वरों के लिए क्रमशः ऊपर रेखा खीचते हैं तथा नीचे के स्वरों के लिए क्रमशः नीचे की ओर रेखा खीचते हैं। हर स्वर को रेखा में दर्शाने से अधिक रेखाओं की आवश्यकता होती है। अतः उसमें परिवर्तन कर एक स्वर को रेखा पर तथा दूसरे को दो रेखाओं के बीच में रखा जाता है। इस प्रकार पाश्चात्य संगीत में विद्वानों ने 11 रेखाओं का एक समूह बनाया जिसमें सप्तक के सभी स्वरों को सरलता से दर्शाया जा सके।

1.8 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि स्वरलिपि पद्धति के आने के बाद से संगीत सीखना, सुनना एवं सीखाना नितान्त सरल हो गया है। विशेष रूप से विद्यार्थियों को इससे बहुत सहायता प्राप्त हुई है। भातखंडे जी ने बड़े–बड़े संगीतज्ञों द्वारा जो संगीत सीखा एवं सुना उसे स्वरलिपि पद्धति द्वारा आज लगभग 150 वर्षों से भी अधिक समय तक सुरक्षित रखा है तथा उसका गायन आज सभी संगीत विद्यार्थी कर रहे हैं। स्वरलिपि पद्धति के माध्यम से गायक–वादक तथा संगीत शिक्षक एवं छात्र–छात्राएँ उन रागों एवं गीतों को कंठस्थ करने में सक्षम हैं जिनका अध्ययन वे पहले नहीं कर पाते थे। सामूहिक विद्यालयी संगीत शिक्षा में समानता लाने की दृष्टि से तथा प्रमाणिकता सिद्ध करने की दृष्टि से तथा प्रामाणिकता सिद्ध करने की दृष्टि से प्रचलित गायन–वादन सामग्री को सरल, सुगम स्वरलिपि का अविष्कार कर संकलित किया गया।

1.9 शब्दावली

- **सप्तक** : भारतीय संगीत में सप्तक से भाव, सात स्वरों का क्रमिक समूह है। सप्तक तीन प्रकार के होते हैं– मन्द्र, मध्य एवं तार सप्तक। मन्द्र सप्तक में आवाज भारी होती है तथा यह मध्य सप्तक के स्वरों से दुगुने नीचे होता है। मध्य सप्तक में स्वरों की आवाज न बहुत ऊँची न बहुत नीची होती है। तार सप्तक के स्वरों की आवाज मन्द्र सप्तक से चौगुनी तथा मध्य सप्तक से दुगुनी ऊँची होती है।
- **नाद का छोटा–बड़ा पन** : नाद के छोटे–बड़े पन का अर्थ है आवाज जो पैदा हो रही है वह धीरे है या जोर से उत्पन्न हो रही है। धीरे से उत्पन्न आवाज को नाद का छोटापन तथा जोर से उत्पन्न आवाज को नाद का बड़ापन कहते हैं।
- **उदात्तः** अनुदात्तः प्राचीन सामगान में प्रयोग होने वाले स्वरों का सम्बोधन।
- **कण स्वरः** मूल स्वरों का स्पर्श करने वाला स्वर।
- **खटकाः** द्रुत गति से अन्य स्वर को स्पर्श करने की क्रिया।

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.4 की उत्तरमाला :–

ख) एक शब्द में उत्तर दो :–

1. स्वर के नीचे (–) चिन्ह लगाते हैं।
2. बिन्दु (स्वर के ऊपर)
3. चिन्ह ⌒ का प्रयोग होता है।

ग) सत्य असत्य बताइये :–

1. असत्य 2. सत्य 3. असत्य

1.5 की उत्तरमाला :–

ख) एक शब्द में उत्तर दो :–

1. स्वर के नीचे हलन्त(रे्) लगाते है।
2. तार सप्तक के ऊपर खड़ी लकीर लगाते है।
3. स्वरों के ऊपर ⌒ चिन्ह लगाते हैं।

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे, (1970), *हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग 1 एवं भाग 2,* संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. पंडित जगदीश नारायण पाठक, (1996), *संगीत निबन्ध माला,* पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
3. शान्ति गोबर्धन, (1995), *संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2,* पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
4. डॉ0 अनीता सेन(1991), रवीन्द्र संगीत, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।

1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. प्रो0 हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव, *राग परिचय भाग 1 तथा 2,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. डॉ0 लक्ष्मी नारायण गर्ग(2001), राग विशारद भाग–1, संगीत कार्यालय, हाथरस।

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति के विषय में एक निबन्ध लिखिये।
2. भारतवर्ष में मुख्य रूप से कितनी स्वरलिपि पद्धतियों का चलन है? विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

इकाई 2 – भारतीय स्वर वाद्यों (तत् एवं सुषिर) की उत्पत्ति एवं विकास

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 वाद्यों की स्थिति
    2.3.1 वाद्यों की उत्पत्ति एवं विकास
    2.3.2 वाद्यों का वर्गीकरण
2.4 तत् वाद्यों की उत्पत्ति एवं विकास
    2.4.1 प्राचीन कालीन तत् वाद्य
    2.4.2 मध्य कालीन तत् वाद्य
    2.4.3 आधुनिक कालीन तत् वाद्य
2.5 सुषिर वाद्यों की उत्पत्ति एवं विकास
    2.5.1 प्राचीन कालीन सुषिर वाद्य
    2.5.2 मध्य कालीन सुषिर वाद्य
    2.5.3 आधुनिक कालीन सुषिर वाद्य
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0आई0–102) के प्रथम खण्ड की दूसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप स्वरलिपि पद्धतियों के बारे में बता सकते हैं। आप बता सकते हैं कि संगीत में वाद्यों का क्या स्थान है तथा भारतीय संगीत के अन्तर्गत कितने प्रकार के प्रमुख वाद्यों की संगत की जाती है।

प्रस्तुत इकाई में स्वर वाद्यों, जिनके अन्तर्गत तत् एवं सुषिर वाद्य आते हैं, कि प्राचीन काल से आधुनिक काल तक के विकास को प्रस्तुत किया गया है। इसमें तत् एवं सुषिर वाद्यों की उत्पत्ति, विकास एवं विभिन्न कालों में उनके स्वरूप का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप स्वर वाद्यों की विशेषताओं को समझ सकेंगे। स्वर वाद्यों की उत्पत्ति से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों को समझ सकेंगे। विभिन्न ग्रन्थों एवं कालों में जैसे वैदिक काल, रामायण काल, महाभारत काल तथा नाट्यशास्त्र, संगीत रत्नाकर, भरत भाष्यम आदि में तत् एवं सुषिर वाद्यों के तुलनात्मक अध्ययन एवं उनका विश्लेषण कर सकेंगे। विभिन्न कालों के अध्ययन से वाद्यों की संख्यात्मक वृद्धि, उनके उपयोग तथा संरचना आदि पर प्रकाश पड़ता है जो कि वाद्यों के अध्ययन के लिए प्रमुख तत्व है।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

- बता सकेंगे कि भारतीय संगीत में वाद्य वादन एवं इनके संगत की आवश्यकता क्यों है तथा इसी से संगीत की पूर्ण अभिव्यक्ति सम्भव है।
- समझा सकेंगे कि वाद्य वादन आनन्द प्राप्ति के लिए, मनोरंजन के लिए एवं मान प्रतिष्ठा के लिए किया जाता है। इसके साथ लोक गायन, नृत्य परम्परा में भी इसका विशेष महत्व है।
- प्रत्येक काल में वाद्यों की स्थिति को जान सकेंगे तथा किस प्रकार तत् एवं सुषिर वाद्यों का विकास शनै–शनै हुआ है, समझ सकेंगे।
- बता सकेंगे कि संगीत के कलात्मक पक्ष को प्रबल रूप देने में विशेष रूप से वाद्य यंत्रों का ही स्थान है।
- आदिम सभ्यता के मानव द्वारा प्रारम्भ में प्रयुक्त वाद्य अविकसित अवस्था में थे। वाद्यों का जो रूप आज दिखाई देता है उसका एक श्रृंखलाबद्ध इतिहास है तथा संगीत शास्त्र में वाद्यों को आज उच्च स्थान प्राप्त है।

2.3 वाद्यों की स्थिति

संस्कृति के उद्गम एवं विकास के साथ संगीत का उद्गम एवं विकास देखा जा सकता है। आदिम संगीत कलात्मक संगीत से अधिक दैनिक कार्यों के अधिक निकट था। आदिम मानव तभी गाता था जब वह कुछ अभिव्यक्त करना चाहता था। प्राचीन काल से मानव अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के रूप में संगीत का प्रयोग करता आ रहा है। संगीत–रचना में अभिव्यक्ति, विचार एवं भाव केवल शब्दों के माध्यम से नहीं वरन् स्वरों के माध्यम से नादात्मक अभिव्यक्ति पाते हैं। इस प्रकार वाद्य में किसी भी प्रकार से भाषात्मक शब्दों का प्रयोग नहीं होता है। अपितु नादात्मक ध्वनियों के माध्यम से वे भावाभिव्यक्ति करने में सक्षम हैं। संगीतात्मक वाद्य किसी भी राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्थान में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

भारतवर्ष में संगीत वाद्यों का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। प्राचीन काल के धार्मिक अवशेषों, शास्त्रीय ग्रन्थों, वेदकालीन वाद्य निरूपण तथा मोहनजोदड़ों की खुदाई इस तथ्य के प्रमाण हैं कि वाद्यों का प्रभावित क्षेत्र देवी–देवताओं से भी अधिक रहा है। भारत के आदि देव शंकर जी द्वारा डमरू, सरस्वती द्वारा वीणा और कृष्ण का सम्बन्ध मुरली से स्थापित करते हुए संगीतज्ञों ने वाद्यों की आध्यात्मिक परम्परा को विकसित किया है।

मानव आरम्भ से ही अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक गतिमान एवं समझदार रहा है। उसमें विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति की शक्ति रही है, जिसके माध्यम से वह निरन्तर असभ्यता से सभ्यता की ओर चलायमान रहा है। वह अपने ह्रदय की उभरती भावनाओं को सदैव गायन एवं नृत्य के माध्यम से प्रकट करता रहा है। अपनी इसी विशेषता के कारण उसने कुछ ध्वनियाँ सुनी होंगी जिसे अनजाने में ही वह उत्पन्न करता रहता था। जैसे– पृथ्वी पर चलते समय पैरों की आवाजें, दोनों हथेलियों से ताली देना, अथवा पंजों को मारने की ध्वनि, विशेष रूप से पेट, जाँघ आदि पर। सम्भवतः उसमें अपने शरीर के अंगों को ठोंक कर या पीटकर लय के प्रतिष्ठापन करने में कष्ट का अनुभव किया होगा, तब उसने प्राकृतिक रूप में उपलब्ध वस्तुओं में से कुछ का चयन कर लय के लिए उन वाद्यों का सृजन किया होगा।

2.3.1 वाद्यों की उत्पत्ति एवं विकास – संगीत की विद्यमानता आदिकाल से ही थी। विभिन्न वाद्यों की उत्पत्ति में प्रकृति का योगदान रहा है। आदि मानव के स्वानुभूत साधनों में इनका स्थान रहा है और प्रकृति पशु–पक्षियों, वृक्ष लताओं के साहचर्य में रहते हुए आदिवासियों ने उन वाद्यों को अपने मनोरंजन का साधन बनाया। मानव समय–समय पर होने वाले उत्सवों में स्वकल्पित तथा निर्मित वाद्यों से समयानुकूल अपने मनोरंजन का साधन जुटाता रहा है और यह निर्विवाद है कि आवश्यकता अविष्कार की जननी है। लोक में वाद्यों के प्रचलन को नियमित करने के उद्देश्य से शास्त्रकारों ने इन वाद्यों का

विश्लेषण और वर्गीकरण कर वाद्यों को शास्त्रीय रूप प्रदान किया। यही वाद्यों की उत्पत्ति का रहस्य है।

आदिम सभ्यता के समय मानव द्वारा प्रारम्भ में प्रयुक्त वाद्य भी अविकसित अवस्था में थे। वाद्यों का जो रूप आज दृष्टिगोचर होता है, वहाँ तक पहुँचने में वाद्यों का एक श्रृंखलाबद्ध इतिहास है। प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक काल के वाद्यों का यदि विश्लेषणात्मक अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि प्राचीन काल के वाद्य पहले बहुत ही साधारण थे। धीरे–धीरे उनमें क्लिष्टता तथा बजाने में कुशलता आती गई और क्रमशः संगीत का विकास होता गया। प्रारम्भ में वाद्यों के रूप में सौन्दर्यात्मकता का अभाव था। उनकी महत्वपूर्ण ध्वनियाँ तेज नादयुक्त तथा तीखी थीं। उनके वाह्य रूप गोलाकार तथा नुकीले थे। परन्तु धीरे–धीरे मानव ने अपनी बुद्धि के विकास के साथ वाद्यों की सामग्री, बनाने के ढंग व बजाने के प्रयोग में परिवर्तन किया। प्रारम्भ में मानव के भाव भी अपरिपक्व थे। धीरे–धीरे उनमें परिष्कार हुआ और अभिव्यक्ति के प्रयोग में भी भिन्नता आने लगी। संगीत शास्त्र में वाद्यों को जो उच्च स्थान प्राप्त हुआ है, वह कई वर्षों के परिश्रम एवं संशोधन का फल है।

प्रागैतिहासिक काल में भी संगीत का प्रचलन रहा है। प्रागैतिहासिक मानव उस समय असंस्कृत तथा असभ्य था परन्तु उसे नृत्य तथा संगीत से प्रेम था। इस काल की कोई सूत्रबद्ध सामग्री उपलब्ध नहीं होती है। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी ही विशाल प्रागैतिहासिक सभ्यता का निदर्शन सिन्धु तथा हड़प्पा जैसे स्थानों में उपलब्ध है। मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा में जो संगीत वाद्य मिले हैं उनका हिन्दू–सभ्यता से लेकर इतिहास की रचना तक सम्बन्ध है। प्रागैतिहासिक काल में भी सगीत का प्रचलन रहा है। प्रागैतिहासिक मानव उस समय असंस्कृत तथा असभ्य था, उसे नृत्य तथा संगीत से प्रेम था। अपरिष्कृत संगीतात्मक वाद्य जैसे– लकड़ी, मिट्टी के ड्रम के समान बाँस की अथवा हड्डी की बनी बाँसुरी वह संगीत के साथ प्रयुक्त करता था। नृत्य करते समय उसमें उछल–कूद का भाव अधिक होता था तथा तालियों द्वारा वह लय को दर्शाता था। प्रागैतिहासिक मानव वीणा–वाद्य में तंत्री के लिए ताड़ की पत्तियों के रेशे, घास तथा जानवरों की आँतों का प्रयोग करता था। आदि मानव के नृत्य तथा गीत स्वतः उसकी आन्तरिक भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम थे। अविकसित अवस्था के रूप में आदिम मानव के वाद्यों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है– चमड़े से मढ़े, सुषिर एवं तत्। वाद्यों के विकास के क्रम में प्रोफेसर वॉलशेक की मान्यता रही है कि पहले ताल–वाद्य फिर तत्–वाद्य के रूप में तीर–कमान और फिर सुषिर वाद्य का अविष्कार सबसे अन्त में हुआ।

इस प्रकार वैदिक काल से पूर्व सिन्धु घाटी सभ्यता के काल में भारतीय संगीत का उद्भव हो चुका था, भले ही वह अर्द्ध विकसित रहा हो। अनेक प्रकार के वाद्य जो कि मोहनजोदड़ो, चानूदारों, हड़प्पा आदि के पहाड़ों की खोज में मिले हैं, उनसे ज्ञात हुआ कि यह सभ्यता बहुत प्राचीन तथा विकसित थी तथा सिन्धु सभ्यता के लोगों में कला के प्रति प्रेम था। मोहनजोदड़ों काल में गोल बर्तनों के आकार में पकी हुई मिट्टी के कंकड़ को डालकर बजाने का प्रयोग किया जाता था। सिन्धु सभ्यता के समय विभिन्न करताल पाये गए। इससे निष्कर्ष निकलता है कि ये अतिरिक्त वाद्य के रूप में ताल वाद्य, नृत्य तथा गीत के साथ उत्सवों में प्रयुक्त किये जाते थे। करताल बर्तन वाली मिट्टी से बनाये जाते थे।

वैदिक युग भारत के सांस्कृतिक इतिहास में प्राचीनतम युग माना जाता है। वेदों को विश्व का आदि वाङमय मानते हैं। भारतीय संगीत का उद्गम भी वेदों में परिलक्षित होता है। सामवेद का संगीत की दृष्टि से विशेष स्थान है। गायन के साथ वाद्यों का भी प्रयोग होता रहा है। उद्गाता के गायन के समय उनकी पत्नियाँ विभिन्न प्रकार की वीणाओं का वादन किया करती थीं। वैदिक समय में संगीत का प्रयोग विभिन्न धार्मिक कार्यों में भी दृष्टिगोचर होता है ब्राह्मणों की पत्नियाँ अग्नि के चारों और पिच्छोरा अथवा पिच्छोला वीणा वाद्य बजाकर नृत्य किया करती थीं। डॉ0 परांजपे के अनुसार ऋग्वेद में निम्न वाद्यों का उल्लेख पाया जाता है– दुन्दुभि, बाण, नाली, कर्करि, गोधा, पिंग और आघाटि। वैदिक युग में हम देखते है कि तन्तु वाद्य के लिए 'वीणा' सामान्य संज्ञा प्रयुक्त की जाती है।

'बाल्मीकि रामायण' युग में प्रचलित विभिन्न वाद्यों का अध्ययन, उनका प्रयोग जन–मानस की संगीत सम्बन्धी रूचि को दर्शाते हैं। रामायण में गन्धर्वों द्वारा गान तथा वीणा–वादन का उल्लेख मिलता है। वीणा उस समय का लोकप्रिय वाद्य रहा है। वीणा, विपंची तथा वल्लकी वीणा वाद्य के विभिन्न प्रकार रहे हैं। बाल्मीकि ने निम्न वाद्यों का उल्लेख किया है– मृदंग, मड्डक, पटह, पणव। आनद्ध वाद्यों में मुरज, चेलिका, दुंदुभी, मृदंग आदि।

'महाभारत' काल में गीत, वादन और नृत्य का प्रयोग जन—जीवन के अभिन्न अंग के रूप में होता रहा है। गायन के साथ वीणादि वाद्यों का वादन होता था। वादित्र के अन्तर्गत तत्, वितत्, घन तथा सुषिर इन चतुर्विध वाद्यों के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख पाया जाता है। इस समय पणव, मृदंग, भेरी, मर्दल, पुष्कर, कांची, नुपुर आदि वाद्य प्रमुख थे।

बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में उपलब्ध संगीत विषयक सामग्री उस समय की सांगीतिक स्थिति को दर्शाते हैं। बौद्ध साहित्य में तत्, वितत्, घन तथा सुषिर इन चतुर्विध वाद्यों का प्रचुर उल्लेख पाया जाता है। तत् वाद्यों के अन्तर्गत निम्न वाद्यों का उल्लेख मिलता है— वीणा, परिवादिनी, विपंची, कच्छपी तथा तुम्ब वीणा। इसके अतिरिक्त मृदंग, पणव, भेरी, दुंदुभी, घण्टा, झल्लरी, तूर्य आदि प्रमुख वाद्य थे।

2.3.2 वाद्यों का वर्गीकरण — किसी भी संगीतात्मक ध्वनि—उत्पादन वस्तु को 'वाद्य' की संज्ञा दी जा सकती है। अतः ध्वनि—उत्पादन का माध्यम एक पत्थर, पत्ती से लेकर इलेक्ट्रानिक माध्यम भी हो सकता है। इस प्रकार संगीतात्मक ध्वनि अथवा गति को प्रकट करने वाले उपकरण 'वाद्य' कहलाते हैं। विभिन्न वाद्यों द्वारा उत्पन्न स्वर तथा लय को वाद्य संगीत अथवा वादन कहा जाता है।

वैदिक काल में वाद्यों का वर्गीकरण नहीं मिलता है, किन्तु चारों प्रकार के वाद्यों का उल्लेख मिल जाता है।

रामायण तथा महाभारत में 'वादित्र' के अन्तर्गत ही तत्, अवनद्ध, घन तथा सुषिर वाद्यों का अन्तर्भाव था, अलग से विभाजन नहीं मिलता है।

पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में वृन्दवादन के लिए 'तूर्य' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। जिसमें सभी वाद्यों का अन्तर्भाव है। बौद्ध साहित्य में तत्, वितत्, घन तथा सुषिर इन चतुर्विध वाद्यों का प्रचुर उल्लेख पाया जाता है।

भरत ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में चार प्रकार के वाद्य माने। प्राचीन युग के वाद्य प्रकारों को देखते हुए उनका वर्गीकरण उचित एवं पर्याप्त प्रतीत होता है।

भारतीय संगीत शास्त्र में उपलब्ध वाद्य—वर्गीकरण में भरतमुनि प्रदत्त वाद्य—वर्गीकरण ही सर्वाधिक प्राचीन, सर्वश्रेष्ठ एवं वैज्ञानिकता से परिपूर्ण है। अभिनव गुप्त ने 'नाट्यशास्त्र' की टीका में तत्, अवनद्ध एवं घन शब्दों की व्याख्या करते हुए बतलाया है कि तंत्रियों के कारण तत्, चर्मबन्धन के कारण अवनद्ध एवं ताल वाद्य की सुस्पष्टता, सघनता एवं सुन्दरता को चिरस्थायी बनाने के लिए 'घन' वाद्य विशेष की संरचना हुई। 'सुषिर' शब्द का अर्थ है 'छिद्रवाला' या 'फूँक' मारकर बजाया जाने वाला वाद्य। महर्षि भरत द्वारा निर्धारित वाद्यों के चतुर्विध वर्गीकरण तथा उनके नामों को सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है। शार्ङ्गदेव ने भी इसे स्वीकार किया है। शार्ङ्गदेव ने वाद्य को शिव स्वरूप माना है। उसी वाद्य में से एक वाणी निकलती है, जिसमें स्वर, लय आदि हैं। इन्होंने भी तत्, सुषिर, अवनद्य और घन ये चार प्रकार के वाद्य बताये हैं।

इस प्रकार समस्त भारतीय विद्वानों ने ध्वनि के आधार पर वाद्यों का वर्गीकरण चार श्रेणियों में निम्नवत् किया है—

1. तत् 2. अवनद्ध 3. घन 4. सुषिर

तत् और सुषिर वाद्य श्रुति, स्वर आदि को प्रकट करते हैं जिनसे गीत प्रकट होता है। अवनद्ध से उस गीत को अनुरंजित करते हैं तथा घन से मान या गणना की जाती है। इन्हीं वाद्यों को ओर अधिक स्पष्ट रूप में कह सकते हैं—

1. **तत् वाद्य—** तंत्री अथवा तार द्वारा विस्तारित वाद्य को तत् कहते हैं। जैसे— प्राचीन काल में विभिन्न वीणाऐं तथा वर्तमान में सितार, सारंगी और सुरबहार आदि।
2. **सुषिर—** छिद्र युक्त वंश आदि वाद्य सुषिर कहलाते हैं। जैसे— प्राचीन काल में शंख, वेणु, गोमुख आदि तथा वर्तमान में बांसुरी एवं शहनाई आदि।
3. **अवनद्ध—** चमड़े से मढ़े हुए मुख वाले वाद्य को अवनद्ध कहते हैं। जैसे— प्राचीन काल में दुंदुभी, मुरज, मृदंग आदि तथा वर्तमान में पखावज, तबला, ढोलक आदि।
4. **घन—** जहाँ घात प्रहार करने से वाद्य ध्वनि उत्पन्न करता है वह घन वाद्य कहलाता है। जैसे— प्राचीन काल में कांस्य ताल, घण्टा, नूपुर, कांची आदि तथा वर्तमान में घण्टा, मजीरा आदि।

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

(i) प्राचीन काल में वाद्यों की क्या स्थिति थी? बताइए।

(ii) वाद्यों को कितने भागों में वर्गीकृत किया गया है?

ख) सत्य/असत्य बताइये :–

(i) वीणा वाद्य अवनद्ध वाद्यों के अन्तर्गत आता है।

(ii) रामायण काल में तंतु वाद्यों में सितार वाद्य प्रमुख था।

(iii) चमड़े से मड़े वाद्य अवनद्ध वाद्यों की श्रेणी में आते हैं।

2.4 तत् वाद्यों की उत्पत्ति एवं विकास

'तत्' शब्द 'तनु' से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है 'विस्तार करना'। 'तनु' धातु में 'त' प्रत्यय लगाकर तत् शब्द बनता है, जिसका अर्थ होता है– जो व्याप्त और विस्तृत हो, जिसमें स्वर व्याप्त हो और उसका विस्तार किया जाए।

तत् वाद्य का अर्थ तन्तु वाद्य अर्थात तना हुआ तार, रेशम का डोरा अथवा ताँत इत्यादि का बना वाद्य।

तत् वाद्यों का जो आज विकसित रूप हम देखते हैं, उसके पीछे एक लम्बा इतिहास है। इस अवस्था तक पहुँचने में तत् वाद्य विभिन्न अवस्थाओं से गुजरे हैं। तत् वाद्यों का विकास मूलतः धनुष से हुआ है। इसलिए सभी देशों के प्रारम्भिक तंत्री वाद्य धनुषाकृति में प्राप्त होते हैं। तंतु वाद्य की सबसे प्रारम्भिक अवस्था को धनुष, हार्प तथा लायर के समान माना जा सकता है। तत् वाद्यों के प्रारम्भिक रूप पर विचार करने पर यह पता चलता है कि चाहे वह धनुषाकार वीणा हो या वेदों में उल्लिखित बाण अथवा बेवीलोनिया, मिस्र आदि में पाया जाने वाला हार्प या लायर सभी में स्वरोत्पत्ति का एक ही सिद्धान्त दिखाई पड़ता है और वह है प्रत्येक स्वर के लिए एक ही तार का प्रयोग। अति प्राचीन काल में कहीं भी एक तार पर अधिक स्वरों को निकालने की किसी व्यवस्था का पता नहीं चलता।

वैदिक काल में वाण में सौ तंत्रियों का उल्लेख मिलता है। इन तंत्रियों को सुर में मिलाने के लिए बार–बार खोलकर बाँधा जाता होगा। प्राचीन चित्रों में हम देखते हैं कि खूँटी नहीं हैं। सम्भव है इन तारों को पुनः मिलाने के लिए तारों को खिसकाकर तनाव को कम या ज्यादा करके नियमित किया जाता होगा। इस प्रकार धनुष आकार की वीणा का प्राचीन भारत में काफी चलन था। तंत्री वाद्यों में सारिकाओं का प्रयोग तंत्र वाद्यों के विकास का अगला चरण कहा जा सकता है। किन्नरी वीणा से ही तंत्री वाद्यों में सारिका की परम्परा का प्रारम्भ माना जाता है। इस प्रकार एक ही तार से विभिन्न स्वरों की उत्पत्ति सम्भव हुई। प्रारम्भ में ये सारिकाएँ काँच अथवा जानवरों की हड्डियों की बनी होती थी। शार्ङदेव ने किन्नरी वीणा का वर्णन करते समय काँसे की सारिकाओं का उल्लेख किया है। वाद्यों के निर्माण में अधिकांश उन्हीं वस्तुओं का प्रयोग किया है जो प्रकृति प्रदत्त हैं। बाद में कृत्रिम वस्तुओं का प्रयोग होने लगा।

2.4.1 प्राचीन कालीन तत् वाद्य – भारत में तत् वाद्यों की परम्परा उतनी ही प्राचीन है जितनी वैदिक परम्परा। 'वीणा' शब्द का प्रयोग मध्यकाल तक तंत्री वाद्य के साथ उपनाम की भांति जुड़ा रहा। धीरे–धीरे 'वीणा' का प्रयोग विशेष प्रकार के वाद्य के लिए होने लगा। आधुनिक समय में वीणा कहते ही रूद्र वीणा, विचित्र वीणा, सरस्वती वीणा की ओर ध्यान आकर्षित होता है। तत् वाद्यों की एक समृद्ध परम्परा रही है। भरत से अभिनवगुप्त, शार्ङदेव सभी ने वीणा के विभिन्न प्रकारों की चर्चा अपने ग्रन्थ में की है। इनमें अगुँली, कोण, गज, डण्डियों से आघात द्वारा तथा बायें हाथ की अँगुलियों से अथवा किसी अन्य वस्तु से बजने वाले अनेक प्रकार हैं।

वैदिक युग से अभिप्राय उस सुदीर्घ काल खण्ड से है, जिसमें चार वेदों तथा उनके विविध अंगों का विस्तार हुआ है। वेदों में सामवेद को संगीत का ग्रन्थ माना गया है। वेदकालीन सामगान की परम्परा बड़ी विशाल है। वैदिक कालीन तंत्री वाद्यों में वीणा सर्वाधिक प्रमुख वाद्य है। वीणा ऋग्वेद कालीन संगीत परम्परा का प्रमुख तत् वाद्य रहा है। वैदिक कालीन वीणाओं के नाम निम्नलिखित हैं–

<u>काष्ठ वीणा</u> – वैदिक कालीन वीणाओं में काष्ठ वीणा एक है। यह वीणा आत्मरहित है। इसके द्वारा संगीतोपयोगी नाद व्यवहृत होता है। यह वीणा केवल सीमित स्थान तक आहत तथा सूक्ष्म नाद को प्रकाशित करती है। सात्विक वृत्ति वाले पुरूष ही काष्ठ वीणा द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

<u>गात्र वीणा</u> – इस वीणा का उल्लेख नारदीय शिक्षा में मिलता है। इसके द्वारा सामवेद का गान किया जाता है। वैदिक शिक्षा ग्रन्थों में गात्र वीणा का उल्लेख मिलता है। गात्र वीणा वास्तव में कोई वाद्य नहीं है अपितु सामगायक द्वारा अपने हाथों की अँगुलियों के पोरों में जो स्वरों की कल्पना है वही गात्र वीणा वादन है।

<u>अन्तर वीणा</u> – अन्तर वीणा गात्र वीणा से श्रेष्ठ है। गान्धार ग्राम होने के कारण इस वीणा का सम्बन्ध देवलोक से है, जिसे क्रिया रूप में लाने वाली प्रकृति है।

<u>वाण वीणा</u> – वाण नामक तंत्री वाद्य वैदिक युग का सर्वाधिक प्रचलित एवं महत्वपूर्ण प्रकार था जो उसकी व्याख्या में प्रयुक्त 'महावीणा' संज्ञा से भी स्पष्ट हो जाता है। ऋग्वेद में वाण नामक तंत्री वाद्य की गम्भीर ध्वनि का उल्लेख है।

<u>आघाटि वीणा</u> – यह वैदिक कालीन वीणा है। ऋग्वेद में इसका उल्लेख पाया जाता है। पं0 क्षितिमोहन सैन के अनुसार– "आघाटि का अर्थ घाट अर्थात् पदों से निर्मित वाद्य से है।"

<u>कर्करी वीणा</u> – यह एक प्राचीन वीणा है। इसका उल्लेख वैदिक काल में मिलता है। कर्करी एक ऐसा फल है जो पानी में होता है तथा इसकी पेंदी में छेद होता है। सम्भवतः इससे बनी वीणा कर्करी वीणा कहलाती थी।

<u>काण्ड वीणा</u> – यह वैदिक कालीन वीणा है। यज्ञ मंडप में काण्ड वीणा का वादन होता था। उसके साथ अन्य प्रकार के वाद्य भी बजाये जाते थे।

<u>आडम्बर वीणा</u> – वाल्मीकि रामायण तथा यतिमान पादखण्ड में इसका नामोल्लेख प्राप्त होता है। आडम्बर को वैदिक युग का तत् वाद्य कहा जाता है।

<u>अलाबु वीणा</u> – यह वैदिक कालीन वीणाओं में से एक है। अलाबु वीणा का उल्लेख 'लाट्यायन श्रोत' सूत्र में हुआ है। अलाबु वीणा में तुम्बा जोड़ा जाता है और इसका सिर बन्दर के मुँह जैसी वक्र आकृति का होता है।

<u>पिनाकी वीणा</u> – यह एक प्राचीन वीणा का प्रकार है। भगवान शंकर के नाम से यह प्रसिद्ध हुई। पिनाक अथवा पिनाकी वीणा धनुषाकार होती है। पिनाकी वीणा में एक तुम्बा होता है और यह गज से बजायी जाती है। यह वीणा धनुषाकार गज से बजायी जाती है। इसमें तुम्बे लगे रहते हैं और वाद्य आकृति बहुत कुछ किन्नरी वीणा के समान होती है।

<u>कच्छपी वीणा</u> – कच्छपी वीणा का उल्लेख प्राचीन एवं मध्यकाल दोनों में उपलब्ध है। महाभारत में कच्छपी वीणा का उल्लेख प्राप्त होता है। यह आचार्य भरत द्वारा निर्दिष्ट एक प्राचीन वीणा हैं जो कि अप्रचलित है। भरत ने तत् वाद्यों के अंग तथा प्रत्यंग वाद्यों के विवेचन में कच्छपी वीणा को प्रत्यंग वाद्य कहा है।

<u>विपंची</u> – विपंची वीणा का उल्लेख प्राचीन एवं मध्यकाल दोनों में उपलब्ध है। इसका उल्लेख बाल्मीकि रामायण के सुन्दरकाण्ड में उपलब्ध है। शार्ङ्गदेव ने एकतंत्री वीणा का तो विस्तृत वर्णन किया है परन्तु विपंची के तारों का भरत के समान उल्लेख भर किया है। जिससे ज्ञात होता है कि विपंची में नौ तार होते थे। भरत ने विपंची का वादन केवल कोण द्वारा करने को कहा है। शार्ङ्गदेव के अनुसार विपंची का वादन कोण अथवा अँगुलियों दोनों से किया जा सकता था। वादन में सहजता न होने के कारण सम्भव है कि विपंची का वादन कम होता गया होगा। धीरे–धीरे अन्य वीणाओं का प्रचार होने से विपंची ने गौंण स्थान ग्रहण कर लिया और शार्ङ्गदेव के समय मत्तकोकिला, एकतंत्री, किन्नरी आदि वीणाएँ अधिक प्रचार में रहीं।

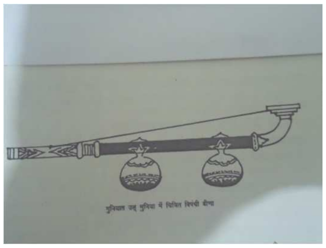
विपंची वीणा(मध्यकालीन)

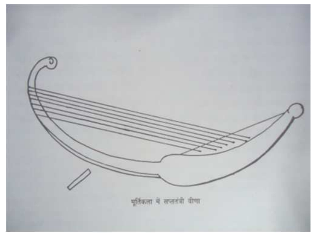
सप्ततंत्री वीणा

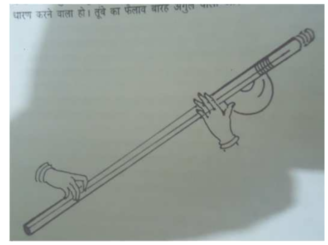
आलापिनी

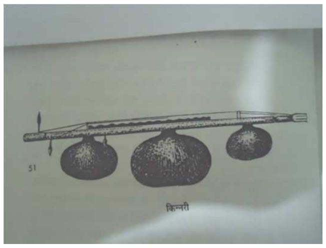
किन्नरी वीणा

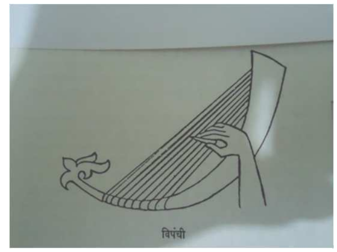
विपंची वीणा(प्राचीन कालीन)

2.4.2 मध्यकालीन तत् वाद्य — मध्यकाल में 'वीणा' तत् वाद्यों के लिए सामान्य संज्ञा थी। सभी तंतु वाद्यों को वीणा कहा जाता था। मध्य युगीन ग्रन्थों में वीणा के निम्न प्रकार उल्लिखित हैं—

चित्रा — शार्ङ्गदेव ने चित्रा के सम्बन्ध में यह उल्लेख किया है— 'तंत्रीभिः सप्तभिश्चित्रा' इससे केवल यही अनुमान किया जा सकता है कि उसमें सात तार होते थे। इसके अतिरिक्त उस वीणा का रूप वर्णन नहीं मिलता है। चित्रा वीणा में तारों को मिलाने की क्या व्यवस्था थी, इस सम्बन्ध में यदि अन्य ग्रन्थों का अध्ययन करें तो देखेंगे कि भरत, नान्यदेव, सोमेश्वर, शार्ङ्गदेव, पार्श्वदेव किसी ने भी वर्णन नहीं किया है। शार्ङ्गदेव के श्लोक से केवल तार—संख्या का ज्ञान होता है।

मत्तकोकिला — वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा काण्ड में मत्तकोकिला शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका उल्लेख प्राचीन एवं मध्यकाल दोनों में उपलब्ध है। 'संगीत रत्नाकर' में मत्तकोकिला की चर्चा करते हुए इसमें इक्कीस तंत्रियों का उल्लेख किया है तथा उसे सभी वीणाओं में प्रमुख माना है। भरत ने अपने ग्रन्थ में कहीं भी स्वयं मत्तकोकिला का नाम नहीं लिया है और न ही इक्कीस तंत्री वीणा की चर्चा की है। भरत से पूर्व भी 'मत्तकोकिला' का अस्तित्व मात्र रामायण दृष्टिगोचर होता है। भरत से पूर्व भी हमें मत्तकोकिला वीणा का उल्लेख मिलता है। अतः यह मानना असंगत न होगा कि इक्कीस तंत्री वीणा अथवा मत्तकोकिला वीणा उस समय प्रचार में थी। शार्ङ्गदेव ने मत्तकोकिला का वर्णन करते हुए इक्कीस तंत्री वाली वीणा का नाम मत्तकोकिला कहा है। कल्लिनाथ ने इसका लोक में अन्यत्र नाम स्वरमण्डल बताया है।

एकतंत्री वीणा — शार्ङ्गदेव ने इस वीणा के दो भेद स्वर वीणा और श्रुति वीणा बताए हैं—

ततं वीणा द्विधा स च श्रुति स्वर विवेचनात्।

स्वर वीणा के अन्तर्गत एकतंत्री वीणा का वर्णन किया है। शार्ङ्गदेव ने वाद्याध्याय के श्लोक संख्या चौवन में वीणा के मंगल कार्य के बारे में बताया है। इसके दर्शन और स्पर्शमात्र से सभी प्रकार के सुख एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है, ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है, पतित से पतित व्यक्ति का जीवन भी सफल हो जाता है। अन्य वीणा इसी वीणा के भेद हैं। सोमेश्वर व सुधाकलश ने भी एकतंत्री वीणा द्वारा मोक्ष प्राप्ति बताई है।

बिना पर्दे वाले वाद्य जैसे सारंगी, सरोद इत्यादि वाद्यों में जिस प्रकार श्रुतिज्ञान व स्वरज्ञान के आधार पर स्वरों को उत्पन्न किया जाता है, उसी प्रकार से एकतंत्री वीणा में भी स्वरों की अभिव्यक्ति

होती होगी। भरत के पश्चात् ही एकतंत्री वीणा का महत्व बढ़ने लगा। सोमेश्वर, पार्श्वदेव एवं शार्ङ्गदेव सभी ने एकतंत्री का सर्व वीणाओं में प्रधान माना है।

आलापिनी – शार्ङ्गदेव ने आलापिनी से सम्बन्धित लक्षण बताते हुए कहा है कि इस वीणा में दण्ड नौ मुठ्ठी का होना चाहिए। दो अंगुल की परिधि वाली गोलाई में हो। दण्ड की विशेषता बताते हुए कहा है– दण्ड, चिकना, समान, अच्छा गोलाई में हो।

शार्ङ्गदेव के अनुसार इस वीणा में भेड़, बकरी की आँत की तंत्री बनाई जाए जो पतली और चिकनी, समआकार और मजबूत हो। सोमेश्वर ने भेड़ से निर्मित तंत्री के लिए कहा है जो कि सूक्ष्म, कोमल, दृढ़ और समान हो। सोमेश्वर, शार्ङ्गदेव व पार्श्वदेव के आलापिनी वर्णन में 'बिन्दू' क्रिया के अन्तर्गत मन्द्र, मध्य, तार स्थान का उल्लेख किया है। इससे यह तो स्पष्ट है कि इस वीणा में मन्द्र, मध्य व तार स्थानों के स्वरों का वादन सम्भव था।

किन्नरी वीणा – किन्नरी वीणा का पर्दे वाले वाद्यों के साथ एक निकट सम्बन्ध है। सर्वप्रथम पर्दें वाली वीणा के रूप में मतंग की किन्नरी वीणा को जाना जाता है। शिल्पकृतियों के माध्यम से ज्ञात होता है कि पर्दे वाले तंत्री वाद्यों का प्रचार लगभग आठवीं शताब्दी के आस–पास देखने को मिलता है। मतंग को किन्नरी वीणा के अविष्कारक के रूप में जाना जाता है। शार्ङ्गदेव ने 'संगीत रत्नाकर' में किन्नरी का लक्षण बताते हुए कहा है कि यह दो प्रकार की होती है– लघ्वी और बृहती (छोटी–बड़ी)।

निशंक वीणा – लम्बाई में चार हाथ लम्बी तंत्री बाँधें। उसके प्रान्त के अतिरिक्त अंश में कुछ ऊपर प्रान्त में बाँधें और अन्य प्रान्त के द्वारा आधे हाथ बराबर हो। जिसकी मोटाई आलापिनी के तुल्य हो, नीचे स्थित काष्ठ में आगे से दो अंगुल छोड़कर तंत्री बाँधे। फिर, उस तंत्री और दारूणी को तूंबे में बाँधकर वीणावादन करें। इस प्रकार के लक्षण वाली निशंक वीणा होती है। इस निशंक वीणा के द्वारा सब स्वरों की अभिव्यक्ति होती है।

2.4.3 आधुनिक कालीन तत् वाद्य – आधुनिक युग में वीणा शब्द का प्रयोग वाद्य विशेष के लिए नहीं होता है। उनके अलग–अलग नामकरण आज हो चुके हैं। आधुनिक कालीन तत् वाद्यों में आज प्रमुख रूप से निम्नलिखित वाद्य प्रचलित हैं, जैसे– रूद्रवीणा, विचित्र वीणा, सितार, सुरबहार, सरोद, सारंगी, वायलिन, इसराज, स्वर मण्डल, मेंडोलिन, तानपूरा, गिटार, गोट्टू वाद्यम् आदि।

रूद्र वीणा (बीन) – रूद्र वीणा किन्नरी वीणा का ही परिष्कृत रूप है। प्राचीन चित्रों में किन्नरी वीणा एवं रूद्र वीणा की आकृति में काफी समानता दिखाई देती है। प्राचीन काल में सभी तत् वाद्यों को वीणा कहा जाता था। आधुनिक समय में इस वीणा के दो रूप देखने को मिलते है। 1. उत्तर भारतीय वीणा 2. दक्षिणात्य वीणा

इसे नारद वीणा, सार वीणा, काधे की बीन आदि नामों से भी सम्बोधित किया जाता है।

विचित्र वीणा – विचित्र वीणा का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलता है। अतः इसे आधुनिक वाद्य कहा जा सकता है। इसका वादन केवल उत्तर भारत में होता हैं। वर्तमान में इसका प्रचलन होता जा रहा है। इसे बट्टा बीन के नाम से भी जाना जाता है। इसका विकास प्राचीन एकतंत्री वीणा के आधार पर हुआ है।

सितार – आधुनिक युग का सर्वाधिक प्रचलित तत् वाद्य 'सितार' है। सारिका युक्त वाद्यों के विकास की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप सितार का विकास हुआ। सितार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। अमीर खुसरो द्वारा इसका अविष्कार माना गया। परन्तु यह निराधार है। क्योंकि स्वयं अमीर खुसरो ने स्वयं सितार वाद्य का उल्लेख नहीं किया हैं। कुछ विद्वान सितार को प्राचीन त्रितंत्री वीणा का परिवर्तित रूप मानते हैं। पं0 शार्ङ्गदेव ने इस वीणा का उल्लेख किया है।

सुरबहार – सुरबहार उत्तरी भारत के तंत्री वाद्यों में एक है तथा प्राचीन सारिका युक्त वाद्यों की परम्परा का ही विकसित रूप है। इसका आकार सितार से बड़ा होता है तथा तार भी सितार की तुलना में मोटे होते है। इसकी ध्वनि सितार की तुलना में गम्भीर होती है।

सरोद – कुछ विद्वानों ने सरोद वाद्य का विकास चित्रा वीणा से माना है। अमरावती, गुप्तकाल तथा अंजता आदि की विभिन्न शिल्पाकृतियों से हमें चित्रा वीणा की आकृति सरोद के समान दिखाई देती है। इस आधार पर इससे इसका सम्बन्ध जोड़ना उचित है। सरोद को रबाब एवं सुरसिंगार का विकसित रूप कहा जा सकता है। रबाब में चमड़े की खाल मढ़ी जाती है तथा सुरसिंगार में चमड़े के स्थान पर लकड़ी की तबली लगाई जाती है। सरोद वाद्य में चमड़े की तबली तथा स्टील की प्लेट के प्रयोग से गूंज में और वृद्धि हुई है।

सारंगी – सारंगी वाद्य की परिकल्पना रावणहस्त वीणा से की गई है। गज से बजाये जाने वाले वाद्यों की परम्परा में पिनाकी तथा निशंक वीणा का उल्लेख मिलता है। इसी के आधार पर गज वाद्यों का विकास हुआ है। शास्त्रीय संगीत के साथ संगत करने हेतु वर्तमान में यह सबसे महत्वपूर्ण वाद्य है। सारंगी लोक वाद्य के रूप में भी भारत के विभिन्न भागों में देखने को मिलती है।

वायलिन – वायलिन विदेशी वाद्य होते हुए भी भारतीय शास्त्रीय संगीत में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना चुका है। इसका मुख्य कारण है कि इस वाद्य में भारतीय संगीत की विशेषताओं को समाहित करने की क्षमता है। इसका भारतीय नाम बेला भी है। यह गज से बजाने वाले वाद्यो की श्रेणी में आता है।

इसराज

रूद्रवीणा

सन्तुर

सारंगी

सरोद

सितार

विचित्र वीणा

<u>तत् वाद्य वर्गीकरण:</u> तत् वाद्य होते हुए भी मिजराब, जवा, बट्टे, गज, वस्तु के आघात से अँगुलियों द्वारा तंत्री को छेड़ना, इन प्रक्रियाओं से ध्वनि की तीव्रता उसकी जाति एवं वादन की तकनीक में भिन्नता आ जाती है।

वाद्य वर्गीकरण (तत् वाद्य) वादन–विधि के आधार पर

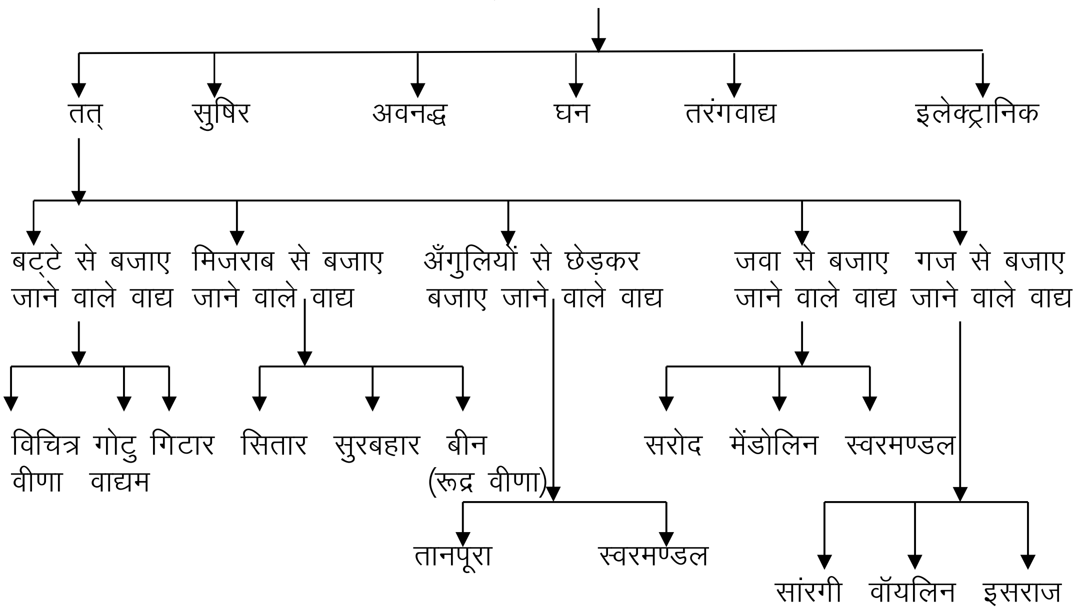

अभ्यास प्रश्न

क)लघु उत्तरीय प्रश्न :–

(i) प्राचीन कालीन गात्र वीणा के विषय में बताइये।
(ii) मध्यकालीन एकतंत्री वीणा के विषय में बताइये।
(iii) सितार के विषय में संक्षेप में लिखिये।

ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये :–

(i) चित्रा वीणा .... वाद्यों की श्रेणी में आती है।
(ii) .... वीणा सबसे प्रथम पर्दे वाली वीणा मानी जाती है।
(iii) सितार को प्राचीन .... वीणा का परिवर्तित रूप मानते हैं।

2.5 सुषिर वाद्यों की उत्पत्ति एवं विकास

मुख वायु द्वारा बजाए जाने वाले वाद्य 'सुषिर वाद्य' कहलाते हैं। इन वाद्यों में वायु के दबाव को घटा–बढ़ाकर स्वर को ऊँचा–नीचा किया जाता है। 'शुषि' का अर्थ है 'छिद्र'। भारत में वंशीवादन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। सिन्धु सभ्यता में भी वंशी के प्रयोग के सम्बन्ध में उल्लेख मिलते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद में वंशीवादन का स्पष्ट उल्लेख है। भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में सुषिर वाद्य के लक्षण इस प्रकार बताए हैं। बुध जन बाँस से निर्मित या रन्ध्रयुक्त वाद्य को सुषिर वाद्य जानें, जिसकी स्वर, ग्राम आदि में होने वाली विधियाँ वीणा के समान होती हैं।

वंशी भी प्रकृति से प्राप्त वाद्य का उदाहरण है। आधुनिक विद्वानों की मान्यता रही है कि मानव ने शिकार या घूमते समय बाँस की शाखाओं से कुछ मधुर स्वर सुने, बाद में उसने जब इस ओर ध्यान दिया तो ज्ञात हुआ पक्षियों द्वारा खोखले किए गए छिद्रों से जब हवा निकलती थी तो एक प्रकार का कम्पन करती थी, जिससे नाद अथवा ध्वनि निकलती थी। इस प्रकार मानव को वंशी निर्माण की प्रेरणा प्राप्त हुई।

सुषिर वाद्यों का महत्व तत् वाद्यों के समान ही है, क्योंकि दोनों का प्रयोजन एक ही है। संगीत के स्वर भाग में 'तत्' और 'सुषिर' वाद्यों का उपयोग है। 'तत्' और 'सुषिर' वाद्यों में ही स्वर के परम प्रयोजन 'रंजन' की सृष्टि होती है।

2.5.1 प्राचीन कालीन सुषिर वाद्य – घन वर्ग के वाद्यों के पश्चात सुषिर वाद्यों का प्रादुर्भाव हुआ होगा। क्योंकि सुषिर वाद्य प्रकृति द्वारा प्रदत्त नरसल, श्रृंग या जानवरों की हड्डी आदि से निर्मित होते थे। मुँह से सीटी उत्पन्न करने की प्रक्रिया सुषिर वाद्यों की जननी मानी जा सकती है। मानव ने कौतुहल वश वृक्ष के पत्तों तथा लकड़ी के दो टुकड़ों को मुँह में लगाकर ध्वनि निकालने का प्रयास किया होगा। विकास के प्रथम चरण में मानव ने वंश, शंख, श्रृंग में फूँक मारकर ध्वनि निकालने का प्रयास किया होगा। सुषिर वाद्यों में हमें प्रारम्भ में बांसुरी एक विकसित रूप में प्राप्त होती है। जिसे वेणु, बंशी, मुरली आदि अनेक लोकप्रिय नामों से जाना जाता रहा है।

मोहनजोदड़ो की खुदाई से प्राप्त खिलौने में चिड़िया के आकार की मिट्टी से बनी सीटी, वेदों में नाड़ी, वेणु, तुणव, शंख आदि सुषिर वाद्यों का कई स्थानों पर उल्लेख मिलना इस बात की पुष्टि करता है कि उक्त काल में भी सुषिर वाद्यों का प्रचलन रहा होगा। प्राचीन कालीन सुषिर वाद्यों में प्रमुख रूप से निम्न वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है–

नाड़ी – वंशी के रूप में नाड़ी वाद्य का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। नाड़ी शब्द से एक नलिका के रूप का आभास होता है जिससे स्पष्ट होता है कि यह एक सुषिर वाद्य है जो फूँककर बजाया जाता था।

तुणव – वैदिक काल में तुणव का उल्लेख इस प्रकार मिलता है। 'तुणव बाद की संहिताओं और ब्राहमणों में यह एक वाद्य यंत्र सम्भवतः वंशी का द्योतक है।' तुणव एक प्रकार का वंश वाद्य रहा होगा। परन्तु इसके अतिरिक्त इसमें छिद्रों की संख्या तथा वादन प्रक्रिया सम्बन्धी कोई भी जानकारी उपलब्ध नहीं है।

बकुरा – बकुरा को सुषिर वाद्य के रूप में लिया है। शंख को बकुरा का परिवर्तित रूप माना है। वैदिक ग्रन्थों में वर्णित वर्णन तथा अन्य सभी विद्वानों के दृष्टिकोण के आधार पर बकुरा को सुषिर वाद्य मानना उचित होगा।

गोमुख – गोमुख के नाम से ही विदित होता है कि यह सुषिर वाद्य गौ के मुख के समान होता होगा।

श्रृंग – यह भैस के श्रृंग से बनाया जाता है जो कि हाथी की सूँड़ के समान निर्दोष, कोमल, सुघटित होता है। इसके मूल में बैल के सींग को धतूरे (कुन्द) पुष्प के समान आठ अंगुल खण्ड का रखना चाहिए। इसके अग्रभाग में दो अंगुल से परिमित छेदन करके फूत्कार रन्ध्र बनाकर तुथु (तुम्बु) इस शब्द के ग्वाले के झुण्ड में बजाया जाता है। यह वाद्य ध्वान गम्भीर कहा जाता है।

शंख – शार्ङदेव शंख का लक्षण कहते हैं "जिसकी नाभि उत्खात(गहरी) हो। उस प्रकार के शंख का बारह/ग्यारह अंगुल का शिखर धात से मधु–उच्छिष्ट से करना चाहिए। मूल से आरम्भ करके आगे तक दिखाई देती हुई आकृति क्रम से बड़ी होती हुई प्रमाण की होती है। शिखर के मुख में रन्ध्र आधे अंगुल प्रमाण का होता है। बीच में मध्य भाग माष (उड़द) के प्रमाण का होना चाहिए।"

महाभारत काल में शंख का विशेष महत्व रहा हैं। पाण्डव एवं कृष्ण के पास अपनी–अपनी विशिष्टता को बताने के लिए अपना शंख था।

रामायण एवं महाभारत काल में भी विभिन्न सुषिर वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। जैसे– शंख, वेणु, गोविषाण आदि। बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों में तूर्य, कुराल, श्रृंग, शंख आदि सुषिर वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है।

वंश – शार्ङदेव ने सुषिर वाद्यों का वर्णन करते समय सर्वप्रथम वंश का वर्णन किया है। शार्ङदेव के अनुसार वंशी खैर की लकड़ी, हाथी दाँत, चन्दन, रक्त चन्दन, लोहे, काँसे, चाँदी या सोने की बनाई जाती है। यह गोलाकार, चिकनी तथा गाँठरहित हो। इस रन्ध्र का प्रमाण छोटी अँगुली का व्यास है। यह रन्ध्र पूरी बाँसुरी में एक–सा रहता है। सिर स्थल बन्द रहता है। दो, तीन या चार अंगुल की दूरी पर अँगुली प्रमाण का वायु पूरित करने के लिए छेद करना चाहिए। इसे शार्ङदेव ने मुखरन्ध्र कहा है। नाट्यशास्त्र में भरत ने वंश में चुतःश्रुतिक, त्रिश्रुतिक तथा द्विश्रुतिक स्वरों को स्पष्ट बताया है। भरत ने यशस्वी वंशवादक को बलवान अर्थात शक्तिशाली श्वास वाला, अवहित बुद्धि अर्थात् एकाग्र बुद्धिवाला, गीत तथा ताल का ज्ञान रखने वाला, अच्छे गाने वाला, श्रावक, मधुर, स्निग्ध तथा दृढ़ पाणि अर्थात् स्वर स्थान में अंगुलि का अचल या स्थिर रहना परम आवश्यक माना है।

2.5.2 मध्यकालीन सुषिर वाद्य – मध्यकालीन समस्त ग्रन्थों में निम्नलिखित सुषिर वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है :–

पाव – शार्ङ्देव ने 'पाव' के विषय में वर्णन करते हुए कहा है, वेणु से बनाया हुआ नौ अंगुल से परिमित वंश के पत्तों से ढका हुआ पाव होता है। यह लोकरीति से बजाया जाता है।

पविका – शार्ङ्देव ने पाविका के लक्षण इस प्रकार बताए हैं। यह वेणु से बनी हुई बारह अंगुल दीर्घ, एक अँगूठे जितनी मोटी, गर्भ में कनिष्का अँगुली के अग्र भाग जितनी रन्ध्र को आश्रित पाविका होनी चाहिए। इसमें कनिष्का अँगुली जितनी स्थूलता से फूत्कार रन्ध्र करना चाहिए। पाँच रन्ध्र स्वरों के उत्पादक होते हैं। अनेक प्रकार के वादन रागयुक्त और वेगकारी होते हैं।

मुरली – 'संगीत रत्नाकर' में मुरली का वर्णन इस प्रकार मिलता है। यह दो हाथ से अधिक विस्तार वाली मुख रन्ध्र से युक्त तथा चार स्वर रन्ध्र वाली होती है तथा इसकी ध्वनि मधुर होती है।

मधुकरी – शार्ङ्देव ने मधुकरी का वर्णन इस प्रकार किया है—श्रृंग के द्वारा बनायी गयी अथवा काहला के समान लकड़ी से बनायी गयी अट्ठाईस अंगुल दीर्घ की मधुकरी होती है। तुबरी (आडकी) के बीज के समान उसका मुख रन्ध्र बनाया जाना चाहिए। उस मुख रन्ध्र से चार अंगुल छोड़कर सात रन्ध्र करने चाहिए। मधुर नाद की सृष्टि के लिए यव के समान स्थूल चार अंगुल ताँबे की बनी हुई नलिका मुख रन्ध्र में स्थापित करनी चाहिए।

काहला – शार्ङ्देव ने काहला के विषय में कहा है— ताँबे अथवा चाँदी अथवा सोने से मध्य में छिद्र वाले धतूरे पुष्प के आकार के मुख वाले तीन हाथ जितनी दीर्घ काहला हा हू वर्ण से युक्त वीर—विरूद के उच्चारण के लिए लोक में बजायी जाती है। पार्श्वदेव ने भी सोमेश्वर एवं शार्ङ्देव के कथनों की पुनरावृत्ति की है। पार्श्वदेव द्वारा वर्णित सुषिर वाद्यों के अध्ययन करने पर हम यह पाते हैं कि पार्श्वदेव ने वाद्यों के विषय में सोमेश्वर एवं शार्ङ्देव के समान विस्तार से चर्चा नहीं की है। सुषिर वाद्यो के अन्तर्गत केवल काहला का वर्णन किया है।

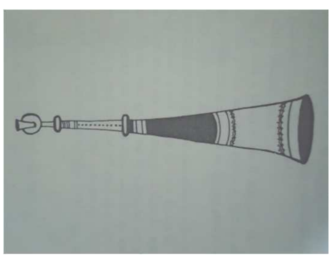

पावी

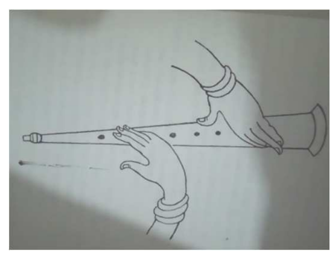

मधुकरी

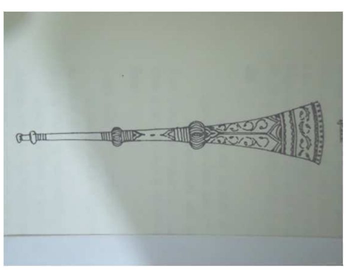

काहला

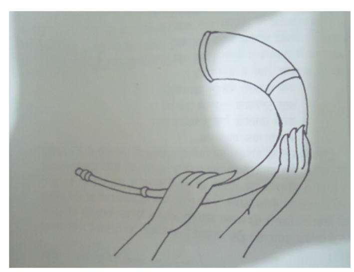

श्रृंग

2.5.3 आधुनिक कालीन सुषिर वाद्य – वर्तमान समय में प्रमुख रूप से निम्नलिखित सुषिर वाद्य प्रचलन में है, जैसे— वंशी, शहनाई, नादस्वरम्, सुन्दरी, हारमोनियम, क्लेरियोनेट आदि।

वंशी – वर्तमान समय में इसको बाँसुरी के नाम से जाना जाता है। संगीत के प्राचीन वाद्यों में 'वंशी' एक है। वंशी के निर्माण तथा आकार प्रकार में अन्य वाद्यों की तुलना में सबसे कम परिवर्तन हुआ।

वंशी के विभिन्न रूप, उनकी लम्बाई व छिद्रों की संख्या के आधार पर देखने को मिलते हैं। आधुनिक बाँसुरी के दो प्रकार प्रचलित है–

1. सीधी बाँसुरी एवं 2. आड़ी बाँसुरी

आधुनिक वंशी वादन में आड़ी वंशी का वादन अधिक प्रचलित है। वंशी वादन में स्वर की सही अनुभूति होना परम आवश्यक है। वायु अथवा फूँक के कम ज्यादा होने से इसमें सूक्ष्म स्वर का अन्तर रह जाता है।

शहनाई – सुषिर वाद्यों में शहनाई आज एक महत्वपूर्ण वाद्य के रूप में जाना जाता है। मधुकरी नामक वाद्य से इसकी उत्पत्ति मानी जाती है। पश्चिमी का ओबो वाद्य शहनाई के समान ही होता है। कुछ लोग शहनाई को फारसी वाद्य भी मानते हैं। शहनाई में ध्वनि उत्पत्ति का सिद्धान्त वही है जो वंशी में रहता है। इसकी मुख नलिका वंशी से भिन्न होती है। बाँसुरी को फूँक द्वारा बजाया जाता है। शहनाई की रीड को होठे के बीच में रखकर बजाते हैं। बनावट में साधारण वाद्य है तथा लकड़ी का बना होता है।

सुन्दरी – एक ही लकड़ी में सुन्दरी वाद्य का पूरा भाग बना होता है। इसमें स्टील के प्याले के स्थान पर लकड़ी का प्याला होता है। यह शहनाई से छोटा होता है। सुन्दरी का वादन तार सप्तक में अधिक होता है तथा मन्द्र सप्तक में इसका वादन नहीं हो पाता। यह महाराष्ट्र में अत्यन्त प्रचलित है।

हारमोनियम – वर्तमान में सबसे प्रचलित वाद्यों में हारमोनियम का स्थान है। चाहे शास्त्रीय संगीत हो या सुगम संगीत सभी की संगत में हारमोनियम की मुख्य भूमिका है।

वंशी(बाँसुरी)

हारमोनियम

शहनाई

सुषिर वाद्य–फूँक के आधार पर

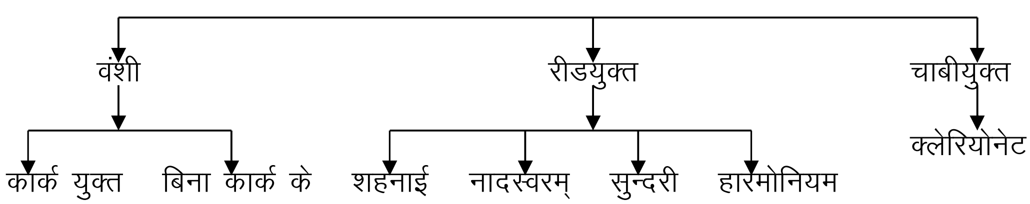

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

(i) आधुनिक कालीन सुषिर वाद्यों में सबसे प्रमुख वाद्य कौन सा है?

ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

(i) शहनाई .... वाद्यों की श्रेणी में आता है।
(ii) .... सुषिर वाद्य ताँबे अथवा चाँदी का बना होता है।
(iii)वंशी वाद्य का निर्माण ....से होता है।

ग) सत्य असत्य बताइये :–

(i) पाव सुषिर वाद्यों की श्रेणी में आता है।
(ii) श्रृंग वाद्य भैंस के सींग से बनता है।

2.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप जान चुके हैं कि संगीत में स्वर वाद्यों की परम्परा का विकास विभिन्न कालों में निरन्तर होता आया है। वाद्यों के ऐतिहासिक स्वरूप को भी आप क्रमबद्ध स्पष्ट रूप में जान चुके हैं। वाद्यों का जो आज स्वरूप दिखाई देता है, वह क्रमशः बहुत वर्षों के सतत प्रयास की प्रक्रिया का फल है। प्रारम्भिक अवस्था में वाद्य संरचना की दृष्टि से साधारण थे। धीरे–धीरे क्लिष्टता आती गई। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके हैं कि विभिन्न कालों में वर्णित वाद्यों के अध्ययन से स्पष्ट है कि वाद्यों का उपयोग किसी न किसी रूप में मानव की मनोवैज्ञानिक क्रियाओं के अधिक समीप रहा है। वाद्य अधिकांशतः सामूहिक रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं। स्वतंत्र वादन की परम्परा का विकास शनै–शनै हुआ है। भारतीय स्वर वाद्यों के अन्तर्गत तत् वाद्यों में वीणा सबसे प्रमुख है। गीत का अनुकरण अथवा स्वतंत्र वादन में प्रयुक्त वीणाएँ स्वर वीणा कहलाती हैं। सुषिर वाद्यों का महत्व तत् वाद्यों के समान है क्योंकि दोनों का प्रयोजन एक ही है। तत् वाद्यों में विपंची, एकतंत्री, किन्नरी आदि का महत्व समय के साथ कम हो गया परन्तु सुषिर वाद्यों में वंशी का एकछत्र साम्राज्य सदा से रहा है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप तत् एवं सुषिर वाद्यों के क्रमबद्ध विकास को भली–भांति जान चुके हैं।

2.7 शब्दावली

1. **नादात्मक** – संगीत के अन्तर्गत मधुर ध्वनि को नाद कहा जाता है। सम्पूर्ण संगीत नाद पर आश्रित है। नादात्मक का अर्थ है–मधुर स्वर से परिपूर्ण ध्वनि।
2. **द्विश्रुतिक, त्रिश्रुतिक एवं चतुर्श्रुतिक** – भारतीय शास्त्रीय संगीत में सात स्वर विभिन्न श्रुतियों पर स्थापित माने गये हैं। प्राचीन समय से 22 श्रुतियों का प्रचलन था। प्रत्येक स्वर की श्रुतियाँ भिन्न–भिन्न हैं। जैसे– षड़ज एवं पंचम, चतुर्श्रुतिक है; गन्धार एवं निषाद, त्रिश्रुतिक तथा धैवत एवं ऋषभ, द्विश्रुतिक है।
3. **आहत नाद** – किसी वाहय वस्तु के घर्षण एवं प्रहार से उत्पन्न नाद आहत नाद कहलाता है। जैसे तानपुरे के तार पर प्रहार से नाद उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त अनाहत नाद वह है जिससे स्वयंभू स्वरों की उत्पत्ति होती है।
4. **श्रुति वीणा, स्वर वीणा** – श्रुति वीणा द्वारा श्रुतियों को दर्शाया जाता है और सम्पूर्ण गीत रचना जो स्वरों पर आधारित हो वह स्वर वीणा के द्वारा दर्शायी जाती है।
5. **गज** – अनेक तत् वाद्य गज से बजाये जाते हैं, जैसे सारंगी, वायलिन। गज घोड़े के बालों का बना होता है। लकड़ी के दोनों किनारों पर घुन्टी लगाकर छेद करते है, जिसमें घोड़े के बालों को कसा जाता है।

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.3 की उत्तरमाला :–

ख) सत्य असत्य बताइये :–

(i) असत्य
(ii) असत्य
(iii) सत्य

2.4 की उत्तरमाला :–

ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये :–

(i) तत्
(ii) किन्नरी
(iii) त्रितंत्री

2.5 की उत्तरमाला :—

ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :—

(i) सुषिर
(ii) काहला
(iii) बाँस

ग) सत्य असत्य बताइये :—

(i) पाव सुषिर वाद्यों की श्रेणी में आता है।
उत्तरः सत्य
(ii) श्रृंग वाद्य भैस के सींग से बनता है।
उत्तरः सत्य

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 रेखा सेठ,(2002), *भारतीय तंत्र वाद्यों की उत्पत्ति एवं विकास*, ईशान प्रकाशन, मेरठ।
2. डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर पंराजपे,(1969), *भारतीय संगीत का इतिहास*, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
3. डॉ0 राधेश्याम जायसवाल,(1983), *भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास*, वाराणसेय संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भानु कुमार जैन,(1983), *हिन्दुस्तानी संगीत में तंतु वाद्य*, संगीत महाविद्यालय, भोपाल।
2. पं0 लालमणि मिश्र,(1973), *भारतीय संगीत वाद्य*, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वाद्यों की उत्पत्ति को समझाते हुए तत् वाद्यों के विकास क्रम को समझाईये।
2. सुषिर वाद्यों की उत्पत्ति एवं विकास के सम्बन्ध में एक निबन्ध लिखिये।

इकाई 3 – तंत्र वाद्य के घराने

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 घराना तथा वादन शैली का अर्थ
3.4 तंत्र वाद्य के प्रमुख घराने
3.4.1 तानसेन का घराना अथवा सैनी घराना
3.4.2 रामपुर के बीन (रूद्रवीणा) वादकों का घराना
3.4.3 बीनकार बंदे अली खाँ का घराना
3.4.4 मसीत खाँ का घराना
3.4.5 इमदाद खाँ का घराना
3.4.6 मुश्ताक़ अली खाँ का घराना
3.4.7 सरोदिया गुलाम अली खाँ बगंश का घराना
3.4.8 अलाउद्दीन खाँ का घराना अथवा मैहर घराना
3.4.9 विघ्नेश्वर शास्त्री का वायलिन घराना
3.4.10 शम्भूनाथ मिश्र का सारंगी घराना
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0आई0–102) के प्रथम खण्ड की तीसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप बता सकते हैं कि वाद्य कितने प्रकार के होते हैं तथा तंत्र वाद्य के अन्तर्गत किन वाद्यों का समावेश होता है। तंत्र वाद्य के प्रमुख घराने एवं वादन शैली(बाज) तथा शिष्य परम्परा बहुत विस्तृत है।

प्रस्तुत इकाई में तंत्र वाद्य के घरानों की विशेषताओं एवं उनके प्रमुख संगीतज्ञों का संक्षिप्त परिचय एवं वादन शैली की चर्चा की गई है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप तंत्र वाद्यों के विभिन्न घरानों की शिष्य परम्परा को जानेंगे तथा उनकी भिन्न–भिन्न वादन शैली का विश्लेषण कर सकेंगे। भारतीय संगीत के अन्तर्गत बहुत से तंत्रीवादक ऐसे हैं जो अनेक वाद्यों को बजाने में निपुण रहे हैं। उनके विषय में भी आप जान सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

- बता सकेंगे कि तंत्री वाद्य में घरानों का निर्माण किस प्रकार हुआ।
- समझ सकेंगे की तंत्री वाद्य के एक घराने में एक से अधिक वाद्यों को बजाने वाले विशिष्ट संगीतज्ञ हैं तथा विभिन्न घरानों के संस्थापक संगीतज्ञ किस प्रकार विशिष्ट वादन शैली के कारण प्रसिद्धि पाते हैं तथा उनकी एक लम्बी शिष्य परम्परा होती है।

- विभिन्न घरानों की वादन शैली को श्रेणीबद्ध कर सकेंगे अर्थात प्रत्येक घराने में जो शैलीगत विशेषताएँ हैं जिनसे घराने अपना एक अलग अस्तित्व प्राप्त करते हैं, बता सकेंगे।
- वर्तमान में इतने अधिक तंत्र वादकों के विषय में तथा उनकी प्रस्तुति एवं अभिव्यक्ति में अन्तर कर सकेंगे क्योंकि आप उनके विशिष्ट घरानों की शैली को जान चुके होंगे।
- समझ सकेंगे कि कलाकारों की शिक्षा, साहित्यिक कार्य, शिष्य परम्परा तथा वादन विशेषताओं का क्या स्वरूप है।

3.3 घराना तथा वादन शैली का अर्थ

संस्कृति के विकास के साथ ही संगीत का निरन्तर विकास होता आया है। भारतीय संस्कृति में संगीत को सदैव आदर की दृष्टि से देखा जाता है। संगीत की परम्परा घरानों के रूप में निरन्तर चली आ रही है। सामान्य रूप से घराना शब्द का अर्थ कुल, वंश, परिवार, गोत्र, किसी विद्या के लिए प्रसिद्ध कुल आदि होता है। संगीत में भी घराना शब्द का प्रयोग प्रचलित है। डॉ0 एस0 परांजपे ने 'संगीत बोध' में लिखा है कि, "घराना एक विशिष्ट गायन शैली, वादन शैली या नृत्य शैली या 'रीति' जिस कलाकार के द्वारा प्रवर्तित होती है, वे ही उसके संस्थापक माने जाते हैं और उन्हीं के नाम से अथवा निवास स्थान से घराने का नामकरण होता है।" घराने का सूत्रपात तब होता है, जब घराने की शैली में कोई विलक्षणता हो या कोई अनोखा तत्व हो। शैली का अनोखापन घराने का विशिष्ट लक्षण होता है।" इस कथन से स्पष्ट है कि संगीत में घराना शब्द शैली को दर्शाता है। वाद्य संगीत में भी घरानों का विशेष महत्व है। वाद्य संगीत में बजाने की रीति को चलती भाषा में 'बाज' कहा जाता है। बाज का अर्थ बजाने की रीति अथवा स्टाइल। बाज शब्द एक प्रकार की विशिष्ट शैली का ही द्योतक है। शैली और बाज एक–दूसरे के पर्याय हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि घराना शब्द जहाँ एक ओर वंश परम्परा का बोध कराता हैं, वहीं दूसरी ओर विशिष्ट शैली अर्थात् बाज का भी बोध कराता है। किसी भी नई विलक्षण गायकी अथवा बाज का घराना अपने आप नहीं बन सकता। घराना बनने की भी एक शर्त होती है, जो अनिवार्य है। किसी घराने की शैली की सुव्यवस्थित परम्परा और उसके विशेष संगीत का क्रम ही उसे घराना बनने का अधिकार देते हैं। गायकों अथवा वादकों की कम से कम तीन या चार पीढ़ियों के बाद ही किसी घराने का जन्म हो सकता है और संगीत में प्रगति हो सकती है। एक घराने की विशेषता उसकी शैली में होती है और वह उसी से जाना जाता है। शैली ही उसकी प्रतिष्ठा की सूचक बन जाती है। एक घराने पर उसकी शैली की छाप पड़ी होती है, परन्तु शैलियों का जन्म घरानों के साथ ही हुआ। एक घराना ही किसी शैली का प्रारम्भकर्ता या जन्मदाता होता है और उसका उद्‌गम स्थान बन जाता है।

3.4 तंत्र वाद्य के प्रमुख घराने

संगीत के उत्तरोत्तर विकास के साथ ही वाद्य के घराने अथवा शैलियों का भी क्रमिक विकास हुआ। संगीतज्ञों की सृजनात्मक अभिव्यक्ति के द्वारा ही किसी विशेष वादन शैली का जन्म होता है। जैसा आप जान चुके है वादन की शैली को 'बाज' कहा जाता है। आचार्य भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में तत्, अवनद्ध, घन एवं सुषिर चार प्रकार के वाद्यों का वर्णन किया है। तत् को ही 'तंत्रीकृत' कहा गया है। रूपात्मक सौन्दर्य और नादात्मक माधुर्य के कारण तंत्री वाद्य जनमानस में लोकप्रिय रहे हैं। शास्त्रीय संगीत के सिद्धान्तों की प्रामाणिकता को सिद्ध करने के लिए भी ये वाद्य बड़े उपयोगी सिद्ध हुए हैं। अतः स्पष्ट है कि प्राचीन काल से ही संगीत विद्या में तंत्री वाद्यों का अपना महत्वपूर्ण स्थान रहा है। आज भी संगीत की प्रत्येक विधा में तंत्री वाद्यों का विशेष महत्व है। क्योंकि इन वाद्यों का एकल वादन में तो प्रयोग होता ही है, साथ ही इनका संगत एवं वाद्यवृंद (आर्केस्ट्रा) में भी बहुतायत से प्रयोग होता है।

वर्तमान में गायन, वादन एवं नृत्य तीनों ही विधाओं में बहुत से घरानों का प्रचलन है। तंत्री वादकों के घराने भी स्थान विशेष और व्यक्ति विशेष के नाम पर ही प्रचलित दिखाई देते हैं। तंत्री वाद्य में सेनी घराने का नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध है। सेनी घराने का सम्बन्ध तानसेन से बताया जाता है।

3.4.1 तानसेन का घराना अथवा सेनी घराना – तानसेन की वंश परम्परा को सेनिया नाम से जाना जाता है। तानसेन का घराना तीन भागों में विभक्त हो गया था। पहले घराने में थे– तानसेन के पुत्र तथा वंशीय लोग, दूसरे में थे– पुत्री तथा दामाद के वंशज और तीसरे में तानसेन के शिष्य सम्प्रदाय के कलाकार थे। तानसेन की पुत्र परम्परा एवं शिष्य परम्परा तो रही, परन्तु तानसेन की पुत्री के होने न होने पर विद्वानों के विभिन्न मत है।

(i) तानसेन की पुत्री अथवा दामाद का घराना – प्रसिद्ध विद्वान बृहस्पति के अनुसार बैजू के शिष्य बख्शू एवं बख्शू के शिष्य तानसेन थे। तानसेन की कन्या सरस्वती का विवाह राजा समोखन सिंह के पुत्र नौबत खाँ(मिश्री सिंह) से हो गया था। समोखन सिंह के पुत्र मिश्री सिंह अद्वितीय वीणा वादक थे। अनेक विद्वानों ने इस बात का खण्डन करते हुए कहा है कि तानसेन की पुत्री होना मात्र कल्पना थी। इस सम्बन्ध में कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता है।

(ii) तानसेन की पुत्र परम्परा – तानसेन के चार पुत्रों के नाम सूरत सेन, शरत सेन, तरंग सेन और विलास खाँ बताया गया है। सूरत सेन का पुत्र मोहन सेन को बताया है। विलास खाँ के केवल एक शिष्य मिसरी खाँ का वर्णन ही उपलब्ध है। विलास खाँ के दामाद लाल खाँ के पौत्र भूपत खाँ तक तानसेन की पुत्र वंश परम्परा चलती रही।

(iii)तानसेन की शिष्य परम्परा – तानसेन के शिष्य मियाचंद, रंग खाँ और बख्त खाँ हुए। लाल खाँ, तानसेन के पुत्र के दामाद के साथ तानसेन के शिष्य भी रहे। रंग खाँ की शिष्या बसन्ती रही। इस प्रकार कह सकते हैं कि तानसेन की पुत्री के सम्बन्ध में प्रमाणिक जानकारी नहीं मिलती है। यहाँ तक अबुल फज़ल द्वारा प्रस्तुत सूची में भी इसका उल्लेख नहीं है।

तानसेन का घराना अथवा सैनी घराना

बैजू (जन्म 1450 ई0 या इससे पूर्व)

↓

शिष्य बख्शू

↓

तानसेन(जन्म 1493–1589)

↓

तरंग सेन (पुत्र) | विलास खाँ (पुत्र) | सूरतसेन (पुत्र) | शरतसेन (पुत्र) | मियाचंद (शिष्य) | रंग खाँ (शिष्य) | बख्त खाँ (शिष्य)

विलास खाँ (पुत्र) ↓

मिसरी खाँ ढारी (शिष्य) | लाल खाँ(तानसेन के शिष्य, विलास खाँ के दामाद, 1572–1652)

लाल खाँ ↓

खुशहाल खाँ(पुत्र) | बिसराम खाँ(पुत्र)

बिसराम खाँ ↓

भूपत खाँ(पुत्र)

3.4.2 रामपुर के बीन (रूद्रवीणा) वादकों का घराना – उमराव खाँ एवं मोहम्मद अली खाँ नामक दो भाइयों द्वारा इस घराने की नींव पड़ी। उमराव खाँ प्रसिद्ध बीन वादकों में थे जो काशी नरेश की सभा में संगीतज्ञ रहे। इनकी वादन शैली में आलाप के बारह अंग प्रचलित रहे। इनके बड़े पुत्र अमीर खाँ ने बीन वादन परम्परा का निर्वाह करते हुए रामपुर दरबार में आश्रय पाया। इन्हें अनेक ध्रुपद भी कंठस्थ थे। इनके एकमात्र पुत्र वजीर खाँ थे। प्रसिद्ध बीनकार अमीर खाँ के पुत्र एवं उमराव खाँ के पौत्र होने के कारण संगीत विद्या वजीर खाँ को परम्परागत पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुई। अपने वालिद के समान ही इन्हें भी बहुत से ध्रुपद याद थे। इन्हें रागों की अत्यन्त मार्मिक जानकारी थी। इनके तीन

पुत्र नजीर खाँ उर्फ प्यारे मियां, नसीर खाँ और सगीर खाँ थे। इनकी विलक्षण प्रतिभा का पता इसी बात से चलता है कि इन्हें आलाप के अंगों के बड़े हिस्से में भोग—आभोग और छोटे हिस्से में लड़ंत जोड़ने का श्रेय दिया जाता है। इनके प्रमुख शिष्यों में नवाब हामिद अली, मैहर के बाबा अलाउद्दीन खाँ(सरोद), ग्वालियर के उस्ताद हाफ़िज अली खाँ(सरोद), मुहम्मद हुसैन, तारा प्रसाद घोष(ध्रुपद), प्रमथ नाथ बंदोपाध्याय आदि हुए। आचार्य बृहस्पति के अनुसार भातखण्डे जी वज़ीर खाँ के विधिवत् शिष्य हुए थे। वज़ीर खाँ ने अपने अन्तिम समय में अपने पौत्र दबीर खाँ को बीन वादन की तालीम प्रदान की। दबीर खाँ को संगीत की विद्या परम्परागत पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुई। इन्होंने बीन की तालीम वज़ीर खाँ से प्राप्त की जो अपने युग के श्रेष्ठ बीन वादक थे। दबीर खाँ को बीन के साथ ध्रुपद की तालीम भी मिली थी। इनके शिष्यों में क्षमेन्द्र मोहन ठाकुर, कालिदास सान्याल, जितेन्द्र मोहन सेनगुप्त, राधिका मोहन मैत्र आदि कई कलाकार हुए।

<u>रामपुर के बीन (रूद्रवीणा) वादकों का घराना</u>

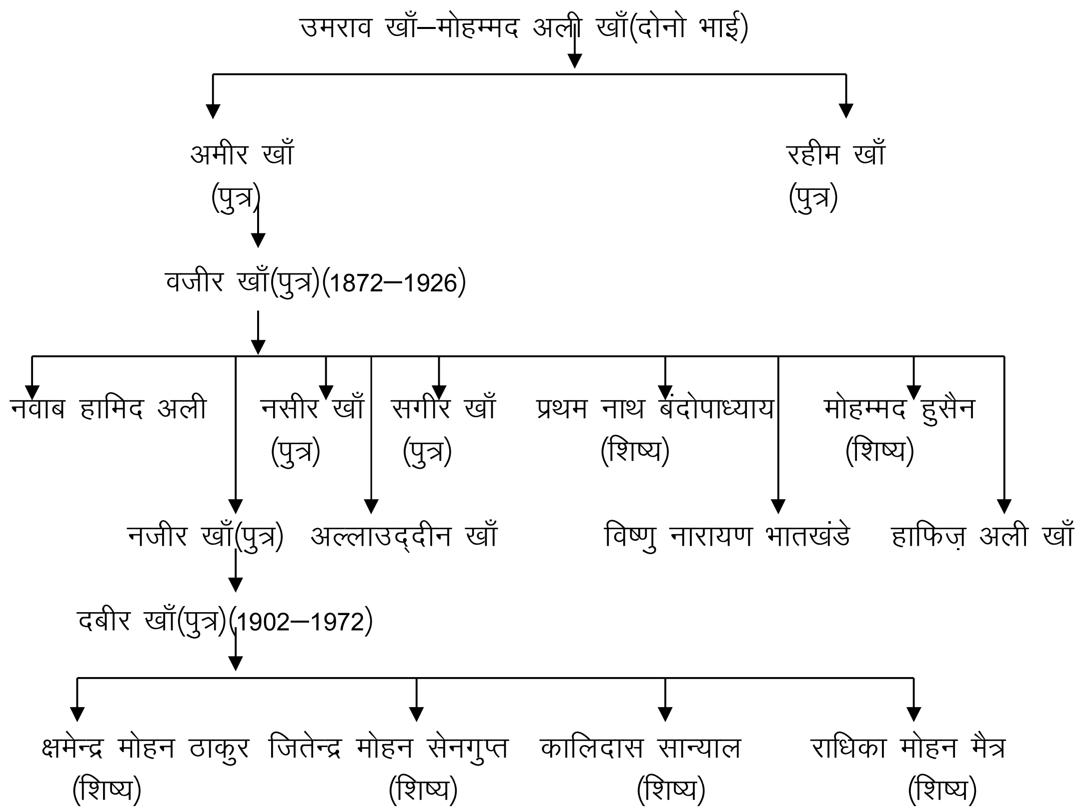

<u>3.4.3 बीनकार बन्दे अली खाँ का घराना</u> — बीन वादन में बन्दे अली खाँ विशिष्ट महारथ हासिल थी। इनकी विशिष्ट वादन शैली के कारण इनके नाम से इस घराने की नींव पड़ी। इनके दादा खाँ साहब रहीम अली दिल्ली दरबार में दरबारी गायक के रूप में रहते थे। इनके पिता का नाम गुलाम ज़ाकिर था। इनके घराने के सम्बन्ध में मतभेद पाया जाता है। एक मत के अनुसार सहारनपुर, दूसरे मत के अनुसार किराना और तीसरे मत के अनुसार हसन खाँ दाढ़ी से इनका सम्बन्ध बताया जाता है।

बन्दे अली खाँ ने अपने पिता और चाचा से संगीत सीखा। इन्हें फ़ैयाज हुसैन खाँ एवं बहराम खाँ से भी तालीम मिली। यह भी कहा जाता है कि वीणा वादन की शिक्षा इन्हें सदारंग के बड़े लड़के निर्मल शाह के द्वारा प्राप्त हुई। वीणा वादन की कला में वह उत्तरोत्तर उन्नति करते गए और जयपुर, ग्वालियर तथा इन्दौर दरबार में विशेष रूप से उन्होंने अपनी कला का प्रदर्शन बहुत समय तक किया।

वादन शैली – बंदे अली खाँ के बीन वादन में आलाप चारी की यह विशेषता थी कि उसमें मींड, घसीट, बहलाव और स्वर क्रियाओं के अन्य प्रदर्शन अति विलम्बित लय में होते थे और गमक का प्रयोग वे बहुधा द्रुत लय में करते थे। एक मत के अनुसार इन्होंने किसी को बीन की तालीम नहीं दी। अन्य मतानुसार मुराद खाँ को इनसे ही तालीम हासिल हुई। रजब अली भी इनके शागिर्द बताए जाते हैं।

उस्ताद रजब अली खाँ ने बीन हसन खाँ अंबेठे वालों से सीखी। ये दिलरूबा एवं सितार भी उत्तम बजाते थे। बीनकार बन्दे अली खाँ से भी इन्हें शिक्षा प्राप्त हुई थी, जयपुर के महाराजा राम सिंह भी इनके शागिर्द हुए थे तथा इनसे बीन सीखी थी। सितार की कुछ गतें भी इन्होंने रची थीं, जो इनके खानदान वालों को अभी तक याद हैं।

उस्ताद मुराद खाँ भी बन्दे अली खाँ के शागिर्द थे। बीनकारों में इनका कोई जोड़ न था। इनके पुत्र निसार हुसैन खाँ सितार बहुत अच्छा बजाते थ, जिनका कम उम्र में ही इनके रहते स्वर्गवास हो गया।

वादन शैलीः मुराद खाँ बीन पर आलाप बजाने में जितने प्रवीण थे, उतनी ही खूबी से वह गतकारी और गायकी प्रस्तुत करने में भी कुशल थे। वह जब बीन बजाने बैठते तो उसमें लीन हो जाते। मुराद खाँ ने बीन पर ध्रुपद बाज न बजाते हुए ख्याल पद्धति से बीन वादन करके सैकड़ों महफिलों में अपना रंग जमाया। वह अपने आप को ख्यालिया बीनकार कहते थे। खाँ साहब ने अपने कई अच्छे शागिर्द तैयार किए, जिनमें इन्दौर के बाबू खाँ, अहमदाबाद के मुशर्रफ खाँ, धारवाड़ के कृष्णराव पालंदे तथा श्री कृष्णराव कोल्हापुरे के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

उस्ताद मुशर्रफ़ खाँ ने सम्पूर्ण हिन्दुस्तान के बीनकारों में अपना नाम स्थापित करने वाले मुराद खाँ से तालीम हासिल की। उस्ताद मुसाहब अली खाँ, मुशर्रफ़ खाँ के बड़े सुपुत्र थे और इन्होंने बीन की तालीम पिता से ही हासिल की थी। उस्ताद सादिक अली खाँ, मुशर्रफ़ खाँ के द्वितीय पुत्र थे। अपने पिता से ही उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी। बहुत दिनों तक झालावाड़ रियासत में रहे। अलवर के महाराज जयसिंह ने इन्हें जागीर एवं ईनाम आदि देकर अपने यहाँ रखा था।

उस्ताद असद अली खाँ को अपने पिता सादिक अली खाँ से बीन की शिक्षा मिली। यह अपने वादन में आलाप, जोड़, झाला बड़ी चयनदारी और क्रमबद्ध शैली से प्रस्तुत करते थे। इनका वादन ध्रुवपद की खंडार बानी शैली पर आधारित रहा। पंडित कृष्णराव कोल्हापुरे, उस्ताद मुराद खाँ के शिष्य थे। ये बीनवादक के रूप में प्रसिद्ध हुए। यह बड़ौदा संस्थान में बीनकार रहे। इनके बीनवादन में ख्याल अंग की प्रधानता थी। उस्ताद बाबू खाँ ने भी संगीत शिक्षा मुराद खाँ से प्राप्त की। ये इन्दौर महाराज के यहाँ दरबारी संगीतज्ञ के रूप में कार्यरत रहे।

<u>बीनकार बन्दे अली खाँ का घराना</u>

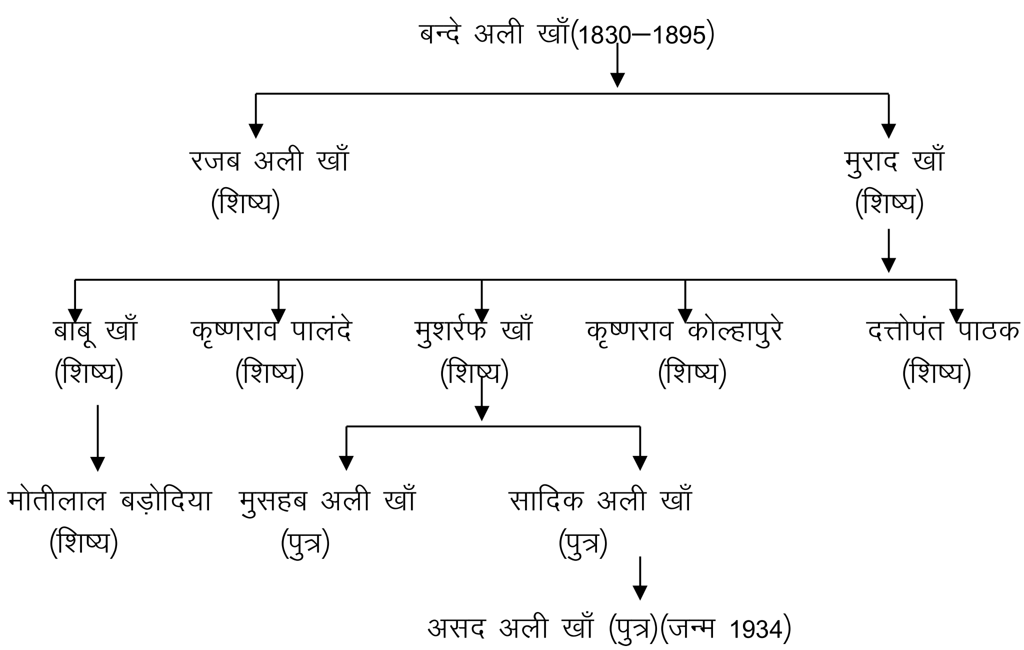

<u>3.4.4 मसीत खाँ का घराना</u> – सितार वादक के रूप में प्रथम नाम अमीर खुसरो (फकीर) का मिलता है, जो मसीत खाँ के दादा थे। फिरोज खाँ के पुत्र मसीत खाँ हुए। मसीत खाँ ने पिता से सितार बजाना सीखकर सितार को कुछ परिष्कृत किया। मसीत खाँ के पुत्र बहादुर खाँ थे। रहीम सेन, मसीत खाँ के भानजे एवं शिष्य दुलह खाँ के दामाद थे। बहादुर खाँ ने कई गत तोड़ों की रचना की। इनकी शुद्ध सारंग की गत बहुत प्रसिद्ध है। यह बीनकार भी थे। उस्ताद मसीत खाँ ने अपने भानजे दुलह खाँ को सितार सिखाया। दुलह खाँ ध्रुपद और वीणावादन में बड़े प्रवीण थे। यह अपने समय के नामी कलाकार थे। कुछ समय तक ग्वालियर नरेश के यहाँ भी रहे। दूलह खाँ ने अपने जामाता (दामाद) रहीम सेन को सितार सिखाया।

उस्ताद रहीम सेन ध्रुपद के अच्छे उस्ताद रहे। रहीम सेन के तीन पुत्र अमृत सेन, न्यायतसेन और लालसेन थे। रहीम सेन के और भी बहुत शिष्य थे, इनमें से हुसैन खाँ सबसे प्रवीण थे।

उस्ताद अमृत सेन यद्यपि रहीम सेन के पुत्र थे तथापि सितार पांडित्य में वह रहीम सेन के पुत्र नहीं, बल्कि भाई प्रतीत होते थे। इसी पांडित्य के कारण लोग एक साथ अमृत सेन रहीम सेन नाम पुकारते थे।

<u>वादन शैली</u> – मियां अमृत सेन जैसे राग के बादशाह थे वैसे लय–ताल के भी बादशाह थे। बड़े–बड़े पखावजी इनके लय–ताल के पांडित्य से चकित हो जाते थे। वह जोड़ बजाकर जब गत बजाते थे, तो पखावजी के ताल के आधार पर नहीं, बल्कि अपने पैर से ताल देते हुए उसके विश्वास पर बजाते थे। सितार की बहुत सी गतें तो मसीत खाँ आदि उस्तादों की बनाई चली आ रही थीं, वे सीधी–सीधी प्राचीन कहलाती थीं। कुछ रागों की गतें रहीम सेन ने भी बनाईं। शेष बहुत सी गतों की रचना अमृत सेन द्वारा की गईं। ये गतें लय की टेढ़ी चाल और मींडों से भरी रहती थीं। वह मसीतखानी बाज बजाते थे। इनकी गतों में प्रचलित मसीतखानी के मिज़राब के बोलों के अतिरिक्त विशेष प्रकार की मिज़राबों के बोलों का भी प्रयोग दिखाई देता है।

इनके दो छोटे भाई न्यामत सेन और लालसेन थे। इनमें से न्यामत सेन को अमृत सेन ने सितार सिखाया था, जो छोटी उम्र में ही मथुरा में स्वर्गवासी हुए। अतः अपने मामा मियां हैदरबख्श के कुटुम्ब को ही अपना कुटम्ब समझते थे। हैदरबख्श के दो पुत्र मम्मू खाँ और अलमू खाँ थे। मम्मू खाँ के पुत्र हफ़ीज खाँ को अमृत सेन ने ऐसा सितार सिखाया कि हफ़ीज खाँ भी सितार में नाम कर गये। मियां अमृत सेन की बहन हैदरबख्श के ज्येष्ठ पुत्र वजीर खाँ को ब्याही थी, जिसने अमीर खाँ एवं निहाल सेन दो पुत्र हुए। अमृत सेन ने इन दोनों को भी सितार सिखाया।

उस्ताद अमीर खाँ के पिता का नाम वजीर खाँ था, जो हैदरबख्श ध्रुपदिये के ज्येष्ठ पुत्र थे। अमृत सेन की बहन वजीर खाँ से ब्याही थी। अतः रिश्ते में अमृत सेन इनके मामा लगते थे। अमीर खाँ के एक भाई निहाल सेन थे। अमीर खाँ ने अपने मामा अमृत सेन से और नाना रहीम सेन से शिक्षा प्राप्त की थी। अमृत सेन के शिष्यों में अमीर खाँ सबसे विद्वान और कीर्तिमान हुए।

<u>मसीत खाँ का घराना</u>

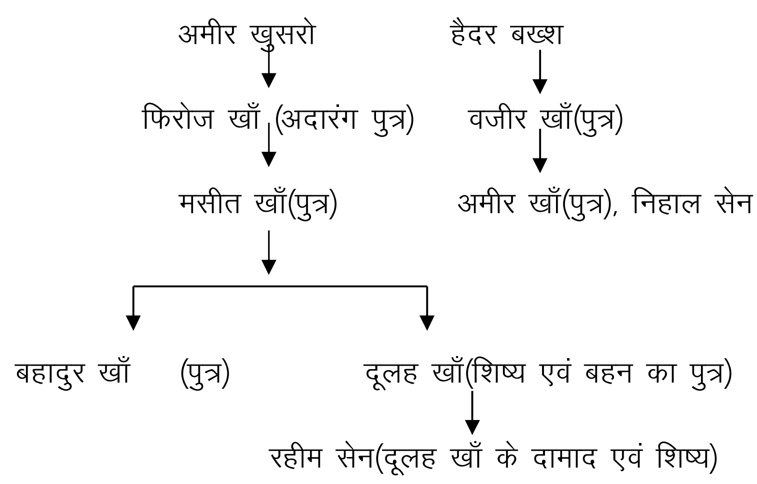

रहीम सेन(दूलह खाँ के दामाद एवं शिष्य)

↓

अमृत सेन(पुत्र) | न्यामत सेन(पुत्र) | लालसेन(पुत्र) | हुसैन खाँ(भाई एवं शिष्य) | पुत्री

अमृत सेन(पुत्र) ↓

न्यामतसेन(भाई एवं शिष्य) | अमीर खाँ(शिष्य एवं भांजा) | निहालसेन(भांजा एवं शिष्य) | सुदर्शनाचार्य(शिष्य)

3.4.5 इमदाद खाँ का घराना – वाद्य संगीत में एक महत्वपूर्ण घराना है 'इमदाद खाँ घराना'। कुछ लोग इसे 'इटावा घराना' या 'इमदादखानी बाज' के नाम से भी सम्बोधित करते हैं। इस घराने के कलाकार पिछली चार पीढ़ियों से सुरबहार और सितार की साधना करते रहे हैं। इन्होंने सुरबहार और सितार की वादन शैली को एक नया आयाम दिया है। उस्ताद इमदाद खाँ को प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता उस्ताद साहब दादा खाँ से ही प्राप्त हुई। इनके दो पुत्र इनायत खाँ और वहीद हुसैन खाँ हुए तथा तीन पुत्रियाँ हुईं। इनके प्रमुख शिष्यों में ब्रजेन्द्र किशोर राय चौधरी, प्रकाश चन्द्र सेन (इसराज), कल्याणी मल्लिक और उ0 मम्मन खाँ (सारंगी) आदि हुए। वह जब इन्दौर में तुकोजीराव होलकर के दरबार में थे, तब सन् 1920 में उनका स्वर्गवास हो गया।

उस्ताद इनायत खाँ की शिक्षा–दीक्षा इनके पिता उ0 इमदाद खाँ से हुई। इसके अतिरिक्त इन्होंने अलादिया खाँ, अलाबंदे खाँ, जाकिरूद्दीन खाँ, दौलत खाँ और सज्जाद मुहम्मद से भी तालीम हासिल की। उस्ताद इनायत खाँ के दो पुत्र विलायत खाँ और इमरत खाँ हुए तथा तीन पुत्रियाँ नसीरन बीबी, शरीफन बीबी तथा रहीयन बीबी हुई। बंगाल में इन्होंने बहुत से लोगों को संगीत की शिक्षा प्रदान की। इनके शिष्यों में उल्लेखनीय नाम हैं– जितेन्द्र मोहन सेनगुप्त, डी0टी0 जोशी, विमलाकान्त रायचौधरी, वीरेन्द्र किशोर रायचौधरी, अमियकांति भट्टाचार्य, क्षेमेन्द्र मोहन ठाकुर, जान गोमेस, ज्ञानकांत लाहिड़ी, विपिनचन्द्र दास, विमलेन्दु मुखर्जी आदि।

वादन शैलीः उस्ताद इनायत खाँ मसीतखानी और रजाखानी गत बजाते थे। इन्होंने बढ़त करने का सिलसिला कायम किया। वह एक पर्दे पर बहुत देर तक आलाप किया करते थे, उस्ताद इमदाद खाँ के समय में जो मुर्कियां प्रचलित नहीं थीं, उन मुर्कियों को उस्ताद इनायत खाँ ने सितार में बजाना प्रारम्भ कर दिया। वह गत तोड़ा वादन में प्रवीण थे और उसे विकसित रूप प्रदान करने में उनका सराहनीय योगदान रहा। छूट की तानों के साथ ही विभिन्न प्रकार की तिहाइयों के भी वह मर्मज्ञ थे। तबले और पखावज की लय की काट तराश को उन्होंने गत और तोड़ों में समाहित किया। आलाप और तानें बहुत कुछ सधी हुई होती थी। झाले में आप विशेष प्रकार का समां बांधते थे, जिसे सुनकर लोग मुग्ध हो जाते थे। इसके अतिरिक्त उस्ताद इनायत खाँ ने हाथ की तकनीक को भी बहुत विकसित किया। उस्ताद इमदाद खाँ के पौत्र एवं उस्ताद इनायत खाँ के पुत्र उस्ताद विलायत खाँ ने अपने घराने का नाम खूब रोशन यिका। इनका जन्म सन् 1927 में सांगीतिक परिवार में हुआ, जिसमें पीढ़ियों से सुरबहार और सितार की निरन्तर साधना की जाती रही। उस्ताद इमदाद खाँ की अपेक्षा इनके सुरबहार और सितार की जवारी अधिक खुली हुई तथा आस (गूंज) युक्त थी। राग बागेश्री एवं बिहाग का प्रारम्भ इन्होंने तरबों को छेड़कर किया है तथा जिसमें इन्होंने अतिमंद्र सप्तक के स्वरों का प्रयोग भी किया है, जिससे स्पष्ट है कि उस्ताद इमदाद खाँ के समान ही ये सितार मिलाते थे, किन्तु आजकल इनके घराने में अतिमंद्र सप्तक के स्वरों का प्रयोग नहीं किया जाता, क्योंकि तारों को परिवर्तित कर दिया गया है। उस्ताद इनायत खाँ का रिकार्ड सुनने से स्पष्ट होता है कि वह उत्कृष्ट ढंग से मींड का प्रयोग अपने वादन में करते थे। उस्ताद विलायत खाँ ने अपनी शैली और तकनीक को प्रस्तुत करने के लिए सितार की बनावट में और भी परिवर्तन किए। तबली मोटी कर दी, तार गहन बड़ा कर दिया और पर्दे भी मोटे प्रयोग करना प्रारम्भ किया तथा घुड़च की ऊँचाई भी बढ़ा दी।

उस्ताद विलायत खाँ आलाप के बाद जोड़ बजाते हैं, उसमें कई दर्जे कायम करते हैं। इस जोड़ अंग में तीनताल का एक चक्र बनाते हैं। इस चक्र में वह विभिन्न मात्राओं से उठकर बहुत ही आकर्षक ढंग से एक निश्चित स्वर पर आते हैं। इस प्रकार के वादन का कोई विशेष नाम उन्होंने नहीं दिया, किन्तु अरविन्द पारिख ने इसे लड़गुथाव के नाम से सम्बाोधित किया। वास्तव में देखा जाए तो यह

उस्तात विलायत खाँ की ही अपनी सूझ–बूझ का परिणाम है लेकिन इसके मूल में उस्ताद इमदाद खाँ द्वारा स्थापित किए गए कुछ मूल सिद्धान्त हैं।

उस्ताद विलायत खाँ साहब के सुपुत्र शुजात खाँ आजकल अच्छा सितार बजा रहे हैं। इमरत खाँ ने भी उस्ताद विलायत खाँ से मार्गदर्शन प्राप्त किया है। इनके प्रमुख शिष्यों में अरविन्द पारिख, कल्याणी राज, काशीनाथ मुखोपाध्याय, बेंजामिन गोमस, हशमत अली खाँ, गिरिराज, धर्मवीर आदि विशेष उल्लेखनीय है।

अरविन्द पारिख एक व्यवसायी संगीतज्ञ न होकर एक शौकीन कलाकार ही हैं। इन्होंने अपनी संगीत साधना से संगीत जगत में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है।

इनके शिष्य बुधादित्य मुखर्जी ने सितार वादन के क्षेत्र को समृद्ध बनाया तथा विशेष दिशा दी है। एक प्रकार से इन्होंने देश और विदेश में भारतीय संगीत का गौरव बढ़ाया।

इमदाद खाँ का घराना (सुरबहार, सितार)

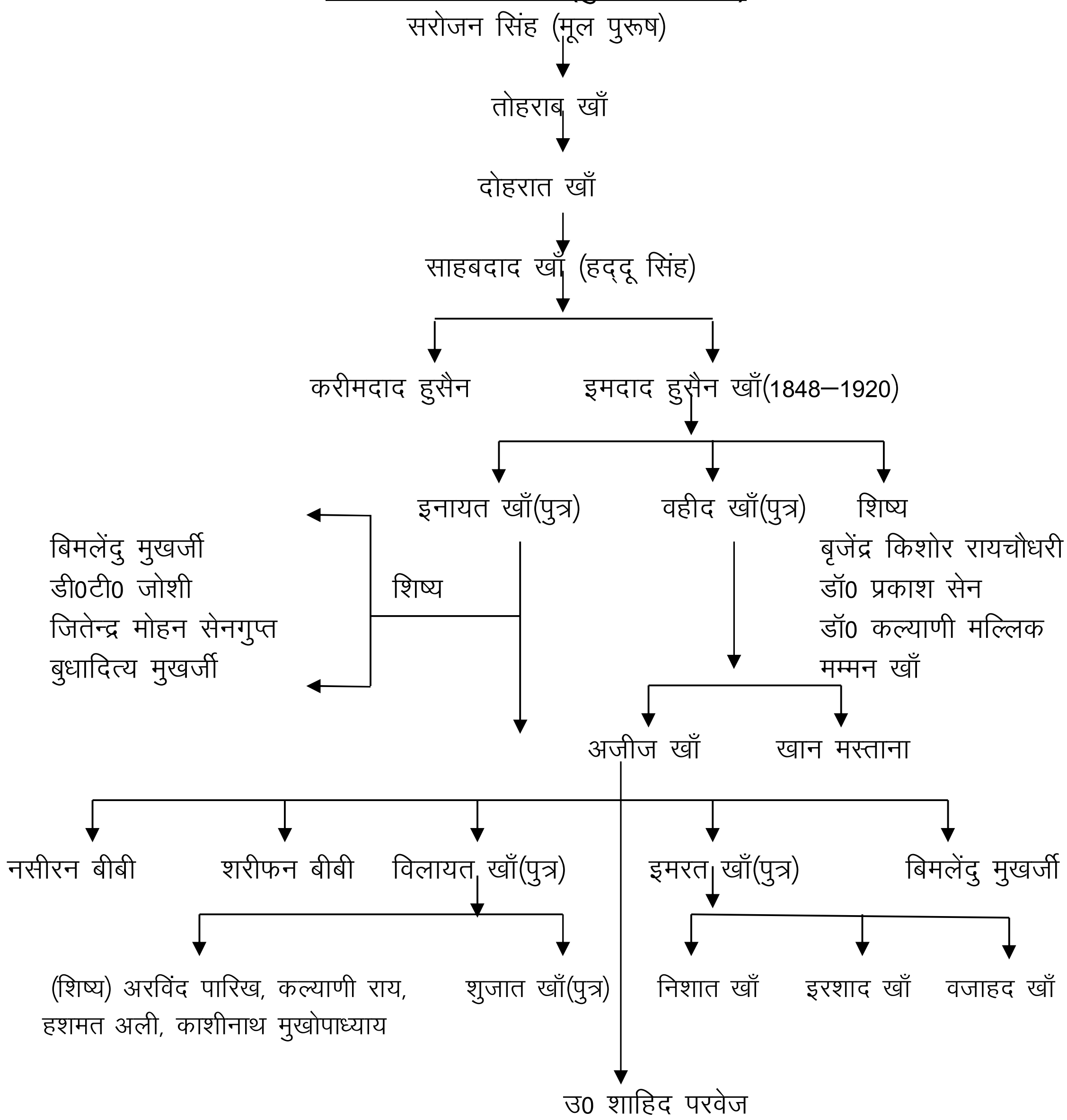

3.4.6 मुश्ताक अली खाँ का घराना — उस्ताद मुश्ताक़ अली खाँ सितार वादन की विशिष्ट शैली को अपनाकर घराने को जन्म दिया। इनके पिता आशिक अली खाँ थे। इनके पूर्वज जग्गू खाँ एवं मक्कू खाँ हुए। आशिक अली खाँ की शिक्षा वारिस अली खाँ बीनकर से हुई। यह भी जानकारी मिलती है कि इन्होंने बरकतुल्ला खाँ(सितारिये) से भी तालीम हासिल की। यह वीणा और सुरबहार भी बजाते थे। यह सुरबहार का वादन तीन मिजराब पहनकर करते थे। आलाप बजाने में उन्होंने दक्षता प्राप्त की थी। इन्हीं के सुपुत्र उस्ताद मुश्ताक़ अली खाँ के नाम पर इस घराने का नाम पड़ा। इनके शिष्यों में अमिय गोपाल भट्टाचार्य तथा प्रसिद्ध बेला वादक जी0एन0 गोस्वामी हुए।

उस्ताद मुश्ताक़ अली खाँ की शिक्षा अपने पिता उस्ताद आशिक अली खाँ से हुई। प्राचीन परम्परा का निर्वाह करते हुए वह सितार में 17 पर्दों का प्रयोग करना ही उपयुक्त समझते थे।

वादन शैली: उस्ताद मुश्ताक़ अली खाँ मसीतखानी गत के बोलों का भी यथायोग्य निर्वाह करने के ही पक्षधर थे। वह सुरबहार भी उत्तम ढंग से बजाते थे। विशेष बात यह है कि सुरबहार का वादन वह तीन मिजराब पहनकर करते थे। इनके अनुसार तीन मिजराब पहनकर सुरबहार वादन की परम्परा उनके घराने के वारिस अली खाँ(बीनकार) ने प्रारम्भ की। इनके शिष्यों में अरूण कुमार, अशोक घोष, देबू चौधरी विशेष उल्लेखनीय है।

प्रो0 देबव्रत चौधरी ने उस्ताद मुश्ताक़ अली खाँ से विशेष मार्गदर्शन प्राप्त किया। अपनी परम्परा के निर्वाह यह उत्तम ढंग से कर रहे हैं। इनके द्वारा सात नवीन रागों की रचना की गई है, यथा— विश्वेश्वरी, पलास सारंग, अनुरंजनी, आशिकी ललित, स्वनंदेश्वरी, कल्याणी बिलावल। कई विद्यार्थियों ने सितार में इनसे मार्गदर्शन प्राप्त किया और कर रहे हैं, जिनमें शर्मिष्ठा सेन(घोष), इंद्राणी चक्रवर्ती, रविन्द्र अदेशरा, सुनीता धर, अनुपम महाजन, सुपुत्र प्रतीक चौधरी, अंजना भार्गव आदि हैं।

मुश्ताक़ अली खाँ का घराना

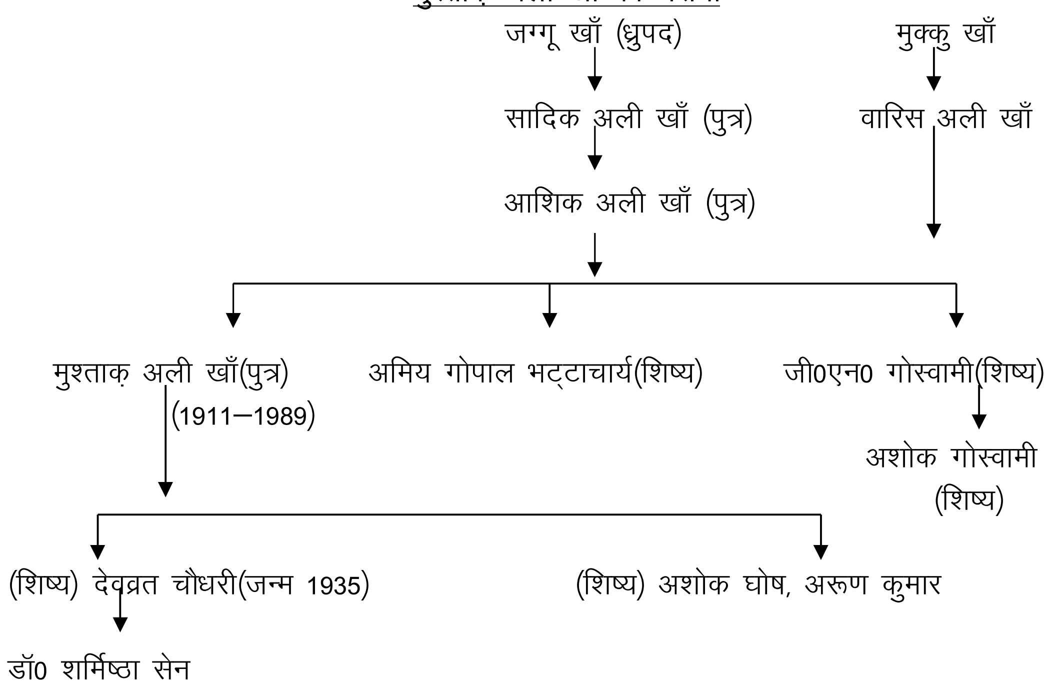

3.4.7 सरोदिया गुलाम अली खाँ बंगश का घराना — भारत में प्रचलित सरोद के घरानों में से एक महत्वपूर्ण घराना है 'गुलाम अली खाँ का बंगश घराना'। आज के प्रसिद्ध सरोद वादक उस्ताद अमजद अली खाँ के परदादा उस्ताद गुलाम अली खाँ बंगश हुए। उन्हीं के नाम से इस घराने को सम्बोधित किया जाता है। गुलाम अली खाँ ने भारत भर में घूम—घूमकर यश अर्जित किया। अंत में यह ग्वालियर दरबार के आश्रय में रहे। गुलाम अली खाँ के चार पुत्र जुम्मा खाँ, हुसैन खाँ, मुराद खाँ और नन्हे खाँ हुए। जुम्मा खाँ (जुम्मत खाँ) मक्का चले गए और लौटकर वापस नहीं आए। हुसैन खाँ ने सितार

अपनाया और ग्वालियर के दरबारी कलाकार हुए। उस्ताद मुराद खाँ और उस्ताद नन्हे खाँ ने ही सरोद वादन की परम्परा को आगे बढ़ाया। उस्ताद मुराद खाँ के सम्बन्ध में आचार्य बृहस्पति जी का मत है कि इन्होंने ही सरोद पर फौलाद की तबली चढ़ाई और फौलाद के तार चढ़ाए। इनके शिष्य अब्दुल्ला और अमीर खाँ हुए। बंगाल और बिहार में सरोद के प्रचार का श्रेय मुराद खाँ को ही दिया जाता है। अमीरखानी(सरोदिये का) बाज उस्ताद अमीर खाँ के नाम से प्रचलित हुआ। इनकी शिष्य परम्परा में पं0 राधिका मोहन मैत्र, वीरेन्द्र किशोर रायचौधरी, ब्रजेन्द्र किशोर रायचौधरी, विमलाकान्त रायचौधरी, तिमिर बरन भट्टाचार्य आदि हुए। इनके शिष्य पं0 राधिका मोहन मैत्र ने इनकी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए स्वयं के चिन्तन एवं मनन से तत्कालीन प्रचलित सरोद शैली में ख्याल शैली का सम्मिश्रण किया। इनकी कला मुख्यतः परम्परानुयायी होने के कारण 'आलाप के अंगों' का यथायोग्य निर्वाह इनके वादन में दिखाई देता है।

वादन शैली: आपकी सूझबूझ ही थी कि राग के स्वरूप को खंडित किए बिना वह उसे एक अलग दृष्टिकोण से सुन्दर रूप में गत के माध्यम से प्रस्तुत करते थे। उत्कृष्ट तान एवं तोड़ों को बजाकर सम पर आने पर इनका अपना ढंग था। वह इकहरा तान भी बजाते थे। उन्होंने सरोद में इकहरा तान लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इसके अतिरिक्त वह बोल और इकहरा तान के मिश्रण से एक विशेष प्रकार की तान बजाते थे।

उस्ताद नन्हे खाँ जो कि उस्ताद गुलाम अली खाँ के चतुर्थ पुत्र थे, ग्वालियर नरेश श्रीमंत माधव राव सिन्धिया के समय रहे। इनके दो पुत्र उस्ताद मुन्ने खाँ एवं उस्ताद हाफ़िज अली खाँ हुए। उस्ताद हाफ़िज अली खाँ की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से ही हुई। वृंदावन के प्रसिद्ध ध्रुपदिये महाराज गणेशीलाल चौबे से हाफ़िज अली खाँ ने होरी और ध्रुपद की शिक्षा प्राप्त की। हाफ़िज अली खाँ एक गुणग्राहक व्यक्ति थे, अतः उन्होंने रामपुर के एक मर्मज्ञ सारंगी वादक मुन्नन खाँ से भी पर्याप्त रूप से लाभ उठाया।

उस्ताद हाफ़िज अली खाँ को राग की शुद्धता अधिक प्रिय थी। वह धुन भी बजाते थे। ध्रुपद की शिक्षा होने के कारण सूत व गमक का कार्य उत्कृष्ट रूप से इनके सरोद वादन में दिखाई देता है। विभिन्न अलंकारों का प्रयोग इनके वादन में कम दिखाई देता है। उनकी शैली ध्रुपद और बीन के अंग से प्रभावित रही। मुबारक अली, रहमत अली तथा प्रसिद्ध सरोद वादक उस्ताद अमजद अली खाँ इनके ही सुपुत्र हैं। उस्ताद अमजद अली खाँ ने वर्तमान में इस घराने को प्रसिद्धि दिलाने में बहुमूल्य योगदान दिया है।

उस्ताद अमजद अली खाँ सरोद वादन में राग का प्रस्तुतिकरण सुव्यवस्थित रहता है, जो इनकी सतत मेहनत और अच्छे प्रशिक्षण का परिचायक है। इनके वादन में क्रम, नियम और अनुशासनादि सब विशेषताएँ विद्यमान हैं। इनके चिकारी छेड़ने का अंदाज अन्य सरोद वादकों से भिन्न है। वह सरोद को काली पाँच स्वर में मिलाकर वादन करते हैं। 'इकहरा' तान व विभिन्न प्रकार की गमक का प्रयोग अपने सरोद वादन में बड़ी उत्कृष्टता से करते हैं। इन्होंने अपनी वादन शैली में ख्याल शैली का समावेश कर लय चातुर्य से उसे और समृद्ध बनाया है। परम्परा से सीखी हुई बंदिशों के अतिरिक्त स्वरचित बंदिशों का भी प्रदर्शन बड़ी कुशलता से इनके सरोद वादन में सुनाई देता है।

<u>सरोदिया गुलाम अली खाँ बंगश का घराना</u>

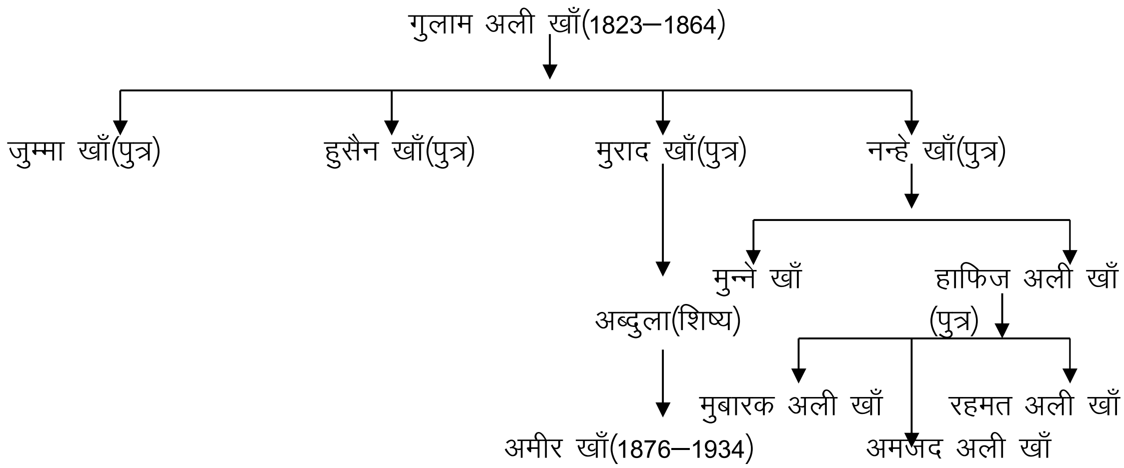

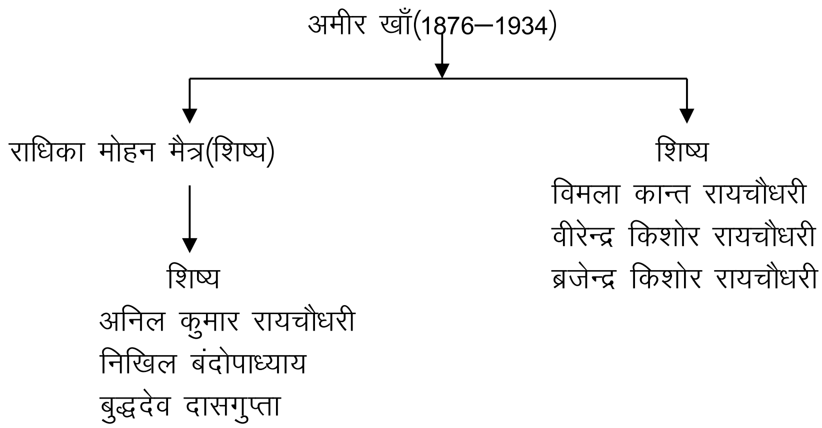

<u>**3.4.8 अलाउद्दीन खाँ का घराना अथवा मैहर घराना**</u> – संगीत जगत में उस्ताद अलाउद्दीन खाँ को 'बाबा' नाम से पुकारा जाता है। मैहर के इस प्रचंड सूर्य का तेज सारे विश्व में व्याप्त है। मैहर घराने के संस्थापक उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के नाम पर ही इस घराने को जाना जाता है। इनका जन्म सन् 1881 में हुआ। इनकी संगीत शिक्षा गोपालचंद्र चक्रवर्ती उर्फ नूलो गोपाल, हाबूदत्त, अहमद अली खाँ और वज़ीर खाँ से हुई। अलाउद्दीन विधिवत वज़ीर खाँ के शिष्य हुए थे, परन्तु सीखने का अवसर उन्हें अन्य गुणियों से ही मिला। ईडन गार्डन के बैंड मास्टर लाबो साहब के पास उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने वायलिन की शिक्षा और पश्चिमी संगीत सीखा था। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने 'चन्द्र सारंग' वाद्य भी बनाया। इन्होंने एक और वाद्य बनाया, जिसे बैंजो नाम दिया, जो सरोद का ही विकसित रूप था, आजकल इसे सितार–बैंजों भी कहते हैं। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने मैहर वाद्यवृंद की स्थापना की, इसे ही मैहर बैंड के नाम से प्रसिद्धि मिली। प्रारम्भ में इसमें 22 कलाकार थे। बाबा स्वयं झूम–झूमकर इसमें वायलिन बजाते थे। इसे वाद्यवृंद में सितार, सरोद, सितार–बैंजो, बासुंरी, क्लोरिनेट, नलतरंग, जलतरंग, वायलिन, चेलो, तबला और हारमोनियम आदि वाद्यों का प्रयोग किया जाता था। बाबा ने इस हेतु लगभग 250 रचनाएँ कीं। वह इसमें गायक भी रखते थे। बाबा ने नये वाद्यों का सृजन किया, वाद्यों में सुधार किये, नई–नई बंदिशें रचीं। इसी प्रकार उन्होंने कुछ रागों का भी निर्माण किया। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने पं0 रविशंकर और उस्ताद अली अकबर जैसे दो महान कलाकारों को संगीत की शिक्षा देकर जो वाद्य संगीत का गौरव बढ़ाया है वह अप्रतिम है। इन्हीं कलाकारों से वाद्य संगीत का नया इतिहास प्रारम्भ हुआ। इनके अन्य प्रमुख शिष्यों में निखिल बैनर्जी (सितार), पन्नालाल घोष (बांसुरी), अजय सिन्हाराय (सितार), आशीष खाँ (सरोद), इन्द्रनील भट्टाचार्य (सितार),

वीरेन्द्र किशोर रायचौधरी, सुप्रभात पाल (सरोद), श्याम गांगुली (सरोद), रोबिन घोष (बेला), तिमिर बरन भट्टाचार्य (सितार), शरनरानी बाकलीवाल (सरोद), श्रीपद बंदोपाध्याय एवं सुपुत्री अन्नपूर्णा (सुरबहार) आदि है।

वादन शैली : उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने बीन के 'आलाप अंग' से सरोद वादन को सजाया, जिसमें बीन के गम्भीर आलाप के साथ लड़ी, लड़गुथाव, तारपरन आदि का प्रयोग होता है। इनके वादन में विविध अलंकारों का प्रयोग बहुतायत से दिखाई देता है। इन्होंने आलाप के अतिरिक्त गत में भी तार सप्तक के स्वरों का प्रयोग किया जिससे सरोद में तीन सप्तकों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। ध्रुपदांगी आलाप को अच्छे ढंग से प्रस्तुत करने के लिए आपने सरोद वाद्य के आकार और तारों की संख्या में भी परिवर्तन किया। जहाँ एक ओर वह अति विलम्बित लय में गत वादन करते थे, वहीं दूसरी ओर अति द्रुत लय में भी गत प्रस्तुत करते थे। इनकी बनाई हुई गत का सम कभी–कभी ऐसे स्थान पर होता था, या कुछ ऐसा पेंच देते थे कि तबले वाले को साथ करना कठिन पड़ता था।

आपके सुपुत्र अकबर अली खाँ ने शास्त्रीय संगीत में सरोद वादन के क्षेत्र में असाधारण योगदान दिया और विश्वभर में ख्याति अर्जित की। इन्होंने देश के अतिरिक्त विदेशों में भारतीय संगीत विद्यालय की स्थापना की। इसमें 6000 से अधिक छात्रों को प्रशिक्षण दिया जा चुका है। इनके प्रमुख शिष्यों में अजय सिन्हा राय (सितार), निखिल बंदोपाध्याय (सितार), ब्रजभूषण काबरा (गिटार), शरन रानी बाकलीवाल (सरोद) आदि प्रमुख है।

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ की सुपुत्री अन्नपूर्णा देवी भी शास्त्रीय संगीत की परम साधिका रही है। यह प्रचार–प्रसार से बिल्कुल दूर रहीं। इनके प्रमुख शिष्यों में निखिल बैनर्जी, इंद्रनील भट्टाचार्य, बहादुर खाँ, आशीष खाँ, ध्यानेश खाँ आदि प्रमुख हैं।

खाँ साहब के शिष्य पं0 रविशंकर के नाम से सम्भवतः ही कोई संगीत प्रेमी होगा जो परिचित न हो। पंडित रविशंकर ने भारत में सितार वाद्य को जनमानस में लोकप्रिय बनाया, वहीं दूसरी ओर भारतीय संगीत को विश्व में प्रतिष्ठित कर सितार को अन्तर्राष्ट्रीय वाद्य बना दिया। पंडित जी ने उस्ताद अलाउद्दीन खाँ से ली गई भारतीय संगीत की परम्परागत शिक्षा का मर्यादा, शुद्धता और पवित्रता बनाए रखी, वहीं दूसरी ओर वाद्य वृंद के निर्देशक के रूप में भारतीय संगीत की सीमा में रहकर सदैव नवीन प्रयोग किए।

वादन शैली : पं0 रविशंकर अपने सितार में बीनकार घराने की कला का उत्तम परिचय देते हैं। मंद्र सप्तक आलाप का वह जिस उत्कृष्टता, गम्भीरता और चैनदारी से वादन करते हैं, वह बीन की महान परम्परा की याद दिलाता है। वह बीन के अंगों का भली–भांति प्रदर्शन अपनी सितार पर करते हैं, जिसमें विलम्बित, मध्य, द्रुत, जोड़, बराबरी का जोड़ (गमक जोड़), ठोक, लड़ी, लड़गुथाव, झाला आदि का समावेश रहता है। इनके आलाप में कृंतन का काम विशेष उल्लेखनीय है। तीन ताल के अतिरिक्त अन्य तालों में भी वह अपना सितार बड़ी आसानी से उत्कृष्ट ढंग से प्रस्तुत करते हैं। धमार एवं ताल सवारी में भी यह विलम्बित गत बजाते रहे हैं। इनके प्रमुख शिष्य उमाशंकर मिश्र (सितार), गोपाल कृष्ण (विचित्र वीणा), जया बोस विश्वास (सितार), विजय राघव राव (बांसुरी), कार्तिक कुमार (सितार) आदि प्रमुख हैं।

अलाउद्दीन खाँ का घराना (मैहर घराना)

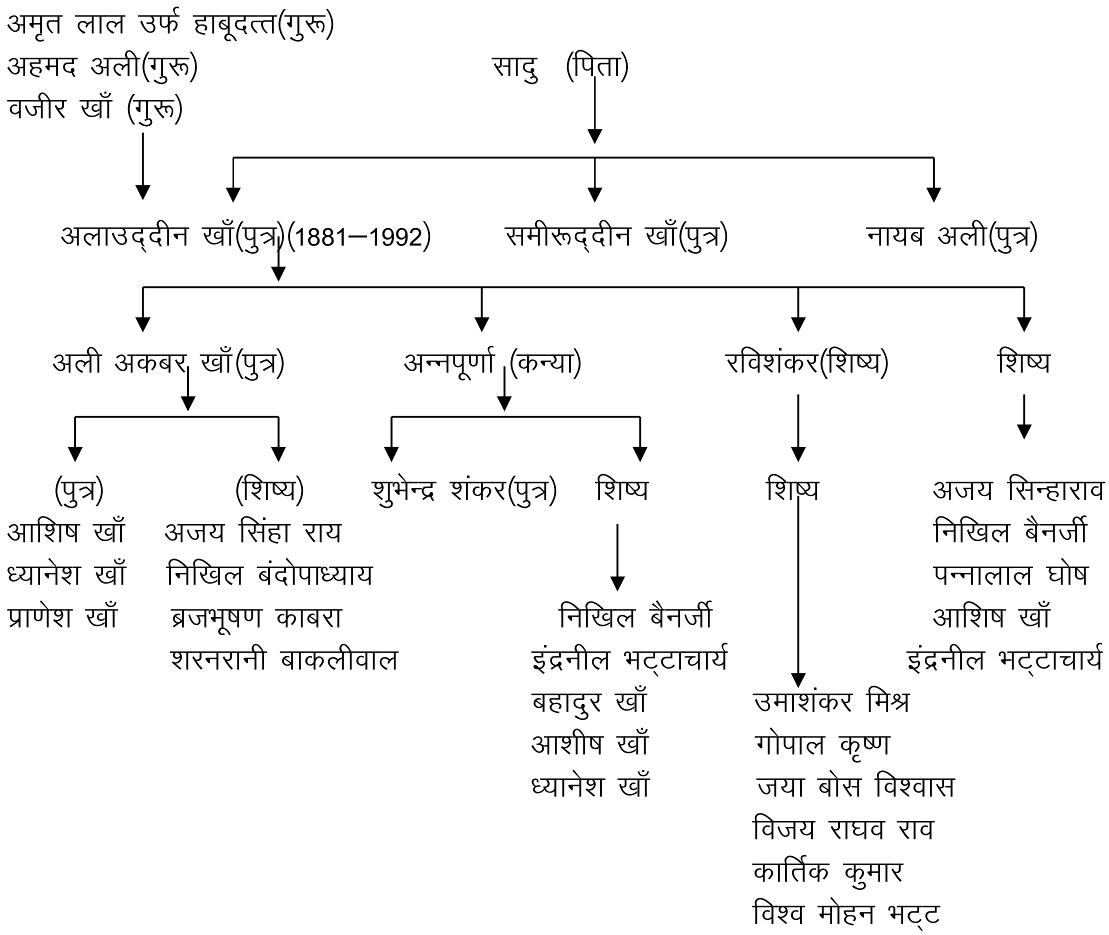

3.4.9 विघ्नेश्वर शास्त्री का वायलिन घराना – विघ्नेश्वर शास्त्री ने कर्नाटक के गोकार्ण नामक स्थान पर रहकर बेला वादन की शिक्षा प्राप्त की थी। बाद में वह उत्तर भारत के लोगों के साथ संगत करने लगे। वह अपना वायलिन सा़ प़ सा प पद्धति से मिलाकर ख्याल पद्धति से बजाते थे। यद्यपि वह महफिल के कलाकार नहीं थे, किन्तु उनके वादन में अत्यन्त मिठास थी। वह देवधर स्कूल आफ इंडियन म्यूजिक में प्राध्यापक रहे। वर्तमान के प्रसिद्ध बेला वादक डी0के0 दातार इनके ही शिष्य हैं। वी0जी0 जोग ने भी इनसे वायलिन वादन की शिक्षा प्राप्त की।

पं0 डी0के0 दातार ने अपने बड़े भाई ए0के0 दातार से गायन और विघ्नेश्वर शास्त्री से बेला वादन की शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात कठिन एकान्त स्वर साधना के परिणाम स्वरूप देश के प्रमुख वादक के रूप में यश अर्जित किया। पं0 डी0वी0 पलुस्कर के सत्संग से भी उन्होंने ज्ञान अर्जित किया है। पं0 दातार बंदिश के साथ पूर्ण न्याय करते हैं। बंदिश के साथ यह एक–एक स्वर के आधार पर राग का विस्तार करते हुए स्थायी और अन्तरा समाप्त करते हैं, तत्पश्चात विभिन्न लयों के आधार पर जोड़ के अनुकरण में विस्तार को आगे बढ़ाते हुए तानों का सिलसिला प्रारम्भ होता है। तानों के विविध रूप इनके वादन का आकर्षक अंग हैं। मध्य लय की बंदिश के साथ भी आलाप और तान की विविधता कलात्मक होती है।

पं0 विघ्नेश्वर के दूसरे शिष्य पं0 वी0जी0 जोग की उत्तर भारत में वायलिन को लोकप्रिय बनाने में विशेष भूमिका रही है। प्रारम्भ में गायन की शिक्षा शंकरराव आठवले जी और गणपत बुवा पुरोहित से प्राप्त की। तत्पश्चात विघ्नेश्वर शास्त्री से बेला वादन की शिक्षा ग्रहण की। पं0 कृष्ण नारायण रातंजनकर से भी इनको विशेष मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा। देश के विख्यात गायकों में शायद ही कोई ऐसा गायक होगा, जिसके साथ जोग साहब ने संगत नहीं की हो। चाहे कलाकार छोटा हो या बड़ा,

संगत करने में वह कभी संकोच नहीं करते। संगत करने में वह अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार देश के अधिकांश सितार, सरोद, सारंगी, शहनाई और बांसुरी वादकों के साथ इन्होंने सफल जुगलबंदी की है। उ0 बिसमिल्ला खाँ के साथ जुगलबंदी का तो आनन्द ही कुछ और है। इनके इसी विशेष गुण के कारण इन्हें जुगलबंदी का विशेषज्ञ कहना उपयुक्त प्रतीत होता है। इनके प्रमुख शिष्यों में शिशिर कणाधर चौधरी (बेला), जरीन दारूवाला (सरोद), रमेश तागड़े (बेला) विशेष उल्लेखनीय है।

विघ्नेश्वर शास्त्री का वायलिन घराना

विघ्नेश्वर शास्त्री

डी0के0 दातार(जन्म 1936) — रत्नाकर गोखले

वी0जी0 जोग(जन्म 1922) — शिशिरकणाधर चौधरी, रमेश तागडे

3.4.10 शम्भूनाथ मिश्र का सारंगी घराना – शम्भूनाथ मिश्र की विशिष्ट सारंगी वादन शैली के कारण उनका एक घराना बन चुका है। शम्भूनाथ को अपने पिता पं0 रामनारायण से सीखने का अवसर नहीं मिल सका। उन्होंने अपने बड़े भाई भवानी मिश्र से सारंगी वादन तथा गायन की शिक्षा प्राप्त की। रागमाला के साथ चक्करदार, फंदेदार, क्लिष्ट तानों की जटिलतम शैली बेडार अंग शम्भूनाथ मिश्र के घराने की विशेषता थी। वह टप्पा और ठुमरी को बहुत ही आकर्षक रूप से श्रोताओं के सम्मुख प्रस्तुत करते थे। इनके शिष्यों में उनके पुत्र पं. सरयू प्रसाद मिश्र का नाम उल्लेखनीय है। पं0 सरयू प्रसाद मिश्र गायन की विभिन्न विधाओं को उत्कृष्ट ढंग से प्रस्तुत करते थे। वह 'सारंगी सागर' के नाम से प्रसिद्ध हुए। यह उनकी उपाधि थी। उनके चार पुत्रों में से केवल तीन ने सारंगी वादन परम्परा को बनाए रखा, जिनका नाम है विश्वनाथ मिश्र, बैजनाथ मिश्र और गोपीनाथ मिश्र।

पं0 बैजनाथ मिश्र की संगीत शिक्षा का प्रारम्भ गायनाचार्य छोटे रामदास मिश्र के नाना पं0 ठाकुर प्रसाद मिश्र से हुआ। इन्हीं से सारंगी की भी शिक्षा प्राप्त होने के उपरान्त अपने पिता सरयू प्रसाद की देखरेख में बैजनाथ जी ने अपना सारंगी का अभ्यास क्रम नियमित रखा। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र से भी इन्हें मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। यह देश के श्रेष्ठ सारंगी वादकों में से एक हैं तथा चारों अंग की गायकी के अतिरिक्त स्वतंत्र वादन में भी अद्वितीय हैं। इन्हें आलाप और गमक विशेष प्रिय हैं।

शम्भूनाथ मिश्र का सारंगी घराना

पं0 रामनारायण(18वीं ई0 का पूर्वाद्ध)

भवानी मिश्र, शम्भूनाथ मिश्र(जन्म 1912)

शम्भूनाथ मिश्र(जन्म 1912) — सरयू प्रसाद मिश्र

सरयू प्रसाद मिश्र — विश्वनाथ मिश्र, बैजनाथ मिश्र, गोपीनाथ मिश्र, पुत्र (सारंगी नहीं अपनायी)

उपरोक्त प्रमुख तंत्र वाद्य के घरानों के अतिरिक्त कई अन्य घरानों का भी प्रचलन है, जो इस प्रकार है—

1. हामिद हुसैन का लखनऊ घराना
2. पाठक घराना
3. करामतुल्ला खाँ का सरोद घराना
4. अलाउद्दीन का वायलिन घराना
5. गजानन राव का वायलिन घराना
6. मम्मन खाँ का सारंगी घराना
7. गोपाल मिश्र का सारंगी घराना

<u>तंत्री वाद्य के घरानों के प्रमुख कलाकार</u>

तानसेन

उ0 बन्दे अली खाँ

उ0 अलाउद्दीन खाँ

उ0 मुश्ताक़ अली खाँ

पं0 रविशंकर

उ0 अली अकबर खाँ

विदूषी अन्नपूर्णा देवी

उ0 असद अली खाँ

उ0 अमज़द अली खाँ

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

(i) तानसेन के सेनी घराने के विषय में संक्षेप में बताइये।
(ii) उस्ताद मुश्ताक़ अली खाँ का परिचय दीजिए।
(iii) उस्ताद अलाउद्दीन खाँ की वादन शैली के विषय में बताइये।
(iv) उस्ताद इमदाद खाँ के घराने का परिचय दीजिए।

ख) एक शब्द में उत्तर दो :–

(i) तानसेन के गुरू का नाम बताइये।
(ii) उस्ताद अलाउद्दीन खाँ की पुत्री का नाम बताइये।
(iii) वायलिन वादक डी0के0 दातार किसके शिष्य थे?

ग) सत्य/असत्य बताओ :–

(i) उस्ताद इनायत खाँ सारंगी बजाते थे।
(ii) उस्ताद अली अकबर खाँ सरोद बजाते हैं।
(iii) तानसेन के पुत्र का नाम बिलास खाँ है।

घ) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

(i) मुश्ताक़ अली खाँ का घराना .... वाद्य से सम्बन्धित हैं।
(ii) सारंगी वादक शम्भूनाथ मिश्र के शिष्य .... हैं।
(iii) मसीतखानी गत के निर्माता .... हैं।

3.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि एक असाधारण प्रतिभाशाली, महत्वाकांक्षी व्यक्ति अपनी गुरू परम्परा से प्राप्त प्रणाली में अपना कुछ नवीन सौन्दर्य अथवा कोई नूतन शैली या विशेषताओं को जोड़ अपना एक अलग अस्तित्व बना लेता है। भारतीय वाद्य संगीत परम्परा में तंत्र वाद्यों का प्रचलन बहुत दीर्घ काल से रहा है परन्तु घराना या बाज शब्द का प्रचलन उत्तर मध्यकाल में दिखाई देता है। संगीत की प्रत्येक विधा में तंत्री वाद्यों का विशेष महत्व है। तंत्री वाद्यों से जुड़े प्रमुख घरानों के कलाकारों ने अत्यन्त कठिन साधना पथ का चयन किया। इन कलाकारों की अथक साधना का ही परिणाम है कि भारतीय संगीत में आज भी तंत्री वाद्य के घराने अपना विशेष स्थान बनाये हुए है। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप जान चुके हैं कि तंत्र वाद्यों से सम्बन्धित विभिन्न घरानों के कलाकारों की संगीत यात्रा कैसी रही तथा उनकी वादन शैली में क्या प्रमुख विशेषताएँ रही हैं। साथ ही विभिन्न घरानेदार तंत्र वादकों की शिष्य परम्परा एवं उनकी शिक्षा से जुड़ी समस्त जानकारी आप जान चुके हैं। विभिन्न तंत्र वादकों ने कई घरानों से वादन शैली की तालीम प्राप्त की हैं।

3.6 शब्दावली

1. **घसीटः** घसीट शब्द से तात्पर्य यह है कि इसमें स्वरों को एक—दूसरे से अलग—अलग न बजाकर परस्पर जोड़कर बजाया जाता है। इसका सम्बन्ध स्वरों के घर्षण से है।

2. **मींडः** मींड उस क्रिया को कहते है जिसमें एक स्वर दूसरे स्वर तक अखण्डित रूप से खींचा जाता है। दो स्वरों के जोड़ में बिल्कुल अन्तर नहीं लगता।

3. **बहलावाः** विभिन्न प्रकार से स्वर को अन्य स्वरों के साथ जोड़ते हुए लेने की प्रक्रिया बहलावा कहलाती है। इसमें कोई नियम का पालन नहीं होता है।

4. **मसीतखानीः** मसीतखानी गत अथवा वादन शैली के निर्माता जयपुर के मसीत खाँ थे। इसकी विशेषता विलम्बित लय में है। इस पर वीणा वादन का स्पष्ट प्रभाव दिखता है।

5. **रजाखानीः** जौनपुर के रजा खान रजाखानी या पूरब बाज के अविष्कारक थे। इसकी विशेषता द्रुत लय में है। इसमें गत एवं तोड़े द्रुत लय में बजाये जाते है।

6. **झालाः** एक—एक स्वर को अनेक बार द्रुत लय से बजाना झाला कहलाता है। झाले के अन्तर्गत रा रा बोल द्रुत लय में बजाये जाते हैं।

7. **कृन्तनः** यह तंतु वाद्य की विशिष्ट क्रिया है जिसके अन्तर्गत एक बार ही दा या रा बजाकर उसी ध्वनि में एक से अधिक पर्दों में स्वर निकाले जाते हैं।

8. **कणः** किसी स्वर को पास वाले किसी दूसरे स्वर से स्पर्श करना कण कहलाता है।

9. **खटकाः** यह कण का ही प्रकार है। इसमें कण की कोमलता का अभाव है। खटके में कण स्वर का स्पर्श जोरदार या धक्के से होता है।

10. **गतः** जिस प्रकार गायन में स्वर विस्तार के बाद बंदिश गायी जाती है, उसी प्रकार तंतु वाद्यों में स्वर विस्तार के बाद गतें बजायी जाती है।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ख) एक शब्द में उत्तर दो :—
- (i) बख्शू
- (ii) विदूषी अन्नपूर्णा देवी
- (iii) पं0 विघ्नेश्वर शास्त्री

ग) सत्य असत्य बताओ :—
- (i) असत्य
- (ii) सत्य
- (iii) सत्य

घ) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :—
- (i) सितार
- (ii) सरयू प्रसाद मिश्र
- (iii) मसीत खाँ

3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गर्ग, श्री लक्ष्मीनारायण, (1978), *हमारे संगीत रत्न*, संगीत कार्यालय हाथरस।
2. महाडिक, डॉ0 प्रकाश, (1994), *भारतीय संगीत के तंत्री वाद्य*, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
3. चौबे, डॉ0 सुशील कुमार, (1984), *संगीत के घरानों की चर्चा*, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बंदोपाध्याय, श्रीपद, (1957), *सितार मार्ग– तृतीय भाग*, वीणा मन्दिर भारतीय संगीत साहित्य प्रकाशक, दिल्ली।
2. पंराजपे, डॉ0 एस0, (1972), *संगीत बोध*, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
3. आचार्य बृहस्पति एवं सुलोचना यजुर्वेदी, *खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सरोद वाद्य से सम्बन्धित प्रमुख घरानों पर एक लेख लिखिये।
2. तंत्र वाद्य के अन्तर्गत बीन (वीणा) वाद्य के रामपुर एवं बन्दे अली खाँ के घरानों की विवेचना कीजिये।

इकाई 1 – राग निर्माण; वादी, सम्वादी, अनुवादी एवं विवादी स्वर का महत्व

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 राग निर्माण
1.4 वादी स्वर का महत्व
1.5 सम्वादी स्वर का महत्व
1.6 अनुवादी स्वर का महत्व
1.7 विवादी स्वर का महत्व
1.8 सारांश
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0आई0–102) के द्वितीय खण्ड की पहली इकाई है। इससे पूर्व की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप स्वरलिपि पद्धतियों के बारे में जान चुके होंगे। आप स्वर वाद्यों (तत् व सुषिर) की उत्पत्ति एवं विकास के विषय का अध्ययन कर चुके होंगे। तन्त्र वाद्य के विभिन्न घरानों व उनकी शैली को भी आप समझ चुके होंगे।

इस इकाई में आप राग निर्माण एवं राग–निर्माण के महत्वपूर्ण वादी, सम्वादी, अनुवादी एवं विवादी स्वर का अध्ययन करेंगे। राग–निर्माण में इन स्वरों का विशेष महत्व है। राग के स्वरूप को स्थापित करने में कुछ नियम तथा स्वरों के निश्चित प्रयोग किये जाते हैं। इन्हीं नियमों एवं स्वरों के प्रयोग से राग चाहे कहीं भी गाया–बजाया जाए उसका मूल स्वरूप स्थिर रहता है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप राग को समझ सकेंगे तथा राग के स्वरूप को स्थापित करने में वादी, सम्वादी, अनुवादी और विवादी के महत्व एवं इनके प्रयोग के विषय में भी जानेंगे। राग के महत्वपूर्ण स्वर वादी, सम्वादी, अनुवादी एवं विवादी के महत्व को समझकर इनका कियात्मक रूप में प्रयोग कर पाऐंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :—

1. राग एवं राग निर्माण के विषय में समझेंगे।
2. राग के महत्वपूर्ण स्वरों वादी, सम्वादी, अनुवादी तथा विवादी स्वर के महत्व को समझेंगे।
3. राग के स्वरूप को स्थापित करना समझेंगे।

1.3 राग निर्माण

राग निर्माण के विषय में अध्ययन से पूर्व राग को भली भॉति समझने की आवश्यकता है। राग निर्माण के आधार मूल सिद्धान्तों का सम्यक विवेचन तब तक सम्भव नहीं है जब तक राग शब्द का अर्थ निर्धारण और उसमें अर्न्तनिहित सूक्ष्म विशेषताओं को हम आत्मसात न कर लें। स्पष्ट है कि राग स्वरूप निर्धारण राग निर्माण की प्रथम अनिवार्यता है। स्पष्ट है कि राग स्वरूप निर्धारण इस राग स्वरूप निर्धारण की प्रथम अनिवार्यता है। **'पाप्ली महोदय'** के अनुसार भारतीय संगीत की राग रचना एक कला प्रिय राष्ट्र का ऐसा प्रयास है, जिसमें लोगों के होठों पर निरन्तर गाये जाने वाले गीतों को व्यवस्थित और सुसम्बद्ध किया जाता है। स्वर और वर्णों से विभूषित उस ध्वनि विशेष को 'राग' कहते हैं जो मन का रंजन करे अर्थात जो चित्त को अच्छा लगे। शास्त्रीय संगीत में राग, स्वरों का ऐसा समूह है जो रंजकता प्रदान करे। इन स्वर समूह के प्रयोग के लिए नियम निर्धारित किये गये।

आजकल जो भी शास्त्रीय संगीत के नाम से गाया—बजाया जाता है वह सब राग गायन—वादन ही है किन्तु यह राग गायन—वादन संगीत हमेशा से नहीं रहा है, उसका क्रमिक विकास हुआ है। राग के आविर्भाव के पूर्व जातियों का गायन—वादन होता रहा। आचार्य भरत की मान्यता रही है कि इस भू—लोक में जो भी गाया बजाया जाता है वह सब जातियों में समाहित है। किन्तु भरत द्वारा संज्ञाओं में राग का उल्लेख आधुनिक अर्थों में कहीं भी नहीं है। 'नारदीय—शिक्षा' ग्रन्थ में भी राग का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। दक्षिण के पेदाकोट राज्यांत—गत कुडमलाई की चट्टानों पर खुदे हुए स्वरागम, जिनका समय सातवीं शती ई0 के आसपास ऑका गया है, भी राग शब्द के प्रयोग से वंचित है। कुछ विद्वानों ने 'नारदीय शिक्षा' में राग के अस्तित्व का अनुमान किया है और कुछ ने इन शिलालेखों में मूल सात रागों के स्वर—प्रस्तार को देखा है किन्तु राग में जिन लक्षणों से युक्त विशिष्ट स्वर सन्निवेश अपेक्षित है उनका पूर्व रूप से अभाव होने के कारण इन सूत्रों को राग का वाचक मान लेना अनुचित होगा। कुछ उपलब्ध ग्रन्थों में सर्वप्रथम मतंग के बृहद्देशी ग्रन्थ में राग का स्पष्ट उल्लेख हमें प्राप्त होता है।

मतंग के अनुसार विशिष्ट स्वर वर्णों से विभूषित उस ध्वनि विशेष को राग कहते हैं जो सर्व साधारण के चित्त को रंजित करता है। मतंग ने रागों का वर्गीकरण मुख्य रूप से ग्राम राग अथवा भाषा राग और देशी राग के अन्तर्गत किया है। उन्होंने अपने रागों का सप्त गीतियों— शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, राग, साधारणी, भाषा, विभाष में विभाजन किया है। इनमें से पहले पॉच ग्राम राग के अन्तर्गत आते हैं और बाकी दो भाषा राग के अन्तर्गत आते है। मन्द्र, मध्य एवं तार स्थान में जब बारह—बारह स्वरों की स्थिति ईरानियों के मुकाम—सिद्धान्त के प्रभाव से मान ली गई तब थाट अथवा उसके कुछ स्वरों को लौटाकर नये रागों के निर्माण का नियम भारतीय संगीत में आया। उसी कारण मध्यकालीन ग्रन्थों में अनेक रागों की स्वरावली उन रागों की प्रचलित स्वरावलि से भिन्न मिलती है। कोमल ऋषभ, कोमल धैवत व तीव्र मध्यम जैसी स्वर संज्ञाओं का जन्म मन्द्र, मध्य तथा तार स्थानों में बारह—बारह स्वर मानने के परिणाम स्वरूप हुआ है। शांरगदेव ने देशी रागों का विभाजन चार विभागों में किया — रागांग, भाषांग, क्रियांग एवं उपांग। बाद के आचार्यों ने राग—रागिनी एवं मेल पद्धति नाम से दो वर्गीकरण पद्धतियों स्वीकार की, जिनमें से राग—रागिनी वर्गीकरण वाली पद्धति का प्रचार अधिक हुआ। मेल पद्धति का मुख्य कार्य क्षेत्र दक्षिण भारत रहा। शांरगदेव के बाद कुम्भाराणाकृत 'संगीत—राज' नामक पन्द्रहवीं शताब्दी का एक ऐसा ग्रन्थ मिलता है, जिसमें रागों का वर्गीकरण ग्राम और देशी के अन्तर्गत किया गया है।

राग निर्माण के लिए वर्ण, अंश, ग्रह और न्यास की जानकारी बहुत आवश्यक है। इन्हीं के आधार पर स्वरों श्रुतियों तथा संवाद–सिद्धान्त का ध्यान रखते हुए नये रागों का निर्माण सम्भव होता है। किस स्वरावलि को स्थान दिया जाय, सप्तक में घूमने से धुन की पूर्णता कैसे कायम रहे, मन के अन्दर एक विशिष्ट प्रकार से रस का कैसे संचार हो, इच्छित भावों को प्रदर्शित करने में स्वर विशेष को किस प्रकार लगाया जाय, गीत के पद के साथ सम्मिलित होकर स्वरों को प्रभावशाली कैसे बनाया जाय इन सब बातों का ध्यान नये रागों का निर्माण करते समय कैसे रखा जाता है। राग निर्माण में कई बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है। थाठ के स्वरों को उसी प्रकार रखते हुए उसकी गति में परिवर्तन करना और न्यास को स्वरों को बदल देना जैसे कि मारवा, सोहनी और पूरिया राग हैं। इसी प्रकार थाठ लौटा जाए ओर विश्रान्ति स्वर भी बदले जाएँ जैसे कि मालकौंस एवं हिंडोल राग। इसी प्रकार जब राग के स्वरूप को ज्यों का त्यों रखते हुए उसमें एक स्वर की वृद्धि कर दी जाए जैसे कि राग पूरिया से मालागौरी राग बनाने के लिए उसमें पंचम स्वर का समावेश किया गया है। किसी राग का एक स्वर कम कर दिया जाए और उसकी गति भी उन्मुख कर दिया जाय इससे भी राग के स्वरूप में भिन्नता आ जाएगी। इसी प्रकार दो अलग–अलग थाटों से एक तरह के स्वर समुदाय लेकर उसके आरोह में एक थाठ और अवरोह में दूसरा रागों के मिश्रण से भी नये राग का निर्माण किया जाता है तथा इस बात का ध्यान रखा जाए कि नव निर्मित राग अपने आप में स्वतंत्र प्रतीत हो।

कोई भी शास्त्र किसी भी संतुलित एवं रूचिकर परिवर्तन का विरोध नहीं करता है परन्तु राग का स्वरूप स्पष्ट हो, किसी भी प्रकार की स्वर संगतियॉ अस्वाभाविक न हों, कर्णप्रिय हों, शास्त्र नियमों के अनुकूल हो। जिस प्रकार भोजन को खाने में यदि एक कंकर भी मुॅख पर आ जाए तो सारे भोजन का स्वाद बिगड़ जाता है उसी प्रकार स्वरों से निर्मित रस प्रक्रिया में ऐसे स्वर विसंगतियों को कभी राग में प्रयोग नहीं करना चाहिए जो श्रोताओं के रस को भंग कर दे।

मूर्च्छना पद्धति से दूर हट जाने के कारण आज का संगीतकार राग व रस से दूर हट गया है इसलिए अपने चमत्कृत अभ्यास से श्रोताओं को मंत्र–मुग्धकरने में तो समर्थ हो जाता है किन्तु किसी को रस मग्न करने में असहाय है। आज तान, अलंकार, पल्टों ने अपना अस्तित्व इतना बढा दिया है जिससे इनके बोझ तले दबकर मधुर बदिशें भी प्रायः मृतप्राय सी हो गई है।

उपयुक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर नये रागों का निर्माण किया जाना चाहिए। स्वर (राग), पद (भाषा), ताल(छंद) एवं गति (लय) का मिलाजुला रूप ही भाव प्रधान गीत के अन्तर्गत माना जाता है। राग निर्माण में मुख्य बात का ध्यान स्वर रचना के सिद्धान्त पर दिया जाता है। स्वर सिद्धान्त के आधार पर 'हारमनी' का प्रयोग पाश्चात्य देशों में अधिक होता है। वहॉ की समस्त रचनाएँ विशिष्ट भाव का ध्यान रखकर ही निर्मित की जाती है। भारतीय संगीत के रागों में जो रचनाएँ निबद्ध की जाती है उनमें यह ध्यान रखना होता है कि विभिन्न शैलियों के अनुरूप बंदिशें तैयार की जाती हैं। जैसे– ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, दादरा, सामान्य गीत भाव, गीत, गज़ल, भजन, कव्वाली, लोक गीत एवं फिल्मी गीत इत्यादि में किसके लिए बंदिश तैयार की जा रही है इनमें से किसी के लिए भी नई रचना तैयार की जाती है तो उसका रचयिता देश, काल, स्थिति, पात्र, कंठ शैली सभी का ध्यान रखकर बंदिश को बनाता है अन्यथा वह अपने कार्य में सफल नहीं हो पाता है। कभी–कभी तो स्वर स्वयं ही स्वरों को आमंत्रित करते हैं एवं कभी–कभी शब्द अनुकूल स्वरों को प्रतिध्वनित करते हैं इसलिए कोई कविता सुनते समय उसके अनुकूल ही धुन तुरन्त तैयार हो जाती है और कभी स्वर मस्तिष्क में गूंजने लगते हैं जिससे उसी समय कोई नई धुन का जन्म हो जाता है और फिर उसी धुन पर शब्द रचना कर ली जाती है। यही कारण है कि कई धुन शब्दों की दृष्टि से प्रमुख हो जाती है तो और कोई स्वरों की दृष्टि से। स्वर रचना में सैद्धान्तिक रूप से अनेक बातों का ध्यान रखना होता है।

सर्वप्रथम राग में उसके स्वरूप को हानि पहॅुचने वाले स्वर सन्दर्भों का प्रयोग नहीं होना चाहिए तथा राग स्वरूप को उभारने वाले स्वरों का प्रयोग वादी तथा सम्वादी स्वरों का ध्यान रखते हुए सही अनुपात में किया जाना चाहिए। इसी के अनुरूप तान, अलाप का प्रयोग भी होना चाहिए

अन्यथा बंदिश के सौन्दर्य को क्षति पहुँचती है। इसी प्रकार सप्तक के पूर्वांग में वादी या प्रमुख स्वर हो तो उसके अनुसार उत्तरांग में सम्वादी स्वर होना चाहिए। यदि पूर्वांग में दोनों गंधार (कोमल एवं शुद्ध) हैं तो उत्तरांग में दोनों निषादों (शुद्ध एवं कोमल) का प्रयोग किया जा सकता है। पूर्वांग में ऋषभ दुर्बल हो तो उत्तरांग में उसके अनुसार धैवत दुर्बल रहना चाहिए इसके अतिरिक्त कोमल एवं तीव्र स्वरों में समानता रहनी चाहिए, ताकि थाट और राग का मेल बना रहे। बंदिश की उठान या उसके प्रकृति के अनुरूप ही ताल संरचना होनी चाहिए ताकि राग एवं ताल का आपसी सामंजस्य बना रहे। अनेक स्वर संगतियों के होने पर भी रचना की प्रकृति एवं स्वरूप को भी किसी प्रकार की हॉनि नहीं पहुँचनी चाहिए। अलग–अलग कलाकरों द्वारा गाये जाने पर भी राग का स्वरूप सुरक्षित रहना चाहिए अन्यथा राग–रचना से प्रकट होने वाले भाव तथा रस को क्षति पहुँचती है।

रचनाओं में विभिन्न प्रकार से विविधता लाई जा सकती है। एक ही रचना को विभिन्न कलाकारों द्वारा प्रस्तुत किये जाने पर कंठगत, परम्परागत एवं कल्पनागत परन्तु मर्यादित प्रयोगों के द्वारा उसमें नवीनता या विविधता की सृष्टि की जा सकती है तभी उसका सौन्दर्य भी स्थाई रह सकेगा। प्रस्तुतिकरण की विविधता से ही रचना का नया जन्म होता है। राग रचना में स्थायित्व होना भी आवश्यक होता है जिसके कारण उसमें कोई परिवर्तन करना सम्भव नहीं हो पाता है। इस स्थायित्व के कारण काल, प्रस्तुति, माध्यम अथवा शैलीगत विभिन्नता का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता एवं वह सदा जीवित बनी रहती है।

किसी भी रचना की सरलता हृदय को छूती है तो जटिलता मस्तिष्क या बुद्धि को सन्तुष्ट करती है। रचना की विचित्रता जटिलता पर आधारित होती है जिसके समुचित प्रयोग की क्षमता कलाकार पर निर्भर होती है। जटिलता का सन्तुलित प्रयोग कलात्मक क्षमता का परिचायक है। रचना का भावात्मक महत्व रचना की भित्ति स्वर एवं शब्दों से निःसृत भाव तथा रस पर आधारित होती है। उसमें उपयुक्त स्वर, स्वरों के उपयुक्त शब्द और शब्दों के उपयुक्त ताल व लय का समायोजन होना चाहिए तभी वह श्रोताओं को भाव–विभोर करने में समर्थ सिद्ध होती है। भाव एवं रस निष्पत्ति किसी राग या स्वर रचना का मूल अभिप्राय या धर्म है इसलिए भावात्मक सौन्दर्य, रचना का प्राण कहलाता है। भारतीय संगीत, शास्त्रीय नियमों में बद्ध है। शास्त्रों की व्याख्यानुसार राग में नियमबद्धता आवश्यक होती है जिस प्रकार व्यक्ति का अपना परिचय होता है उसी प्रकार रागों के भी परिचय होते हैं, जो राग की पूर्ण जानकारी देता है। सर्वप्रथम राग एवं स्वरों का परिचय होता है। स्वर – बाईस श्रुतियों में से मुख्य बारह श्रुतियों को स्वर कहते हैं। ये स्वर सप्तक के अन्दर थोड़ी–थोड़ी दूर पर स्थित होते हैं इन स्वरों को सा रे ग म प ध नि कहा जाता है। इसी प्रकार राग का परिचय होता है। कम से कम पॉच और अधिक से अधिक सात स्वरों की वह सुन्दर रचना जो कर्ण प्रिय हो एवं सुनने में मधुर प्रतीत हो राग कहलाती है। 'अभिनव राग मंजरी' में राग की परिभाषा इस प्रकार दी गई है।

योऽयं ध्वनि–विशेषस्तु स्वर–वर्ण– विभूषितः।
रंजको जनचित्तानां स राग कथितो बुधैः।।

अर्थात स्वर एवं वर्ण से विभूषित ध्वनि, जो व्यक्तियों का मनोरंजन करे, राग कहलाता है। राग का स्वरूप स्थापित करने में स्वर–श्रुति का प्रयोग, विशेष स्वर–समुदायों का प्रयोग विशेष महत्व रखते हैं। राग का पूर्वांग तथा उत्तरांग वादी होने से राग में निश्चित रस की निष्पत्ति सम्भव हो पाती है अतः राग में उसी प्रकार मन्द्र एवं तार सप्तक का प्रयोग राग प्रस्तुतिकरण में आवश्यक होता है। अतः राग रचना निम्न बिन्दुओं पर आधारित होती है।

1. राग में निश्चित स्वरों के प्रयोग और स्वरों का चलन।
2. आरोह एवं अवरोह में स्वरों के प्रयोग।
3. स्वरों के श्रुति प्रयोग
4. राग के वादी, सम्वादी, अनुवादी और विवादी स्वर।
5. पूर्वांगवादी एवं उत्तरांगवादी।

1.4 वादी स्वर का महत्व

राग का वादी स्वर सबसे महत्वपूर्ण स्वर होता है। शास्त्रानुसार वादी स्वर की स्थिति राग रूपी राज्य में राजा के समान मानी गई है। जिस प्रकार राजा का महत्व अपने प्रजा एवं राज्य में सबसे अधिक होता है उसी प्रकार वादी स्वर का प्रयोग राग में सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। वादी स्वर पर ही राग की विशेषता निर्भर होती है। इसी कारण वादी स्वर को 'जीव' या 'अंश' स्वर भी कहते हैं। इस स्वर का प्रयोग कुशल गायक राग में भिन्न–भिन्न प्रकार से करते हैं। राग में वादी स्वर को बार–बार दिखाना, वादी स्वर से ही राग गायन वादन का आरम्भ करना, वादी स्वर पर ही राग का समापन करना, राग के प्रमुख भागों में वादी स्वर को बारम्बार विभिन्न स्वरों के सथ दिखाना तथा कभी–कभी वादी स्वर को देर तक लम्बा करके गाना इत्यादि विविध रूपों में वादी स्वर का प्रयोग राग में किया जाता है। जैसे – राग बिहाग में वादी स्वर गंधार है तो उसका प्रयोग राग में आलाप के माध्यम से इस प्रकार किया जाएगा। नि़ सा ग, म ग, प, ग म ग, नि प , ध म॑ प ग म ग, गमपध ग म ग, नि़ सा ग म प, ग म ग, सा। इसी प्रकार मारवा राग में वादी स्वर कोमल ऋषभ है उसका प्रयोग राग में इस प्रकार किया जाएगा – नि़ <u>रे</u> सा, नि़ <u>रे</u> ऽ ऽ, ग <u>रे</u> ऽ ऽ, गम॑ग<u>रे</u> , म॑ ग <u>रे</u> ऽ ऽ सा इत्यादि। यहॉ पर कोमल ऋषभ को लम्बा खींचकर उसके वादित्व को सुन्दरता से प्रकट किया जाता हैं। वादी स्वर के प्रयोग से रागों के गायन वादन का समय जानने में भी सुविधा मिलती है। जब राग में सप्तक के पूर्वांग में से कोई स्वर वादी होता है तो उसे पूर्वांगवादी राग कहते हैं और उसके गाने का समय प्रायः दिन–रात के पूर्वांग समय अर्थात दिन के बारह बजे से रात्रि के बारह बजे के बीच होता है। जैसे– भीमपलासी, पीलू, पूर्वी, मारवा, यमन, भूपाली, बागेश्री, इत्यादि रागों में पूर्वांगवादी स्वर होने के कारण ये राग उपयुक्त समय (पूर्वांग समय) में ही गाये बजाये जाते हैं। इसी प्रकार जब कोई वादी स्वर सप्तक के उतरांग में से होता है तो वह दिन रात के उत्तरांग भाग अर्थात रात्रि के बारह बजे से दिन के बारह बजे तक के समय में से किसी समय का राग होता है। जैसे – भैरव, भैरवी, बिलावल, कलिंगड़ा, सोहनी, आसावरी आदि। वादी स्वर की एक विशेषता यह भी होती है कि किसी राग में केवल वादी–स्वर बदल देने से ही राग भी बदल जाता है, चाहे उन रागों में लगने वाले स्वर लगभग एक जैसे ही हों जैसे– भीमपलासी तथा धनाश्री राग। इन दोनों रागों की उत्त्पति काफी थाट से मानी गई है एवं दोनों ही रागों में गंधार और निषाद स्वर कोमल है, किन्तु इन रागों में केवल वादी स्वर के उल्टफेर से ही राग परिवर्तित हो जाता है। जब भीमपलासी राग गाया जाएगा तो उसमें मध्यम स्वर को अधिक प्रयुक्त किया जाएगा क्योंकि भीमपलासी राग में मध्यम स्वर 'वादी' है इसके अतिरिक्त जब धनाश्री राग गाया जाएगा तो उसमें पंचम स्वर अधिक प्रयोग किया जाएगा क्योंकि धनाश्री राग का 'वादी' स्वर पंचम है इससे स्पष्ट हो जाता है कि केवल वादी स्वर को बदल देने से ही राग भीमपलासी से ही धनाश्री हो गया।

किसी राग का कोई स्वर समुदाय देखकर उसमें वादी स्वर को पहचानने से उस राग का नाम भी ध्यान में आ जाता है। जिस रागों के मुख्य स्वर समुदाय द्वारा राग की पहचान की जाती है, उसी प्रकार राग में उस स्वर का बार–बार प्रयोग से वादी स्वर स्पष्ट हो जाता है एवं राग की रूपरेखा स्पष्ट हो जाती है। जैसे – सा रे सा, गमध, निधसां, सांनि ध प, म॑ प ध प, ग म रे सा, सा रे सा, ग म ध । इसमें धैवत स्वर विशेष रूप से चमक कर अपना वादित्व प्रकट कर रहा है। अतः उपयुक्त स्वर समूह द्वारा यह स्पष्ट हो रहा है कि यह स्वर 'राग हमीर' के हैं। क्योंकि हमीर राग का वादी स्वर 'धैवत' है। वादी स्वर की सहायता से राग का विस्तार एवं राग की बढत भी दिखाई जाती है। प्रत्येक राग का अपना अलग स्वरूप होता हैं। राग का चलन, राग की जाति, राग के स्वर तथा राग का वादी स्वर ही किसी राग को पूर्ण रूप से खड़ा कर सकता है। जैसे – राग मालकौंस में 'वादी स्वर' मध्यम है तो किस से हम मध्यम स्वर को राग में बार–बार प्रयोग कर वादी स्वर के महत्व को बताते हैं। जैसे – राग मालकौंस के स्वरों से वादी स्वर का प्रयोग इस प्रकार किया जाएगा। <u>नि़</u> सा <u>ग</u> म, म <u>ग</u> सा, <u>ध़</u> <u>नि़</u> सा म, <u>ग</u> म, <u>ध</u> म, <u>ग</u> म <u>ध</u> <u>नि</u> <u>ध</u> म, <u>ध</u> म <u>ध</u> म <u>ग</u> म <u>ध</u> <u>नि</u>

सां नि ध म, ग म ध म, ग म ग सा, ध़ नि़ सा ग म।। गायन—वादन का समय भी राग के वादी स्वर से जाना जा सकता है। वादी स्वर पर ही राग का सौन्दर्य निर्भर रहता है।

1.5 सम्वादी स्वर का महत्व

संवादी स्वर का अर्थ है— राग में लगने वाला एक ऐसा स्वर, जो महत्व में केवल वादी की अपेक्षा ही कम हो, परन्तु उस राग के सभी स्वरों की अपेक्षा अधिक प्रयुक्त होता हो। प्रत्येक राग के वादी एवं संवादी ये दो बड़े आधार स्तम्भ है। इसी पर सम्पूर्ण राग की स्थिति है। राग में लगने वाले ठाठ के यदि दो भाग किये जाएं तो दो स्वर इसके दो भागों में रहेंगे। वादी व संवादी इन स्वरों का एक दूसरे के निकट होना कभी शोभनीय नहीं है।

वादी, सम्वादी, अनुवादी एवं विवादी इन चार स्वरों में वादी स्वर के बाद दूसरा महत्वपूर्ण स्वर सम्वादी स्वर रहता है। इस स्वर का प्रयोग तथा न्यास, वादी की अपेक्षा कम तथा अन्य स्वरों की तुलना में अधिक होता है। इसे वादी स्वर के मंत्री के रूप में जाना जाता है क्योंकि यह वादी स्वर का परम सहायक होता है और उससे अपना अटूट सम्बन्ध बनाये रहता है। वादी तथा सम्वादी स्वरों में चार या पॉच स्वरों की दूरी रहती है। यदि राग का वादी स्वर सप्तक के पूर्वांग भाग से होता है तो उसका सम्वादी स्वर राग के उत्तरांग से होता हैं दूसरे शब्दों में षड़ज—मध्यम एवं षड़ज—पंचम भाव अवश्य रहता है इसका तात्पर्य यह है कि वादी—सम्वादी में यदि किसी को षड़ज मान लिया जाए तो दूसरा स्वर या तो उसका मध्यम या पंचम स्वर होगा। जिस प्रकार वृन्दावनी सॉरंग राग में रे—प स्वर वादी—सम्वादी हैं। इसमें अगर ऋषभ को 'सा' मान लिया जाय तो पंचम उसका मध्यम होगा। इसी तरह कल्याण में ग—नि स्वर वादी—सम्वादी है। अगर गंधार को षड़ज मान लिया जाय तो नि उसका पंचम स्वर होगा। सप्तक में सा म, रे प, ग ध, म नि एवं प सां स्वरों के बीच षड़ज—मध्यम भाव तथा सा प, रे ध, ग नि एवं म सां, स्वरों में षड़ज—पंचम भाव रहता है।

1.6 अनुवादी स्वर का महत्व

राग में प्रयोग होने वाले वादी एवं संवादी स्वर के अतिरिक्त स्वर, राग के अनुवादी स्वर कहलाते हैं। वादी तथा सम्वादी स्वर के पश्चात अनुवादी स्वरों का निश्चित प्रयोग राग के स्वरूप को स्थापित करने में सहायक होते हैं। अनुवादी स्वरों की भूमिका राग में अनुचर स्वरों की होती है जो राग के वादी—समवादी के प्रयोग में सहायता करते हैं। अनुवादी स्वरों के समुदाय में राग का निश्चित रस प्रतिपादित किया जा सकता है। आप यमन तथा भैरवी राग के उदाहरण से अनुवादी स्वर के महत्व को समझेंगे। भैरवी राग म—सा स्वर के अतिरिक्त रे गमध नि अनुवादी स्वर हैं एवं इन स्वरों की सहायता से राग के वादी एवं संवादी स्वर (म —सा) स्थापित किये जाते हैं जो कि भैरवी राग को वांछित आकृति प्रदान करते हैं। इसी प्रकार यमन राग में वादी ग एवं संवादी नि को छोड़कर राग में लगने वाले अन्य स्वर रे मं प ध स्वर अनुवादी स्वर हुए जो वादी—संवादी (ग—नि) स्वरों को स्थापित करने में अनुसरण करते हैं और राग को निश्चित स्वरूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

1.7 विवादी स्वर का महत्व

विवादी स्वर का शब्दिक अर्थ है विवादी या बिगाड़ पैदा करने वाला। अर्थात जो स्वर राग में प्रयोग होने पर राग का स्वरूप बिगाड दे उसे विवादी स्वर कहते हैं। शास्त्र नियम के अनुसार रागों में विवादी स्वर का प्रयोग वर्जित रहता है किन्तु उसका अल्पत्व रखते हुए थोड़ा सा प्रयोग उसकी खूबसूरती बढाने के लिए कभी—कभी कलाकार अपने गायन—वादन में कर लेते हैं जो शास्त्र नियमों के अनुकूल ही किया जाता है। परन्तु इस स्वर के अधिक प्रयोग से राग हानी होने की भी पूर्ण सम्भावना रहती है, इसलिए इसका अल्प प्रयोग मात्र ही राग में किया जा सकता है। जैसा कि राग मंजरी में कहा गया है—

विवादी तु सदा त्याज्यः क्वचित्तानक्रियात्मकः।

इस प्रकार विवादी स्वर के विषय में प्राचीन ग्रन्थकारों की धारणा विशेष रूप से पाई जाती है। इसी का उल्लेख करने हुए 'लक्ष्य संगीत' में कहा गया है–

विवादी स्वर व्याख्यानै रत्नाकर प्रपंचितम।
रहस्यं किंचिदप्यासीत भिन्नं मर्मविदाम्मते।।

इससे सिद्ध होता है कि विवादी स्वर की व्याख्या 'रत्नाकर' आदि ग्रन्थों में रहस्यपूर्ण ढंग से भिन्न–भिन्न रूपों में पाई जाती है। कई ग्रन्थों में विवादी स्वर को राग का दुश्मन भी 'शत्रु तुल्याः विवादिनः' कहकर बताया गया है। इतना सब होने के पश्चात भी भातखण्डे जी का मत विवादी स्वर के बारे में यह था कि यदि कुशलता पूर्वक कण के रूप में विवादी स्वर का प्रयोग कर दिया जाए और उससे राग की रंजकता बढती हो, तो 'मनाक स्पर्श' के नाते यह कार्य क्षमा करने योग्य समझा जाएगा। उन्होंने 'अभिनव राग मंजरी' में लिखा है–

'सुप्रमाणयुतो रागे विवादी रक्तिवर्धकः।
यथेषत्कृष्णवर्णेन शुभ्रस्यातिविचित्रता'।।

'संगीत समय–सार' ग्रन्थ में विवादी स्वर की व्याख्या 'प्रच्छादनीयो लोप्यो वा' इस प्रकार की गई है। प्रच्छादनय का अर्थ है – मनाक –स्पर्श' अर्थात किंचित विवादी स्वर का प्रयोग इस प्रकार हम आजकल देखते भी है कि कुशल गायक अपने राग में विवादी स्वर का प्रयोग करके श्रोताओं से प्रशंसा प्राप्त कर लेते हैं जो सुनने में सुन्दर लगते हैं तथा जिससे राग का स्वरूप भी नहीं बिगड़ने पाता है बल्कि उस स्वर के प्रयोग से उसमें कुछ और विचित्रता पैदा हो जाती है। परन्तु इस कार्य को करने के लिए अत्यधिक सावधानी की आवश्यकता रहती है। इसके विपरीत यदि गायक चतुर एवं कुशल नहीं हुआ तथा गलत ढंग से विवादी स्वर का प्रयोग अपने गायन–वादन में कर बैठा, तो राग हानि तो होगी ही साथ ही वह श्रोताओं से निन्दा भी प्राप्त करेगा। इसलिए विवादी स्वर का जब कभी भी प्रयोग किया जाय तो क्षण मात्र कण के रूप में या जल्द तानों में करना ही उचित होगा। इस मत का समर्थन 'राग–विबोध' में इस प्रकार मिलता है–

'वर्ज्जस्वरोऽवरोहे द्रुतगीतो न रक्तिहरः'

अर्थात विवादी स्वर द्रुत गीतो में सौन्दर्य को नष्ट नहीं करता है।

वर्तमान समय में अनेक रागों में विवादी स्वरों का प्रयोग होने लगा है। जैसे' हमीर, गौड़सारंग एवं कामोद राग में कोमल निषाद विवादी स्वर के नाते जब कण स्पर्श या द्रुत लय की मींड़ के साथ प्रयुक्त किया जाता है तो उस समय राग बहुत सुन्दर प्रतीत होता है। इसी प्रकार केदार, छायानट रागों में तो विवादी स्वर (कोमल निषाद) का प्रचार इतना अधिक बढ़ गया है इससे श्रोता कभी–कभी आश्चर्य चकित हो जाते हैं। राग भैरवी में तो विवादी स्वर का प्रयोग इतना अधिक बढ गया है कि यह राग अब सात स्वरों के स्थान पर पूरे बारह स्वरों का हो गया है अर्थात् कोमल स्वरों के अतिरिक्त रे, ग, म ध नि, इन पॉच स्वरों का भी प्रयोग इसमें बढ–चढ कर खुले रूप में लोग करने लगे हैं। किन्तु विवादी स्वरों का अधिकता के साथ प्रयोग करना रागों के साथ अन्याय करना है।

विवादी स्वर विवादी ही है। अतः इसका प्रयोग सीमित रूप में तथा कुशलता के साथ करना ही उचित है अन्यथा राग हानि होते देर नहीं लगेगी। प्रत्येक राग में हर एक स्वर का अपना अलग महत्व होता है। जहॉ पर जिस स्वर की आवश्यकता राग में होती है उसी के अनुरूप यदि उसका प्रयोग किया जाय तो राग में उसका महत्व बढ जाता है। एक राग का विवादी स्वर दूसरे राग का वादी, सम्वादी अथवा अनुवादी स्वर हो सकता है। जिस प्रकार राग वृन्दावनी सारॅग के लिए कोमल धैवत विवादी स्वर हैं, किन्तु यही स्वर राग भैरव एवं राग मियॉ की तोडी़ में वादी स्वर है। विवादी स्वर का प्रयोग करते समय दो मुख्य बातों का – मधुरता लाना एवं विवादी स्वर का अल्प प्रयोग करना दोनों का ही प्रयोग सुन्दरता से किया जाना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :—

1. राम में कम से कम...................................... स्वर होने चाहिए।
2. वादी स्वर को.................................... की संज्ञा दी गई है।
3. सम्वादी स्वर को................................. की संज्ञा दी गई है।
4. अनुवादी स्वर को.................................. की संज्ञा दी गई है।
5. पॉच स्वरों के आरोह तथा अवरोह में प्रयोग को....................................... जाति में रखा जाता है।
6. छः स्वरों के आरोह तथा अवरोह में प्रयोग को.....................................जाति में रखा जाता है।
7. सात स्वरों के आरोह तथा अवरोह में प्रयोग को................................. जाति में रखा जाता है।
8. सप्तक के अनुसार पूर्वांग वादी....................... से .... सप्तक तक है।
9. सप्तक के अनुसार उत्तरांगवादी....................... से .... सप्तक तक है।
10. ओडव—षाडव जाति के राग में आरोह एवं अवरोह में क्रमशः .... स्वर होंगे।
11. षाडव—सम्पूर्ण जाति के राग में आरोह एवं अवरोह में क्रमशः .... स्वर होंगे।
12. ओडव—सम्पूर्ण जाति के राग में आरोह एवं अवरोह में क्रमशः.................................. स्वर होंगे।

ख) लघु उत्तरीय प्रश्न :—

1. राग में सम्वादी स्वर के महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. विवादी स्वर पर टिप्पणी लिखिए।

1.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप राग निर्माण एवं राग—निर्माण के महत्वपूर्ण वादी, सम्वादी, अनुवादी एवं विवादी स्वर के विषय में जान चुके होंगे। शास्त्रीय संगीत के गायन एवं वादन में राग प्रस्तुत किये जाते हैं जिनका शास्त्रोक्त स्वरूप निश्चित किया गया है। राग के स्वरूप को स्थापित करने में कुछ नियमों तथा स्वरों के निश्चित प्रयोग किये जाते हैं। इन्हीं नियमों एवं स्वरों के प्रयोग से राग चाहे कहीं भी गाया—बजाया जाए उसका मूल स्वरूप स्थिर रहता है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप राग—निर्माण के सिद्धान्तों को समझ गये होंगे। राग के महत्वपूर्ण स्वर वादी, सम्वादी, अनुवादी एवं विवादी के महत्व को समझकर इनका क्रियात्मक रूप में प्रयोग कर पाऐंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप राग का प्रस्तुतीकरण भी सफलता पूर्वक कर सकेंगे तथा राग में निश्चित रस को भी आप स्थापित करेंगे।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. पॉच स्वर	2. राजा	3. मंत्री	4. अनुचर
5. ओडव—ओडव जाति	6. षाडव—षाडव जाति	7. सम्पूर्ण —सम्पूर्ण जाति	
8. मन्द्र सप्तक से मध्य सप्तक	9. मध्य सप्तक से तार सप्तक		
10. पॉच तथा छः स्वर	11. छः तथा सात स्वर	12. पॉच तथा सात स्वर	

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 'बंसंत', *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. श्रीवास्तव, श्री हरीशचन्द्र, *राग परिचय भाग— 1,2*, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. झा, पं0 रामाश्रय, *अभिनव गीतांजलि—भाग— 1*।
4. भट्ट, डॉ0 विशम्भर नाथ, *संगीत कादम्बिनी*, संगीत कार्यालय हाथरस।

1.11 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. चौधरी, डा0 सुभाष रानी, संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त, कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
2. बंसल, डॉ0 परमानन्द,संगीत सागरिका, प्रासंगिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राग निर्माण की प्रक्रिया को विस्तार पूर्वक समझाते हुए राग निर्माण हेतु प्रयुक्त तत्वों का भी उल्लेख कीजिए।

इकाई 2 – राग एवं रागिनी की व्याख्या; रागों का समय चक्र; ग्राम और मूर्च्छना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 राग की व्याख्या
2.4 रागिनी की व्याख्या
2.5 रागों का समय चक्र
2.6 ग्राम
2.7 मूर्च्छना
2.8 सारांश
2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0आई0–102) के द्वितीय खण्ड की दूसरी इकाई है। इससे पूर्व की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप स्वरलिपि पद्धतियों के बारे में जान चुके होंगे। आप स्वर वाद्यों (तत् व सुषिर) की उत्पत्ति एवं विकास के विषय का अध्ययन कर चुके होंगे। तन्त्र वाद्य के विभिन्न घरानों व उनकी शैली को भी आप समझ चुके होंगे। आप राग निर्माण के विषय में भी जान चुके होंगे।

इस इकाई में राग और रागिनी का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत है। इस इकाई के माध्यम से, ग्राम और मूर्च्छना का अर्थ एवं भारतीय संगीत में इनके महत्व को समझाया गया है। रागों के समयानुसार च्रक का भी वर्णन भी इस इकाई में किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप राग और रागिनी को जान सकेंगे। रागों के समय च्रक को समझ कर उसके अनुरुप राग प्रस्तुत करने में सक्षम होंगे। ग्राम और मूर्च्छना को समझ कर भारतीय संगीत में इनके महत्व को जान सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

- राग और रागिनी के अर्थ व महत्व को समझ सकेंगे।
- प्राचीन समय से लेकर वर्तमान तक, ग्राम व मूर्च्छना के स्वरुप को जान सकेंगे।
- रागों के समय चक्र व इसके महत्व से अवगत हो सकेंगे।
- इकाई में वर्णित सभी विषयों को समझ कर अपनी प्रस्तुती हेतु इनका प्रयोग कर सकेंगे।

2.3 राग की व्याख्या

शास्त्रीय संगीत में राग, स्वरों का ऐसा समूह है जो रंजकता प्रदान करे। इन स्वर समूह के प्रयोग हेतु नियम निर्धारित किये गये जो कि अपरिवर्तनीय थे और इन्हीं नियमों के आधार पर रागों को गाया बजाया जाता है। मूल छ रागों से रागिनियाँ बनाई गई। रागों के वर्गीकरण हेतु रागों को जाति में बॉटा गया एवं संगीत के मर्मज्ञ विद्वानों द्वारा रागों के गायन–वादन का समय भी निश्चित किया गया। उत्तर भारतीय संगीत में रागों के समय चक्र के नियम को गम्भीरता से पालन किया जाता है। प्राचीन समय में रागों को ग्रामों में वर्गीकृत किया गया था। आधार स्वर के परिवर्तन से मूर्च्छना बनाई गई जिनका प्रयोग गायन–वादन में किया गया।

आजकल राग का सम्बन्ध शास्त्रीय संगीत से ही समझा जाता है। शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत गायन एवं वादन के द्वारा राग की प्रस्तुति की जाती है, राग मूल रूप में स्वरों का समूह है। राग के स्वरूप को प्रस्तुत करने के लिए स्वर प्रयोग के नियम निर्धारित किये गये। राग के स्वरों का आपस में सम्वाद, जिसको वादी–सम्वादी कहा गया, राग के परिचय स्वर समूह जिसको पकड़ कहते हैं आदि का निर्धारण रागों के लिए किया गया और इन्हीं के आधार पर राग को प्रस्तुत किया जता है। राग के स्वरूप को स्थापित करने में श्रुतियों के प्रयोग का महत्वपूर्ण स्थान है। राग में स्वरों के भिन्न–भिन्न प्रयोगों से रागों का निर्माण हुआ तथा राग के गायन वादन का समय भी पूर्व के विद्वानों ने निर्धारित किया। यद्यपि राग समय चक्र का कोई वैज्ञानिक आधार प्राप्त नहीं होता परन्तु फिर भी उत्तर भारतीय संगीत में राग के समय चक्र का पालन किया जाता है। यद्यपि दक्षिण भारतीय संगीत में इस अनुशासन का पालन नहीं हो रहा है। उत्तर भारतीय संगीत में रागों को भातखण्डे जी द्वारा दस थाटो में वर्गीकृत किया एवं दक्षिण–भारत में व्यकंटमुखी द्वारा बहत्तर थाट पद्धति दी गई। रागों के रस भी निर्धारित किये गये एवं रागों में रस की निष्पति की कलाकार से अपेक्षा भी की जाती है। राग में कम से कम पांच स्वरों का होना भी आवश्यक समझा गया है।

अभिनव राग मंजरी में राग की व्याख्या निम्न श्लोक द्वारा की गई है–

योयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्ण विभूषितः
रंजको जनचित्तानां स रागः किथतो बुधैः।। *(अभिनव राग मंजरी)*

अर्थात ध्वनि की उस विशेष प्रकार की रचना को, जिसमें स्वर तथा वर्णों के कारण सौन्दर्य हो, जो व्यक्ति के मन का रंजन करे, उसे राग कहते हैं। पारम्परिक मान्यता के अनुसार शिव के पूर्व मुख से भैरव, पश्चिम से हिंडोल, उत्तर से मेघ, दक्षिण से दीपक एवं एवं आकाशोन्मुख होने से 'श्री' राग प्रकट हुए तथा पार्वती द्वारा कौशिक राग की उत्पत्ति हुई। 'संगीत मकरन्द' के रचयिता नारद द्वारा रागों की पुलिंग, स्त्रीलिंग एवं नपुंसक लिंग की कल्पना की गई। इनके अनुसार इक्कीस पुरूष राग, चौबीस स्त्री राग एवं तेरह नपुंसक राग की श्रेणी में रखे हैं। नारद ने ही सर्वप्रथम रागों को भिन्न–भिन्न प्रहर में गाने बजाने हेतु मान्यता दी। बाद के ग्रन्थकारों ने रागों का वर्गीकरण राग–रागिनी, राग–पुत्र एवं राग–पुत्रवधू के रूप में किया। इनके अतिरिक्त प्राचीन ग्रन्थकारों ने प्रत्येक रागिनी के पुत्र और पुत्र–वधू मानकर उनके परिवार को बढ़ाया है जिस समय उक्त मत प्रचलित थे उस समय राग–रागिनियों का जो स्वरूप था वह आधुनिक प्रचलित रागों से नहीं मिलता। अतः उनको आधुनिक थाट पद्धति के रागों में लागू नहीं किया जा सकता परन्तु फिर भी संगीत के विद्यार्थियों को अपनी प्राचीन राग–रागिनी पद्धति के बारे में जानकारी रखना जरूरी है।

संगीत परिवर्तनशील रहा है जिस युग में जैसे रागों का प्रचार होता है उसी के आधार पर उस युग में के विद्वान संगीत शास्त्र की रचना करते हैं प्राचीन ग्रन्थों में रागों में वर्णित स्वरूप या स्वर आज के प्रचलित राग–स्वरों से मेल नहीं खाते। राग रागिनी के विषय में मुहम्मद रजा ने अपने ग्रन्थ नगमाते–आसफी में लिखा कि प्राचीन राग–रागिनी, पुत्र एवं पुत्रवधू की कल्पना गलत व अवैज्ञानिक है क्योंकि राग और रागिनियों के स्वरों में समता नहीं पाई जाती है।

इन सब बातों के अतिरिक्त रागों की जातियॉ भी निश्चित हैं जिससे राग की स्वरों के अनुरूप जातियॉ होती हैं।

इस इकाई के माध्यम से आप राग से सम्बन्धित जानकारी जो कि प्राचीन समय में प्रयोग में थी जानेंगे, जिससे आपको संगीत के गहन अध्ययन में सुविधा होगी।

रागों की जाति – थाट के स्वरों से ही राग तैयार होते हैं। पूर्व में बताया गया कि थाट में सात स्वर होने जरूरी हैं किन्तु राग के लिए यह आवश्यक नहीं कि उसमें सात स्वर हों। अतः किसी थाट के स्वरों में से पॉच, छः या सात स्वरों को लेकर जब कोई राग तैयार किया जाता है तो जितने स्वर उस थाट में से लिये जाते हैं उन्हीं स्वरों के आधार पर उस राग की जाति निश्चित की जाती है। इस प्रकार स्वरों की संख्या के आधार पर रागों की तीन जातियॉ मानी गई हैं जिन्हें औडव, षाडव और सम्पूर्ण कहते हैं।

1. औडव – जब किसी थाट में से कोई दो स्वर कम करके कोई राग उत्पन्न होता है अर्थात जब किसी राग में पॉच स्वर लगते हैं तो उसे औडव जाति का राग कहते हैं। जैसे–राग भूपाली, देशकार, दुर्गा, मालकौंस, विभास आदि। औडव जाति के राग प्रचार में अधिक हैं।

2. षाडव – जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि षाडव का अर्थ छः है जब किसी थाट में से केवल एक स्वर वर्जित करके जब कोई राग उत्पन्न होता है अर्थात जब किसी राग में छः स्वर का ही प्रयोग होता है तो उसे षाडव जाति का राग कहते हैं। इस प्रकार के कई राग प्रचार मे हैं। जैसे पूरिया, मारवा इत्यादि।

3. सम्पूर्ण – जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है कि थाट से कोई स्वर नहीं घटाकर सातों स्वरों का प्रयोग राग के आरोह एवं अवरोह जिस राग में होता है उन रागों को सम्पूर्ण राग कहते हैं। जैसे–बिलावल, यमन, भैरव, भैरवी आदि।

जिन रागों के आरोह में छः स्वरों का प्रयोग होता है उन्हें षाडव जाति एवं जिनमें पॉच स्वरों का प्रयोग आरोह–अवरोह में किया जाता है उनको औडव–जाति के अन्तर्गत रखा जाता है। कुछ राग ऐसे भी हैं जिनके आरोह में छ तथा अवरोह में पॉच स्वरों का प्रयोग होता है अथवा आरोह में सात और अवरोह में पॉच स्वर लगते हैं ऐसे रागों को पहचानने के लिए ग्रन्थकारों ने उपर्युक्त तीन जातियों में से हर एक जाति की तीन–तीन उप जातियॉ बनाई हैं जो कि इस प्रकार है।

सम्पूर्ण की तीन उप जातियॉ :–

1. सम्पूर्ण – सम्पूर्ण 2. सम्पूर्ण – षाडव 3. सम्पूर्ण – औडव

षाडव की तीन उप जातियॉ :–

1. षाडव – सम्पूर्ण
2. षाडव – षाडव
3. षाडव – औडव

औडव की तीन उप जातियॉ :–

1. औडव – सम्पूर्ण
2. औडव – षाडव
3. औडव – औडव

इस प्रकार तीन जातियों से नौ उपजातियॉ बनीं जो इस प्रकार हैं।

सम्पूर्ण–सम्पूर्ण – जिस राग के आरोह तथा अवरोह में सातों स्वरों का प्रयोग हो उसे सम्पूर्ण–सम्पूर्ण जाति का राग कहेंगे। जैसे – *सा रे ग म प ध नि – सां नि ध प म ग रे सा।*

सम्पूर्ण–षाडव – जिस राग के आरोह में सात एवं अवरोह में छः स्वरों का प्रयोग होता हो उसे सम्पूर्ण–षाडव जाति का राग कहेंगे। जैसे – *सा रे ग म प ध नि सां – सां ध प म ग रे सा।*

<u>सम्पूर्ण–औडव</u> – जिस राग के आरोह में सात स्वर एवं अवरोह में पॉच स्वर प्रयुक्त होते हैं। उसे सम्पूर्ण–औडव जाति का राग कहेंगे। जैसे – *सा रे ग म प ध नि सां – सां नि प म ग सा।*

<u>षाडव–सम्पूर्ण</u> – जिसके आरोह में छः स्वर एवं अवरोह में सात स्वर लगते हैं।

जैसे – *सा ग म प ध नि सां। सां नि धा प म ग रे सा*

<u>षाडव–षाडव</u> – जिसके आरोह और अवरोह दोनों में छः–छः स्वर लगते हैं षाडव–षाडव जाति है। जैसे – *सा रे ग प ध नि सां – सां नि ध प ग रे सा।*

<u>षाडव–औडव</u> – जिसके आरोह में छः तथा अवरोह में पॉच स्वर लगते हैं।

जैसे – *सा रे ग प ध नि सां – सां ध प म ग रे सा।*

<u>औडव–सम्पूर्ण</u> – इसमें आरोह में पॉच स्वर तथा अवरोह में सात स्वर प्रयुक्त होते हैं।

जैसे – *सा ग म ध नि सां – सां नि ध प म ग रे सा।*

<u>औडव–षाडव</u> – जिसके आरोह में पॉच एवं अवरोह में छः स्वर प्रयुक्त हो औडव–षाडव जाति होती है। जैसे – *सा रे ग प ध सां – सां नि ध प ग रे सा।*

<u>औडव–औडव</u> – जिसके आरोह में भी पॉच एवं अवरोह में भी पॉच स्वरों का प्रयोग होता है।

जैसे – *सा रे म प ध सां – सां ध प म रे सा।*

रागों की इन जातियों से रागों की संख्या मालूम हो जाती है। उपर्युक्त नौ जातियों से किसी एक थाट द्वारा 484 राग तैयार हुए :–

<u>सम्पूर्ण–सम्पूर्ण</u> – इस जाति से केवल एक ही राग बना क्योंकि इसके आरोह तथा अवरोह दोनों में सात–सात स्वर हैं।

<u>सम्पूर्ण–षाडव</u> – इस जाति के छः राग बन सकते हैं क्योंकि इसमें आरोह को सम्पूर्ण रखना होगा तथा अवरोह में प्रत्येक बार एक स्वर बदलकर छोड़ते जाइये।

<u>सम्पूर्ण–षाडव</u> – इसके आरोह में सात स्वर रखते जाइये तथा अवरोह में दो स्वर बदल–बदलकर जोड़ने होंगे तो पन्द्रह राग बनें।

<u>षाडव–सम्पूर्ण</u> – आरोह में छः स्वर होने के कारण, छः बार एक–एक स्वर बदलकर छोड़ने से इसके भी छ राग बने।

<u>षाडव–षाडव</u> – इसके आरोह में छ बार एक–एक स्वर बदलकर रखा, तो छ टुकड़े होंगे इसी प्रकार अवरोह में भी ऐसा ही किया तो $6 \times 6 = 36$ राग इस जाति से बनेंगे।

<u>षाडव–औडव</u> – इस जाति में नब्बे राग हो सकते हैं, क्योंकि आरोह में एक स्वर छोड़ने से छ और अवरोह में दो–दो स्वर छोड़ने से पन्द्रह अर्थात $15 \times 6 = 90$ राग बनें।

<u>औडव–सम्पूर्ण</u> – आरोह में दो स्वर छोड़ने से पन्द्रह प्रकार बने और अवरोह इसका सम्पूर्ण है, अतः इस जाति से पन्द्रह राग उत्पन्न हुए।

<u>औडव–षाडव</u> – क्योकि इसके आरोह में प्रत्येक बार कोई भी दो स्वर छोड़ने पड़े तो इससे पन्द्रह प्रकार बने और अवरोह में एक स्वर प्रत्येक बार छोड़ना पड़ा तो छ प्रकार बने इसलिए $15 \times 6 = 90$ राग इस जाति से उत्पन्न हुए।

<u>औडव–औडव</u> – इस जाति के सबसे अधिक अर्थात दो सौ पच्चीस राग हो सकते हैं, क्योंकि आरोह में प्रत्येक बार दो स्वर छोड़ने से पन्द्रह प्रकार बने और अवरोह में भी ऐसे ही दो स्वर छोड़ने से पन्द्रह प्रकार बने, तो $15 \times 15 = 225$ राग तैयार हुए।

इस प्रकार एक थाट की नौ जातियों से चार सौ चौरासी (484) राग बने जो निम्नसारिणी द्वारा स्पष्ट होगा।

484 रागों की सारिणी

सं0	जाति	आरोह के स्वर	अवरोह के स्वर	राग तैयार होंगे
1	सम्पूर्ण – सम्पूर्ण	7	7	1
2	सम्पूर्ण – षाडव	7	6	6
3	सम्पूर्ण –ओडव	7	5	15
4	षाडव –सम्पूर्ण	6	7	6
5	षाडव –षाडव	6	6	36
6	षाडव –ओडव	6	5	90
7	ओडव –सम्पूर्ण	5	7	15
8	ओडव –षाडव	5	6	90
9	ओडव –ओडव	5	5	225

एक थाट की नौ जातियों से उत्पन्न रागों की कुल संख्या – 484

जब एक थाट से 484 राग तैयार हो सकते हैं तो उत्तरी संगीत पद्धति के दस थाटों से 484 x 10 = 4840 राग बने और दक्षिण संगीत–पद्धति के बहत्तर थाटों से 484 x 72 = 34848 राग तैयार हो सकते हैं इसके अतिरिक्त कुछ और भी राग वादी स्वर को बदल देने से उत्पन्न हो सकते हैं इस प्रकार रागों की संख्या यद्यपि बढ़ सकती है किन्तु प्रचार में करीब दो सौ रागों से अधिक संख्या दिखाई नहीं देती। राग में रंजकता का होना आवश्यक होता है इस बंधन के कारण राग संख्या मर्यादित सी हो जाती है।

2.4 रागिनी की व्याख्या

संगीत की व्यवस्थित व्याख्या भरत के नाट्यशास्त्र से मिलती है। भरत के नाट्यशास्त्र में राग एवं रागिनी शब्द का संदर्भ प्राप्त नहीं होता वरन षड़ज और मध्यम ग्राम में अट्ठारह जातियों को समाहित किया गया है जिनमें से सात षड़ज ग्राम की तथा ग्यारह मध्यम ग्राम की जाति बताई गयी है। मतंग ने अपने वृहद्देशी ग्रन्थ में षड़ज की सात जातियों में से एक जाति को राग बताया एवं 'संगीत मकरन्द' के रचयिता नारद द्वारा रागों की पुलिंग, स्त्रीलिंग एवं नपुंसक लिंग की कल्पना की गई। इनके अनुसार इक्कीस पुरूष राग, चौबीस स्त्री राग एवं तेरह नपुंसक राग की श्रेणी में आते हैं। नारद ने ही सर्वप्रथम रागों को भिन्न–भिन्न प्रहर में गाने बजाने हेतु मान्यता दी। बाद के ग्रन्थकारों ने रागों का वर्गीकरण राग–रागिनी, राग–पुत्र एवं राग पुत्र–वधु के रूप में किया जिसमें हमें निम्न चार मत प्राप्त होते हैं।

1. शिवमत (सोमेश्वर मत)
2. भरत मत
3. कल्लिनाथ मत
4. हनुमन्मत

इन सब विद्वानों ने मूल छ रागों से रागनियों को मान्यात दी। श्री और मेघ राग को छोडकर प्रत्येक मत में मुख्य 6 रागों के बारे में मतभेद रहा है जो आगे दी गयी प्रत्येक मत की राग–रागिनी सारिणी से स्पष्ट होगा।

शिवमत (सोमेश्वर मत) के छ राग और छत्तीस रागनियॉ :–

क्र.	राग	प्रत्येक राग की छ रागिनियॉ
1	श्री	1. मालवी 2. त्रिवेणी 3. गौरी 4. कदार 5. मधुमाधवी 6. पहाड़िका
2	बसंत	1. देशी 2. देवगिरी 3. वराटी 4. तोड़ी 5. ललिता 6. हिंदोली
3	पंचम	1. विभाषा 2. भूपाली 3. कर्णाटी 4. बड़हॅसिका 5. मालवी 6. पटमंजरी
4	मेघ	1. मल्लारी 2. सोरठी 3. सावेरी 4. कौशिकी 5. गांधारी 6. हरश्रृंगारा
5	भैरव	1. भैरवी 2. गुर्जरी 3. रामकिरी 4. गुणकिरी 5. बंगाली 6. सैंधवी
6	नटनारायण	1. कामोदी 2. आभीरी 3. नाटिका 4. कल्याणी 5. सारंगी 6. नट्टहंबीरा

शिवमत को मानने वाले के लिए दामोदर पंडित–कृत संगीत दर्पण ग्रन्थ महत्वपूर्ण माना जाता है। शिवमत एवं कल्लिनाथ मत में राग संख्या छ मानकर प्रत्येक की छः–छः रागिनियॉ मानी किन्तु अन्य मतों में छ राग मानकर उनकी पॉच–पॉच रागिनियॉ मानी हैं अर्थात शिवमत एवं कल्लिनाथ मत छ राग, छत्तीस रागिनियों के सिद्धान्त को मानते हैं और भरत–मत तथा हनुमन्मत में छ राग, तीस रागिनियों का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है।

भरतमत के छ राग और तीस रागिनियॉ :–

राग	प्रत्येक राग की पांच रागिनियॉ				
1. भैरव	1. मधमाधुवी	2. ललिता	3. बरारी	4. भरवी	5. बहुली
2. मालकौंस	1. गुजरी	2. विद्यावती	3. तोड़ी	4. खंबावती	5. ककुभ
3. हिंडोल	1. रामकली	2. मालवी	3. आसावरी	4. देबारी	5. केकी
4. दीपक	1. केदारी	2. गौरा	3. रूद्रावती	4. कामोद	5. गुजरी
5. श्री	1. सैंधवी	2. काफी	3. ठुमरी	4. विचित्रा	5. सोहनी
6. मेघ	1. मल्लारी	2. सारंगा	3. देशी	4. रजिवल्लभा	5. कानरा

कल्लिनाथ मत के छः राग और छत्तीस रागिनियॉ :–

राग	प्रत्येक राग की छह रागिनियॉ
1. श्री	1. गौरी 2. कोलाहल 3. धवला 4. वरोराजी 5. मालकौंस 6. गांधार
2. पंचम	1. त्रिवेणी 2. हस्तंतरेतहा 3. अहीरी 4. कोकभ 5. वेरारी 6. आसाकी
3. भैरवी	1. भैरवी 2. गुजरी 3. बिलावली 4. बिहाग 5. कर्नाटी 6. कानड़ा
4. मेघ	1. बंगाली 2. मधुरा 3. कामोद 4. धनाश्री 5. देवतीर्थी 6. दिवाल
5. नटनारायण	1. त्रिबंकी 2. तिलंगी 3. पूर्वी 4. गांधारी 5. रामा 6 सिंधमल्लारी
6. बसंत	1. अंधाली 2.गुणकली 3. पटमंजरी 4. गौड़गिरि 5. धॉकी 6. देवसाग

हनुमन्मत के छह राग और तीस रागिनियॉं :–

राग	प्रत्येक राग की पांच रागिनियॉं
1. भैरव	1. बंगाली 2. सैंधवी 3. भैरवी 4. बरारी 5. मदमादी
2. मालकौंस	1. तोड़ी 2. गुणकरी 3. गौरी 4. खंबावती 5.ककुभ
3. हिंडोल	1. रामकली 2. देशारव 3. ललिता 4. बिलावली 5. पटमंजरी
4. दीपक	1. देसी 2. कामोदी 3. केदारी 4. कानड़ा 5. नाटिका
5. श्री	1. मालश्री 2. आसावरी 3. धनाश्री 4. बसंती 5. मारवा
6. मेघ	1. तनक 2. मल्लारी 3. गुजरी 4. भोपाली 5. देशकर

2.5 रागों का समय चक्र

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत पद्धति में रागों के गायन वादन का समय भी निश्चित किया गया है, जिसका उत्तर भारतीय संगीत के गायक एवं वादक कलाकार गम्भीरता से पालन करते हैं। रागों का समय दिन और रात्रि के प्रहर के रूप में बॉटा गया है। प्रातःकालीन संधिप्रकाश एवं सायंकालीन संधिप्रकाश के लिए भी भिन्न–भिन्न राग निश्चित किये गये हैं। रागों का चलन पूर्वांगवादी तथा उत्तरांगवादी भी रहता है अर्थात जिन रागों में राग का चलन सप्तक के पहले भाग में होता है उसे पूर्वांगवादी, जिसका चलन सप्तक के दूसरे भाग में होता है उसे उत्तरांगवादी कहते हैं। सप्तक के सात शुद्ध स्वरों में तार सप्तक का सां मिलाकर सा रे ग म प ध नि सां इस प्रकार स्वरों की संख्या आठ कर ली जाय और फिर इसके दो भाग कर दिये जाएँ तो सा रे ग म यह सप्तक का पूर्वांग और प ध नि सां यह सप्तक का उत्तरांग कहा जायेगा किन्तु कुछ पूर्वांगवादी तथा उत्तरांगवादी स्वरों को उपर्युक्त वर्गीकरण में लाने के लिए पूर्वांग का क्षेत्र सा रे ग म प और उत्तरांग का क्षेत्र म प ध नि सां इस प्रकार बढ़ाकर माना गया है। इस प्रकार सप्तक के दो भाग करने से सा म प ये तीनों स्वर सप्तक के पूर्वांग एवं उत्तरांग दोनों भागों मे आ जाते हैं और जब किसी राग में इन तीनों स्वरों में से कोई स्वर वादी होता है तो वह राग पूर्वांगवादी एवं उत्तरांगवादी दोनों हो सकते हैं। इस आधार पर भैरवी और कामोद राग इस श्रेणी में आ जाते हैं और कामोद राग में पंचम वादी होते हुए भी उसे पूर्वांगवादी राग कह सकते हैं।

कुछ प्रचलित रागों के समय विभाजन की सारिणी प्रस्तुत की जा रही है। राग समय चक्र हेतु दिन के चौबीस घंटों को दिन के चार प्रहर एवं रात्र के चार प्रहर में विभक्त किया गया है।

दिन के प्रहर समय के अनुसार :–

दिन का प्रथम प्रहर – 7 बजे से 10 बजे तक

दिन का दूसरा प्रहर एवं मध्यान्ह – 10 बजे से 1 बजे तक

दिन का तीसरा प्रहर – 1 बजे से 4 बजे तक

दिन का चौथा प्रहर सायं – 4 बजे से 7 बजे तक

रात्रि के प्रहर समय के अनुसार :–

रात्रि का प्रथम प्रहर – रात्रि 7 बजे से 10 बजे तक

रात्रि का द्वितीय प्रहर अथवा मध्यरात्रि – 10 बजे से 1 बजे तक

रात्रि का तीसरा प्रहर – 1 बजे से 4 बजे तक

रात्रि का चौथा एवं अन्तिम प्रहर – 4 बजे से 7 बजे तक

कुछ प्रचलित रागों के गाने–बजाने की समय सारिणी निम्न रूप में प्रस्तुत की जा रही है।

<u>दिन के प्रहर के कुछ रागों के नाम</u> :–

प्रथम प्रहर – रामकली, बिलावल के प्रकार, जौनपुरी – 7 बजे से 10 बजे तक

द्वितीय प्रहर – सारंग के प्रकार, देसी आदि – 10 बजे से 1 बजे तक

तीसरा प्रहर – मुलतानी, भीमपलासी, मधुवन्ती, पटदीप – 1 बजे से 4 बजे तक

चौथा प्रहर – पूर्वी, माखा, पूरियाधनाश्री, श्री – 4 बजे से 7 बजे तक

<u>रात्रि प्रहर के कुछ रागों के नाम</u> :–

रात्रि प्रथम प्रहर – भूपाली, यमन, शुद्धकल्याण, देस, रात्रि 7 बजे से 10 बजे तक

द्वितीय प्रहर – बिहाग, खमाज, जैजवन्ती, झिंझोंटी – 10 बजे से 1 बजे तक

तीसरा प्रहर – मालकौंस, दरबारी कानड़ा आभोगी कानड़ा – 1 बजे से 4 बजे तक

चौथा प्रहर – ललित, तोड़ी के प्रकार, भैरव के प्रकार – 4 बजे से 7 बजे तक

2.6 ग्राम

ग्राम शब्द का अर्थ समूह से है जिस प्रकार परिवार में लोग मिलजुल कर किसी कार्य को करते हैं तो उसी प्रकार वादी–सम्वादी स्वरों का वह समूह जिसमें श्रुतियॉ व्यवस्थित रूप से रहती हैं और जो मूर्च्छना, आदि का आश्रय हो उसे ग्राम कहते हैं। जब तक स्वरों में श्रुतियॉ व्यवस्थित रहती हैं तभी तक ग्राम रहता है जैसे स्वरों में 4, 3, 2, 4, 4, 3, 2 का क्रम रखा जायगा तो विद्वान इसे षड़ज ग्राम कहते हैं। यदि इसमें से किसी भी एक स्वर की श्रुतियों को बदल दिया जाएगा तो इससे ग्राम भी परिवर्तित हो जाएगा। मान लिया जाय यदि षड़ज ग्राम के स्वरों में पंचम की चार श्रुतियों के स्थान पर तीन कर दी जायं तो धैवत की चार श्रुतियॉ हो जायेंगी इस प्रकार इनका क्रम 4, 3, 2, 4, 4, 3, 2 के स्थान पर 4, 3, 2, 4, 3, 4, 2 कर दें तो श्रुतियों के क्रम में अन्तर हो जाने के कारण यह दूसरा ग्राम बन गया इसे षड़ज ग्राम न कहकर मध्यम ग्राम कहेंगे।

ग्राम कुल तीन होते हैं।

1. षड़ज ग्राम **2. मध्यम ग्राम** **3. गंधार ग्राम**

गंधार ग्राम के विषय में यह धारणा है कि यह विलुप्त हो गया है अर्थात स्वर्ग लोक को गया है। मध्यम ग्राम का प्रचार अब नहीं है और षड़ज ग्राम में श्रुतियों का क्रम 4, 3, 2, 4, 4, 3, 2 इस प्रकार होता है और ये स्वर हमारे आधुनिक काफी थाट जैसे होते हैं।

2.7 मूर्च्छना

शारंगदेव के समय तक मूर्च्छना का यथेष्ट प्रचार था उनके समय से मूर्च्छना का प्रयोग धीरे–धीरे कम होने लगा। इसका मुख्य कारण था कि शारंगदेव ने सभी मूर्च्छनाओं को षड़ज से ही प्रारम्भ किया। प्रत्येक मूर्च्छना में जो श्रुत्यन्तर था वहॉ श्रुत्यन्तर षड़ज से मानने से ही उस स्वर की मूर्च्छना मान ली। इस प्रकार शारंगदेव को अनेक विकृत स्वरों की जानकारी हुई। भरत काल में जिस समय मूर्च्छना पद्धति प्रचलित थी उस समय केवल दो विकृत स्वर थे 1. अंतर गंधार 2. काकली निषाद। ग्राम भी दो हैं – षड़ज ग्राम, मध्यम ग्राम, गंधार ग्राम का लोप बहुत पहले हो चुका था। केवल दो ग्रामों और दो विकृत स्वरों से वैचित्रय और विविधता में बाधा

पहुँचती थी इसलिए मूर्च्छना की कल्पना की गयी। मूर्च्छना के प्रयोग से विकृत स्वरों की कमी परोक्ष रूप से की है इसलिए जब शारंगदेव ने प्रत्येक मूर्च्छना को षड़ज से प्रारम्भ किया तब अनेक विकृत स्वरों की प्राप्ति हुई। ग्राम के किसी भी स्वर को आधार मानकर उसके स्वरों पर क्रमिक आरोह–अवरोह करने को मूर्छना कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि षड़ज ग्राम में इन श्रुतियों के क्रम में आरम्भ का स्वर षड़ज मानलें तो सा रे ग म प ध नि हमारी षड़ज ग्राम में सा स्वर की मूर्छना हुई। अब यदि षड़ज के स्थान पर आरम्भिक स्वर निषाद मान लें तो नि सा रे ग म प ध में श्रुतियों का क्रम 2, 4, 3, 2, 4, 3, हो जायेगा यही हमारी षड़ज ग्राम में निषाद की मूर्च्छना हुई। इसी आधार पर अन्य स्वरों की मूर्च्छनाएँ भी होगी क्योंकि स्वरों की संख्या सात होती है इसलिए षड़ज ग्राम में इन शुद्ध स्वरों की सात मूर्च्छनाएँ बनेंगी अब इसी प्रकार मध्यम ग्राम की मूर्च्छनाएं भी होंगी। इस आधार से दोनों ग्रामों से कुल चौदह मूर्च्छनाएँ होती हैं 'संगीत रत्नाकर' में कहा गया है 'ग्राम' उस स्वर समूह को कहते हैं जो कि मूर्च्छनादि का आश्रय हो। मूर्च्छना ग्राम पर आश्रित है।

''ग्रामः स्वरसमूहः स्थानमूर्च्छनादेः समाश्रयः''।

नाट्यशास्त्र में कहा गया है क्रम युक्त स्वर होने पर मूर्छना कहलाते हैं।

क्रमयुक्ताः स्वराः सप्त मूच्द्रनास्त्वभिसंज्ञिताः।

<u>मूर्च्छना के प्रकार</u> – मूर्च्छनाएँ चार मानी गई हैं। इसके विषय में विद्वानों के दो मत हैं। प्रथम मत में मतंग और दत्तिल हैं जिन्होंने पूर्णा, षाडवा, ओडविता एवं साधारण ये चार प्रकार माने हैं। द्वितीय मत में शारंगदेव हैं, इन्होंने चार प्रकार माने हैं। 1. शुद्धा 2. अंतर संहिता 3. काकली संहिता 4. उत्तरकाकली संहिता।

<u>षड़ज ग्राम की मूर्च्छनाएँ</u> – षड़ज ग्राम से 7 मूर्च्छनाएँ बनेंगी :–

1 उत्तरमन्द्रा	–	सा रे ग म प ध नि
2. रजनी	–	ऩि सा रे ग म प ध
3. उत्तरायता	–	ध़ ऩि सा रे ग म प
4. शुद्धषड़जा	–	प़ ध़ ऩि सा र ग म
5. मत्सरीकृता	–	म़ प़ ध़ ऩि सा रे ग
6. अश्वक्रांता	–	ग़ म़ प़ ध़ ऩि सा रे
7. अभिरूद्गता	–	ऱे ग़ म़ प़ ध़ ऩि सा

<u>मध्यम ग्राम की मूर्च्छनाएँ</u> – मध्यम ग्राम से 7 मूर्च्छनाएँ बनेंगी :–

1. सौवीरी	–	म प ध नि सां रें गं
2. हरिणाश्वा	–	ग म प ध नि सां रें
3. कलोपनता	–	रे ग म प ध नि सां
4. शुद्धमध्यमा	–	सा रे ग म प ध नि
5. मार्गी	–	ऩि सा रे ग म प ध
6. पौरवी	–	ध़ ऩि सा रे ग म प
7. हृष्यका	–	प़ ध़ ऩि सा रे ग म

	षड़ज ग्राम की मूर्च्छनाएँ	मध्यम ग्राम की मूर्च्छनाएँ
शुद्ध स्वरों से	7	7
सान्तरा	7	7
सकाकली	7	7
साधारवीकृता	7	7
कुल	28	28

आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत में थाट पद्धति प्रचलित हो जाने के कारण मच्छूर्छना एवं ग्राम का कोई महत्व नहीं रहा है।

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. राग की जाति पर टिप्पणी लिखिए।
2. शिवमत् के अनुसार राग बसंत की रागिनियों के नाम लिखिए।
3. संगीत में ग्राम विषय पर प्रकाश डालिए।
4. दिन के प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ प्रहर में प्रयोग किये जाने वाले दो–दो रागों के नाम लिखिए।

ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. राग यमन का गायन समय.................................... है।
2. दरबारी कानड़ा का गायन समय.................................... है।
3. षड्ज एवं मध्यम ग्राम से .... मूर्च्छनाएँ बनेंगी।
4. एक थाट की नौ जातियों से......................राग उत्पन्न होते है।
5. शांरगदेव के अनुसार तीन मूर्च्छना..है।
6. ....ग्राम माने गये है।
7. औडव–औडव जाति से ....राग तैयार हुए।
8. राग में कम से कम....................... स्वरों का होना आवश्यक समझा गया है।
9. ....ने सर्वप्रथम रागों को भिन्न–भिन्न प्रकार में गाने–बजाने हेतु मान्यता दी।
10. पारम्परिक मान्यता के अनुसार पार्वती द्वारा .... राग की उत्पत्ति हुई।

2.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप राग के विषय में जानकारी प्राप्त कर चुके होंगे। प्राचीन समय में प्रचलित राग–रागिनी वर्गीकरण एवं ग्राम मूर्छना के विषय में आपको जानकारी दी गयी है जिससे आप प्राचीन समय में प्रचलित राग से सम्बन्धित सभी जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। वर्तमान में राग–रागिनी एवं ग्राम व्यवस्था लगभग समाप्त हो चुकी है परन्तु फिर भी इसका ज्ञान भविष्य के संदर्भ में आवश्यक है। रागों के समय चक्र के नियम का वर्तमान में उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में गम्भीरता से पालन किया जा रहा है जिसके विषय में इस इकाई के माध्यम से आपको अवगत कराया गया है।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. रात्रि प्रथम प्रहर 2. रात्रि तृतीय प्रहर 3. सात–सात 4. 484

5. शुद्धा,अंतरसंहिता, काकली संहिता 6. तीन(षड़ज ग्राम,मध्यम ग्राम व गंधार ग्राम)

7. 225 8. पॉच 9. नारद 10. कौशिक

2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बसंत, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ0प्र0।
2. गर्ग, डॉ0 लक्ष्मीनारायण, निबन्ध संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ0प्र0।
3. बृहस्पति, आचार्य कैलाश चन्द्रदेव, संगीत चिन्तामणि।

2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. चौधरी, डा0 सुभाष रानी, *संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त,* कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
2. बंसल, डॉ0 परमानन्द,*संगीत सागरिका,* प्रासंगिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राग की विस्तृत व्याख्या कीजिए एवं रागों के समय चक्र पर प्रकाश डालिए।
2. छ राग से छत्तीस रागनियॉ किस प्रकार बनेगी? समझाइये।

इकाई 3 – पाठ्यक्रम के रागों का पूर्ण वर्णन, तुलना एवं स्वर समूह द्वारा राग पहचानना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 राग श्यामकल्याण – पूर्ण वर्णन
3.3.1 सम्प्रकृतिक राग
3.3.2 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
3.4 राग झिंझोटी – पूर्ण वर्णन
3.4.1 सम्प्रकृतिक राग
3.4.2 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
3.5 राग अहीर भैरव – पूर्ण वर्णन
3.5.1 सम्प्रकृतिक राग
3.5.2 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
3.6 राग जैजैवन्ती – पूर्ण वर्णन
3.6.1 सम्प्रकृतिक राग
3.6.2 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
3.7 राग पूरियाकल्याण – पूर्ण वर्णन
3.7.1 सम्प्रकृतिक राग
3.7.2 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
3.8 राग भैरव – पूर्ण वर्णन
3.8.1 सम्प्रकृतिक राग
3.8.2 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
3.9 राग केदार – पूर्ण वर्णन
3.9.1 सम्प्रकृतिक राग
3.9.2 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
3.10 राग मालकौंस – पूर्ण वर्णन
3.10.1 सम्प्रकृतिक राग
3.10.2 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
3.11 राग बैरागी – पूर्ण वर्णन
3.11.1 सम्प्रकृतिक राग
3.11.2 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
3.12 राग विहागड़ा – पूर्ण वर्णन
3.12.1 सम्प्रकृतिक राग
3.12.2 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
3.13 सारांश
3.14 शब्दावली
3.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.17 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0आई0–102) के द्वितीय खण्ड की दूसरी इकाई है। पहले की इकाईयों में आपने राग निर्माण एवं राग के सभी तत्वों का अध्ययन किया। समय के अनुरूप रागों का प्रयोग भी आप जान चुके हैं।

इस इकाई में आप रागों का पूर्ण परिचय एवं इनके सामप्रकृतिक रागों की चर्चा की गई है तथा आपको स्वर समूहों द्वारा पहचानने के विषय में भी बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप राग को पूर्ण रूप से समझेंगे और रागों की सफल कियात्मक प्रस्तुति कर सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप :–

1. दिये गये राग परिचय के द्वारा आप राग का सुन्दर प्रयोग कर सकेंगे।
2. राग के मुख्य स्वर समूह द्वारा आप राग पहचानेंगे एवं इन स्वर समूह के प्रयोग से राग स्थापित कर सकेंगे।
3. सम्प्रकृतिक रागों की चर्चा से आप राग को एक दूसरे से अलग कर राग का स्वरूप स्थापित कर सकेंगे।

3.3 राग श्यामकल्याण – पूर्ण वर्णन

'थाट कल्याण मानत गुनि जन प–स संवाद अनूप
ओडत सम्पूरन प्रथम रात्रि, श्याम कल्याण स्वरूप'

श्यामकल्याण राग कल्याण थाट से उत्पन्न राग है। आरोह में गंधार एवं धैवत स्वर वर्जित है। अवरोह में सातों स्वरों का प्रयोग होता है, इसलिए इसकी जाति औडव–सम्पूर्ण है। वादी स्वर पंचम तथा सम्वादी षड़ज है, इस राग में दोनों मध्यमों (तीव्र म एवं शुद्ध म) का प्रयोग होता है, शेष स्वर शुद्ध हैं। यह राग कल्याण का एक प्रकार है नाम से यह तथ्य स्पष्ट है। इस नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि इस राग में श्याम और कल्याण इन दो रागों का मिश्रण है किन्तु ऐसा नहीं है। इसमें कामोद एवं कल्याण का सुन्दर मिश्रण है। गंधार अवरोह में अल्प और वक्र हैं पूर्वांग में कामोद अंग करने के लिए गंधार अल्प करते हैं और ध प मं प म रे स्वर का प्रयोग करते हैं। गंधार का प्रयोग केवल एक ढंग से होता है जैसे– ध प मं प, ग म रे सा, प्रत्येक आलाप के अन्त में ग म रे, स्वर प्रयोग करते हैं।

आरोह में तीव्र मध्यम और अवरोह में शुद्ध मध्यम का प्रयोग होता है। इस राग में निषाद बहुत महत्वपूर्ण है यद्यपि अवरोह में धैवत वर्ज्य माना गया है फिर भी निषाद पर धैवत का कण दिया जाता है, यह कण कल्याण रागांग का सूचक है। कुछ विद्वानों ने इसे सम्पूर्ण जाति का राग माना है। मारिफुन्नगमात में इसे ऐसा ही माना गया है। वादी स्वर पंचम मानने से यह राग उत्तरांग प्रधान होना चाहिये किन्तु वास्वत में यह पूर्वांग प्रधान राग है इसलिए कुछ विद्वानों ने इसमें षड़ज वादी और पंचम सम्वादी माना है। कुछ विद्वानों ने इसमें ऋषभ वादी और पंचम सम्वादी माना है।

आरोह – सा रे मं प नि सां।

अवरोह – सां नि ध प मं प ध, मं प, ग म रे, नि़ सा।

पकड़ – रे मं प, ध प मं प, ग मं रे, नि़ सा।

मुख्य स्वर संगतियां – रे मं प, मं प, ग म रे सा

न्यास के स्वर – रे, प और नि

3.3.1 सम्प्रकृतिक राग – शुद्ध सारँग और कामोद।

शुद्धसारँग राग से बचने के लिए अवरोह में गंधार का प्रयोग किया जाता है और कामोद राग से बचने के लिए निषाद को बढ़ाते हैं एवं गंधार का लंघन करते हैं। कामोद में रे, प, स्वर समूह बहुत महत्वपूर्ण है किन्तु श्याम कल्याण राग में यह संगति नहीं लेते हैं मं प तथा म रे स्वर प्रयोग करते हैं।

3.32 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

(1) रे मं प मं प, ग म रे सा

(2) सा म रे, मं प, ग म रे, प, मं ग, म रे नि़ सा, .

(3) मं प ध, मं प, ग म रे, सा नि, प़ प़ सा रे सा।

(4) ममरेसा नि़सारेमंपधमंप, गमरे, नि़सा,

(5) सांनिधप, मंप, रे, म प, गमरे, नि़ रे सा।

(6) रे मं प, मं प सां, नि सां रें मं पं, गं मं रें सां।

उपयुक्त स्वर समूह राग वाचक स्वर समूह हैं जो कि राग में बार–बार प्रयुक्त होते हैं जिससे श्यामकल्याण राग का स्वरूप स्थापित रहता है जिससे आप लोग राग पहचानेंगे।

3.4 राग झिंझोटी – पूर्ण वर्णन

विवरण – राग झिंझोटी खमाज थाट से उत्पन्न होता है। आरोह–अवरोह में यह सम्पूर्ण जाति का है। इसमें गन्धार स्वर वादी और निषाद संवादी है। कुछ विद्वान धैवत को संवादी मानते हैं। इसे खमाज थाट का आश्रय राग कहा जाता है। इसका स्वरूप बहुत सीधा और सरल है। यह भी क्षुद्र रागों में से एक है। इसका विस्तार अधिकतर मंद्र और मध्य सप्तकों में विशेष रूप से होता है। इसके आरोह में ऋषभ स्वर लगाने से यह खमाज से भिन्न हो जाता है। इसके अतिरिक्त इसका सरल आरोह भी इसे अन्य रागों से पृथक बनाये रखता है। *ध़ सा, रे म ग* यह स्वर समुदाय रागवाचक है।

आरोह – सा रे ग, म प ध नि सां

अवरोह – सां नि ध, प म ग रे सा

पकड – ध़ सा रे म ग, रे ग सा, नि़ ध़ प़ ध़ सा

न्यास के स्वर – सा, ग, प

3.4.1 समप्रकृतिक राग – खमाज, देश

3.4.2 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

1. ध़ सा, रे म ग ग रे सा, नि़ ध प ध सा।
2. ध़ सा रे, नि नि ध सा।
3. रे म प, नि ध प, सा नि ध प।
4. सा रे म प, ध नि ध सा।
5. सां रें नि ध प, ध प म ग।

3.5 राग अहीर भैरव – पूर्ण वर्णन

सुप्रसिद्ध राग भैरव के मधुर प्रकारों में अहीर भैरव राग का भी अपना एक अनूठा स्थान है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, अहीर भैरव राग भैरव थाट जन्य है। यद्यपि इस राग के उत्तरांग में धैवत शुद्ध तथा निषाद कोमल है जो कि भैरव थाट का लक्षण नहीं है परन्तु भैरव का प्रकार और प्रातः कालीन राग होने के नाते इसे भी भैरव थाट जन्य ही मान लिया गया है। इस राग में ऋषभ एवं निषाद स्वर कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध प्रयुक्त होते हैं। इस राग का गायन समय प्रातःकाल है। वादी स्वर मध्यम तथा सम्वादी षड़ज है। आरोह तथा अवरोह में सातों स्वरों का प्रयोग होने के कारण इस राग की जाति सम्पूर्ण– सम्पूर्ण है। यह एक उत्तरांग प्रधान राग एवं भैरव अंग प्रधान है। इसका विस्तार मन्द्र मध्य, एवं तार तीनों सप्तकों में होता हे, प्रस्तुत राग में मध्यम पर विश्रान्ति बड़ी ही शोभनीय लगती है, कुछ विद्वान इसमें कभी–कभी तीव्र ऋषभ ग्रहण करते हैं। इस राग में ध़ नि़ रे की संगति रागांग वाचक है।

अहीर भैरव राग के पूर्वांग में भैरव राग तथा उत्तरांग में काफी राग का मिश्रण है, कुछ विद्वान इसमें शुद्ध गंधार के साथ–साथ कोमल निषाद तथा शुद्ध धैवत होने से खमाज राग का मिश्रित रूप मानते हैं परन्तु अहीर भैरव के पूर्वांग में भैरव अंग स्पष्ट है। इसके साथ ही शुद्ध गंधार भी भैरव का स्वर है। और इसका लगाव भी भैरव जैसा ही है। जैसे– ध़ नि रे ऽ सा, रे ग म रे रे सा। अन्यत्र खमाज राग का स्वर लगाने का ढ़ग इस प्रकार है। नि सा ग म प, ग म नि ध, म प ध म ग। इसके अलावा खमाज के अवरोह में पंचम स्वर का अल्पत्व है तथा पंचम का प्रयोग इसमें इस प्रकार किया जाता है सा नि ध, म प ध म ग, नि ध, म प ध म ग, ध प म ग किन्तु अहीर भैरव राग में ऐसा नहीं है। पंचम स्वर का प्रयोग इसमें स्पष्ट रूप से होता है जो कि काफी राग का द्योतक है। जैसे– ध निं रें सा, सा नि ध प, ध प म ग, रे ग म प, ध नि ध प, सां नि ध नि रे सा, नि ध प। अहीर भैरव का उत्तरांग इस प्रकार है। म प ध नि, ध नि सा, सा नि ध, ध नि रे सा। इसमें राग खमाज राग का अंग कहीं देखने को नहीं मिलता है। खमाज राग के मध्यम का लम्बा नही करके परन्तु काफी में मध्यम का महत्वपूर्ण स्थान है जैसा कि काफी राग के पकड़ से ज्ञात होता है जैसे– सासा, रेरे, गग, मम, प, काफी राग के अन्तरे के सभी लक्षण राग अहीर भैरव में विद्यमान हैं इन सभी लक्षणों को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि अहीर भैरव राग के उत्तरांग में काफी का ही मिश्रण है। ध़ नि़ रे म रे, प ग, ये स्वर संगतियां राग में बार–बार प्रयोग होते हैं जिससे अहीर भैरव राग स्पष्ट हो जाता है।

आरोह – सा रे ग म, प ध नि सां।
अवरोह – सां नि ध प, म ग रे, सा।
पकड़ – ग म रे, सा ध़ नि़ रे, सा।

मुख्य स्वर संगतियां – सा रे रे सा, रे ग म (म) रे, रे सा, ध़ नि़ रे सा।
म रे, सा, नि ध़ प़ ध़ नि़, ध़ रे, सा
सां नि ध प, ध नि, रें सां इत्यादि।

न्यास – बार–बार ऋषभ स्वर पर न्यास।
ग म रे, प ग म रे, प म ग रे, ध प म ग रे, रे सा।

3.5.1 समप्रकृतिक राग – भैरव, काफी तथा आनन्द भैरव है। परन्तु शुद्ध धैवत तथा कोमल निषाद के प्रयोग से भैरव तथा कोमल ऋषभ से काफी तथा कोमल निषाद के स्पष्ट प्रयोग से आनन्द भैरव की छाया दूर हो जाती है। आनन्द भैरव में दोनों निषाद (शुद्ध कोमल) का प्रयोग होता है। कोमल निषाद का प्रयोग बिलावल अंग से इस प्रकार होता है, सां ध नि प। इसलिए अपने स्वतंत्र नियम के कारण अहीर भैरव राग सभी रागों से अलग ज्ञात होता है।

3.5.2 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

(1) सा, रे ग म (म) रे, सा, ध़ नि़ रे, सा।
(2) सा, नि़ ध़ नि़ सा, ध़ नि़ रे, सा रे ग म, रे, रे सा।
(3) सा रे गऽम, प म प ग म रे, रे नि़ रे सा।
(4) ग म प ध (नि) ध प, ध प म, प म ग म रे, रे सा।
(5) म प ध नि सां, ध नि रें सां।
(6) ध नि सां रें, रें सां रें गं ऽ मं रें, रें सां।

उपरोक्त स्वर–समूह राग वाचक स्वर समूह है। जिसका प्रयोग राग में बार–बार किया जाता है और राग का स्वरूप इन स्वर समुदाय द्वारा पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है इन स्वरों के माध्यम से आप मारूबिहाग राग को पहचानेंगे।

3.6 राग जैजैवन्ती – पूर्ण वर्णन

विवरण – यह राग खमाज थाठ के जन्य रागों में से एक है। इसकी जाति सम्पूर्ण है। वादी स्वर ऋषभ व संवादी पंचम माना जाता है। इसका समय रात्रि के दूसरे प्रहर का अन्तिम भाग मानते हैं। इस राग में दोनों गान्धार व दोनों निषादों का प्रयोग होता है। आरोह में ग–नि तथा अवरोह में कोमल ग–नि लेते हैं। कोमल गान्धार केवल अवरोह में लेते हैं, किन्तु वह प्रायः दोनों ऋषभों में जकड़ा हुआ रहता है। प्रचार में इसक सोरठ–अंग का राग मानते हैं। यह मिश्र राग है। गौड़, बिलावल और सोरठ, इन तीन रागों का मिश्रण इसमें पाया जाता है। इस राग में मन्द्र पंचम और मध्य ऋषभ की संगति सुन्दर लगती है।

कोमल गान्धार के कारण कुछ संगीत–मर्मज्ञ इसे 'परमेल–प्रवेशक राग' ऐसी संज्ञा देते हैं। परमेल–प्रवेशक का अर्थ है– अगले ठाठ में ले जाने वाला राग। अर्थात् खमाज ठाठ के राग समाप्त करके काफी ठाठ के राग आरम्भ होने की सूचना यह राग देता है।

आरोह – सा, रे ग म प, नि सां।
अवरोह – सा नि ध प, ध म रे ग रे सा।
पकड़ – रे ग रे सा, नि़ सा ध़ नि़ रे,
न्यास के स्वर – रे, म, प,
3.6.1 समप्रकृतिक राग – खमाज, देश, झिझोंटी

3.6.2 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

1. सा धा नि रे, रे ग रे सा।
2. रे ग म प, ध ग म रे।
3. म प नि ध प, ध ग म रे।
4. रे ग रे सा, नि सा ध नि रे।
   म प नि सा, ध नि रे।

3.7 राग पूरियाकल्याण – पूर्ण वर्णन

पूरियाकल्याण राग की उत्पत्ति, कल्याण तथा पूरिया नामक इन दो रागों के समन्वय से हुई है। कुछ विद्वानों पूरियाकल्याण और पूर्वाकल्याण को एक ही राग मानते हैं किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है, दोनों राग एक दूसरे से अलग है। पूर्वाकल्याण राग में मारवा, पूरिया एवं कल्याण का मिश्रण है। कुछ लोग पूर्वाकल्याण में दोनों धैवत का प्रयोग करते हैं, जो उचित लगता है क्योंकि पूर्वा में पूर्वी मारवा और पूरिया का मिश्रण होने से कोमल धैवत का प्रयोग किया जाता है। पूर्ण कल्याण के कोमल धैवत वाले प्रकार में पूर्वी, मारवा, पूरिया तथा कल्याण का सम्मिलित रूप मानना चाहिए।

पूर्वाकल्याण में ऋषभ स्वर मारवा की तरह तथा पूरिया कल्याण में ऋषभ स्वर पूरिया की तरह प्रयुक्त होता है। इसलिए पूरियाकल्याण राग पूर्वाकल्याण से अलग राग है इसमें किसी प्रकार का राग भ्रम नहीं है।

पूरियाकल्याण राग की उत्पत्ति मारवा थाट से होती है। यह सांयकाल गाया जाने वाला संधिप्रकाश राग है। संधिप्रकाश राग होने के कारण ही यह परमेल प्रवेशक राग भी है। कोमल ऋषभ के साथ शुद्ध धैवत होने के कारण यह राग अपने बाद आने वाले रे ध कोमल वाले सांयकालीन संधिप्रकाश रागों के समय (चार से सात बजे सांयकाल के अन्तिम भाग में) इस राग को गाना चाहिए। प्रायः लोग इसे देर रात्रि तक भी गाते हैं, जो शास्त्र की दृष्टि से उचित नहीं माना जाता है। इस राग का वादी स्वर गंधार तथा सम्वादी निषाद है। कुछ विद्वान षड़ज वादी तथा पंचम सम्वादी मानते हैं किन्तु दूसरा मत उचित प्रतीत होता है क्योंकि पूरियाकल्याण के पूर्वांग में पूरिया का लक्षण होने के कारण नि़ रे ग व रे नि, स्वर का चलन राग में स्वाभाविक रूप से होने लगता है जिस कारण षड़ज का बार–बार लंघन होना शुरू हो जाता है। यहाँ पर एक बात ध्यान देने योग्य है कि संधिप्रकाश राग में (चाहे वह सुबह का हो या शाम का) षड़ज स्वर वादी नहीं होता है, यदि प्रातः कालीन संधिप्रकाश राग है तो म, प, ध इस स्वरों से वादी स्वर होगा। सुबह के संधिप्रकाश राग उतरांग वादी होते हैं उनमें कभी भी मध्यम के नीचे के स्वर वादी नहीं होंगे, तथा सांयकाल के संधिप्रकाश के सभी रागों में करीब–करीब नि रे ग का चलन है तथा रे नि की संगति होती है इस दशा में षड़ज स्वर वादी स्वर के योग्य उचित प्रतीत नहीं होता है।

आरोह – नि़ रे, ग, मं ध नि सां।

अवरोह – सां नि ध प, मं ग रे सा।।

पकड़ – नि़ रे ग, मं ध प, मं ग, रे ग रे मं ग, रे सा

इस राग की जाति षाड़व–सम्पूर्ण है क्योंकि इसके आरोह में पंचम स्वर वर्जित है तथा अवरोह सम्पूर्ण है।

मुख्य स्वर संगतियां – सा, नि़ ध़ नि़, रे ग रे सा।
नि़ रे म ग नि़ रे सा, नि़ ध़ नि़।
नि़ रे ग, मं ध प, मं प मं ग, रे ग रे मं ग विशेष स्वर संगति।

कल्याण अंग – मं ध नि नि ध प, सां नि ध नि ध प, मं ध नि ध, मं ध प इन स्वर समुदाय से कल्याण राग स्पष्ट होता है।

न्यास के स्वर – नि़ सा, ग, प।

<u>3.7.1 समप्रकृतिक राग</u> – पूरिया, कल्याण एवं पूरिया धनाश्री है।

<u>3.7.2 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना:–</u>

(1) नि़ रे सा, नि़ ध़ नि़, रे नि़ ध़ प़ मं ध़ नि़ रे सा।

(2) नि़ रे ग, रे सा, (सा) नि़ ध़ नि़ रे मं ग।

(3) रे ग मं प, मं ग, मं रे ग रे मं ग, मं ग रे सा।

(4) ग रे ग, रे ग रे सा, मं ग रे ग रे मं ग रे सा।

(5) नि़ ध़ नि़ रे ग, मं प, मं ग रे मं ग, रे ग रे सा।

(6) प मं ग रे सा, नि़ रे ग मं प, ग मं ध नि सां।

(7) मं ध नि सां, नि रे सां, नि रे गं रें सां।

(8) नि रें गं रें मं गं, मं गं रें सां, नि ध नि, सां।

उपयुक्त छोटे–छोटे स्वर समूह राग वाचक स्वर समूह हैं जिनका प्रयोग राग में बार–बार किया जाता है। इन स्वरों के माध्यम से राग के हर पहलू पर विशेष ध्यान आकर्षित होता है तथा तुरन्त ही मन मस्तिष्क पर राग छाने लगता है। इन स्वर समूह द्वारा पूरियकल्याण राग का स्वरूप स्थापित है, इससे आप लोग राग पहचानेंगे।

3.8 राग भैरव – पूर्ण वर्णन

'भैरव थाट रे–ध कोमल, धैवत ऋषभ सम्वाद
प्रात समय गुनि जन गावत, भैरव पूरण राग'

भैरव राग भैरव थाट का राग है, इस राग में ऋषभ एवं धैवत स्वर कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध प्रयुक्त होते हैं। इस राग के आरोह तथा अवरोह में सातों स्वरों का प्रयोग होता है, इसलिए इस राग की जाति सम्पूर्ण–सम्पूर्ण है। इस राग का वादी स्वर धैवत तथा सम्वादी ऋषभ है। यही दो स्वर इस राग में आन्दोलित होते हैं। इसका गायन समय प्रातः काल प्रथम प्रहर है इसलिए इसे प्रातः कालीन संन्धिप्रकाश राग कहते हैं। यह गम्भीर प्रकृति का राग है तथा यह राग कालिंगड़ा राग से मिलता–जुलता है। इसका गम्भीर स्वभाव तथा रे–ध पर आन्दोलन भैरव राग को कालिंगड़ा से अलग कर देता है। यह अपने थाट का आश्रय है जैसे– अहीर भैरव, आनन्द भैरव आदि। इस राग में कभी–कभी पंचम को छोडकर ग म ध़ नि सां की भाँति तार सां पर जाते है। इसके आरोह में ऋषभ को अल्प रखते हैं, राग कालिंगड़ा के रे–ध स्वर की तरह आन्दोलन नहीं करते हैं। कालिंगड़ा राग में गांधार, मध्यम एवं निषाद पर न्यास किया जाता है, जैसे– सा रे ग म, प म ग, म प ध प, ग म ग, ग म प प, म ग रे सा इस प्रकार स्वर समूह दर्शाये जाते हैं जबकि भैरव राग में सा रे रे सा, सा ग म रे, सा, ग म ध ध प, म ग म रे सा इस स्वर समूदाय को लेते हैं। यह गम्भीर प्रकृति का लोकप्रिय एवं मधुर राग है। इसमें विलम्बित ख्याल, मध्यलय ख्याल, तराना ध्रुपद आदि गाये जाते हैं। गम्भीर प्रकृति होने के कारण इसमें ठुमरी नहीं गायी जाती है।

आरोह – सा रे ग म, प ध नि सां।
अवरोह – सां नि ध प, म ग रे, सा।
पकड़ – ग म ध ध प, ग म रे रे सा।

मुख्य स्वर समुदाय – सा रे रे सा, ध़ नि़ सा।
ग म रे ऽ रे सा, ध़ नि़ सा रे ऽ सा।
ग म ध ऽ धऽप, म प ग म रे ऽ रे ऽ सा।
न्यास के स्वर – सा रे प और ध

3.8.1 सम्प्रकृतिक राग – कालिंगड़ा तथा रामकली

3.8.2 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

(1) सा रे रे सा, ध़ नि़ सा रे सा।
(2) ग म रेऽसा, ध़ ध़ नि़ सा रे सा।
(3) नि़ सा ग म प, ग म ध ध प।
(4) सा ध ध प, ग म प, ग (म) रे सा।
(5) म प ग म ध ध प, नि ध प, ग म रे ऽ सा।
(6) ग म ध नि सां, ध नि सां, गं मं रें रें सां।

उपयुक्त स्वर समूह राग वाचक स्वर—समूह है, जो कि राग में बार—बार प्रयोग किये जाते है। इन स्वर समूहों द्वारा भैरव राग का स्वरूप स्थापित रहता है, इन छोटे—छोटे स्वर समूहों द्वारा आप लोग राग को पहचानेंगे।

3.9 राग केदार – पूर्ण वर्णन

'मध्यम द्वै तीवर सबहि, आरोहत रिग हान ।
समसंवादी वादितें केदारा पहिचान' ।।(रागचन्द्रिकासार)

केदार राग कल्याण थाट से उत्पन्न माना जाता हैं। इस राग में दोनो मध्यमों (तीव्र म एवं शुद्ध म) का प्रयोग होता है। तीव्र मध्यम का प्रयोग आरोह में होता है तथा इस राग की एक विशेषता ऐसी है कि कभी—कभी अवरोह में दोनो मध्यम एक के बाद एक लिए जाते हैं। इस राग का वादी स्वर शुद्ध मध्यम तथा सम्वादी षड़ज है। इस राग का आरोह करते समय षड़ज से एकदम मध्यम पर जाना होता है जैसे— सा म म प, मं प ध प म, इस स्वर समूह से राग केदार का आरोह किया जाता है। अवरोह मे कोमल निषाद का अल्प प्रयोग धैवत की संगति से कभी—कभी करते हैं। उस समय कोमल निषाद का प्रयोग विवादी स्वर के रूप में प्रयुक्त होता है। राग हमीर के वर्णन में दोनो मध्यम लगने वाले रागों के विषय का जो साधारण नियम दिखाई देता है, वह इस राग पर भी लागू होता है। केदार राग का आरोह करते समय ऋषभ व गंधार स्वर वर्जित करते है तथा अवरोह में गंधार वक्र व दुर्बल रखा जाता है, इसलिए इस राग की जाति ओड़व—षाडव मानी जाती है। केदार राग में गंधार स्वर का प्रयोग कर रागांग अर्थात राग के अंग को संभालने में बड़ी सावधन बरतनी पड़ती है। वहाँ **'गमपगमरेसा'** ऐसा स्पष्ट प्रयोग होने से कामोद आदि राग दिखाई देने लगते हैं तथा **'मगरेसा'** ऐसे प्रयोग से बिलावल आदि रागों की छाया दिखाई देनी सम्भव है इसलिए केदार राग में गंधार गुप्त है, ऐसा गायकों का मानना है। यह स्वर शुद्ध मध्यम की चमक से हमेशा ढ़का हुआ रहता है। इस राग का गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। प्रकार में केदार के कई प्रकार प्रचलित हैं। जैसे— शुद्ध केदर, चाँदनी केदार, मलुहा केदार एवं जलधर केदार। केदार राग लोकप्रिय एवं मधुर राग है।

आरोह – सा म, म प, ध प, नि ध, सां।
अवरोह – सां, नि ध, प, मं प ध प, म, ग म रे सा ।
पकड़ – सा, म, म प, ध प म, प म, रे सा ।

'गमरेसा' स्वर—समूह राग कामोद, हमीर एवं केदार तीनों में ही प्रयुक्त होता है।

मुख्य स्वर समुदाय – सा म, म प, मं प ध प, म ।
सा रे सा म, सा म ग प, ध प म ।
सा म, ग प, मं ध प म ।
न्यास के स्वर – सा म, प

3.9.1 समप्रकृतिक राग – हमीर, कामोद

3.9.2 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :—
(1) सा रे सा, सा म ग प, म रे सा
(2) मं प ध प, म, प म रे सा रे सा ।
(3) सा म, ग प, मं ध, प म
(4) म प ध नि ध प म, प म रे सा ।
(5) सा नि ध प, मं प ध प, म ग, म रे सा ।

(6) प प सा रें सां, मं ग, प मं, ध प, म ।
(7) मं प ध प म, म ग, प मं, ध प, म।

3.10 राग मालकौंस – पूर्ण वर्णन

कोमल सब पंचम रिखब, दोऊ बरजित कीन्ह ।
स–म संवादिवादिते, मालकोंस को चीन्ह ।। (रागचन्द्रिकासार)

उपरोक्त लिखे दोहे में पंचम ऋखब को वर्जित एवं स–म के सम्वाद द्वारा मालकौंस राग का स्वरूप दिया गया है। मालकौंस राग भैरवी थाट का राग है, इसके आरोह तथा अवरोह में ऋषभ तथा पंचम स्वर वर्जित हैं। इसलिए इसकी जाति ओडव–ओडव है, इस राग का वादी स्वर मध्यम तथा सम्वादी षड़ज है। गायन समय रात्रि का तीसरा प्रहर है। इस राग में ग ध नि स्वर कोमल शेष स्वर शुद्ध लगते हैं यह गम्भीर प्रकृति का अत्यन्त लोक प्रिय एवं मधुर राग है। बहुत से गायक वादक इस राग से भली भॉति परिचित हैं। कुछ लोगों का कहना है कि यह आसावरी थाट का राग है परन्तु प्रचार में भैरवी थाट ही सर्वमान्य है, कभी–कभी ऋषभ का प्रयोग विवादी स्वर के नाते अनुचित नहीं होगा। इस राग में विलम्बित ख्याल, ध्रुपद धमार, तराना सभी गाये जाते हैं निषाद के अतिरिक्त इसके सभी स्वरों पर न्यास सम्भव है।

आरोह – नि सा ग म, ध नि सां।
अवरोह – सां नि ध म, ग म ग सा।।
पकड़ – म ग, म ध नि ध, म, ग सा ।

मुख्य स्वर समुदय – नि सा ध नि सा
सा नि ध, म ध नि सा ।
ध नि सा म, म ग सा ।
न्यास के स्वर – ग, म ध ।

3.10.1 समप्रकृतिक राग – चन्द्रकौंस
3.10.2 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

(1) नि सा ग सा, ध नि सा।
(2) नि सा नि ग, सा ग म।
(3) ग म ध म, ग म ग सा।
(4) नि सा ग म ध, म, ग म सा।
(5) ग म ध नि ध म, ध म ग म ग सा।
(6) गम धनि सां, सां नि ध नि सां, गं सा।
(7) नि सां गं मं गं, सां, ध नि सां नि सां।

3.11 राग बैरागी — पूर्ण वर्णन

प्रस्तुत राग भैरव का एक प्रकार एवं भैरव थाट का राग है। इसमें गंधार धैवत वर्जित, निषाद कोमल एवं अन्य स्वर शुद्ध हैं, वादी स्वर मध्यम तथा षड़ज सम्वादी है। इस राग का गायन समय प्रातः काल है। भैरव के विभिन्न प्रकार में मिश्रण भेद के कारण धैवत तथा ऋषभ जहॉ वादी—समवादी नहीं बन पाते हैं वहॉ मध्यम षड़ज को वादी—समवादी का स्थान दिया जाता है। इस राग में भी उत्तरांग में सारंग अंग के स्वर—समूह होने एवं धैवत वर्जित होने के कारण वादी—समवादी की व्यवस्था के लिए मध्यम षड़ज का ही स्मरण करना पड़ा है। इसमें षड़ज, ऋषभ, मध्यम तथा पंचम न्यास बहुत्व के स्वर तथा निषाद अनाभ्यास एवं सां प नि प स्वर संगति में लंघन अल्पत्व के रूप में प्रयोग होता है। भैरव का यह नवीन प्रकार अत्यन्त मधुर तथा प्रचार में आजकल अधिक गाया बजाया जाता है।

आरोह — सा रे, म, प, नि सा ।
अवरोह — सां नि प, म, रे, सा ।
पकड़ — नि प म रे रे म ।

मुख्य स्वर संगतियां — सा रे रे सा नि़ प़ नि़ सा, रे रे म, म रे, रे सा, म प, नि प म, प म रे रे म, म रे रे सा,
म प नि प, नि सां, सां रें रें सां, रें सां नि सां प नि सां नि प म, रे म प म, म रे रे सा।

उपरोक्त स्वर समूह से स्पष्ट है कि सा रे रे म रे, सा, गुनकली राग के पूर्वांग के इस स्वर समूह में मदमाद सारंग के प नि सां नि प, उत्तरांग के स्वर समूह को मिलाकर प्रस्तुत राग की रचना की गई है।

न्यास के स्वर — षड़ज, ऋषभ, मध्यम एवं पंचम न्यास बहुत्व के स्वर

3.11.1 समप्रकृतिक राग — मदमाद सारंग एवं गुणकली राग प्रभाव।

3.11.2 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :—

(1) सा रे रे सा, सा नि़ सा रे रे सा ।
(2) सा नि़ प़ नि़ सा, रे रे सा ।
(3) सा रे रे म, म रे रे सा, नि़ प नि़ सा ।
(4) म प म प नि प म, म निं प म रे ।
(5) नि प म (म) रे, नि़ सा रे म म प ।
(6) म प नि प नि सां, सां प नि प ।
(7) नि नि प प म म रे रे म, नि प म ।
(8) रे रे सा नि प म, नि नि प म, नि प म।
(9) म रे रे नि़, प म, रे रे सा।

राग के मुख्य स्वर राग वाचक स्वर हैं जिनका प्रयोग राग में घूम—घूमकर बार—बार किया जाता है। इन स्वर समूहों के माध्यम से राग पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है। जिससे बैरागी राग का स्वरूप स्थापित रहता है इन स्वर समूहों द्वारा आप राग को पहचानेंगे।

3.12 राग विहागड़ा – पूर्ण वर्णन

'निद्वया षाडवा पूर्णा, जाता मेल विलावलात
मासा विहागडा रोहे, रिवर्ज्या गीयते निशि'

(भू0 दे0 शर्मा)

राग विहागड़ा विहाग का एक प्रकार है यह प्रचार में बहुत तरह से गाया बजाया जाता है। कुछ पुराने गायक वादक जो राग विहाग में तीव्र मध्यम का प्रयोग नहीं करते, वे लोग विहाग में तीव्र मध्यम का प्रयोग को विहागड़ा की उत्पत्ति का कारण मानते हैं। राजा नवाबअली खाँ रचित पुस्तक '**मारिफुन्नगमात**' में बिहागड़ा के उपरोक्त प्रकार की चर्चा है। बिहागड़ा के दूसरे प्रकार में दोनों मध्यम युक्त बिहागड़ा में ही निषाद का प्रयोग खमाज अंग से किया जाता है। तीसरे प्रकार में तीव्र मध्यम रहित विहाग रहित विहाग में ही खमाज अंग से कोमल निषाद प्रयोग किया जाता है। इन सभी प्रकारों में शुद्ध मध्यम विहाग के प्रमाण से कुछ अधिक मुक्त होता है। प्रचार में बिहागड़ा का तीसरा प्रकार ही अधिक गाया–बजाया जाता है।

बिहागड़ा राग विहाग अंग का राग है और बिलावल थाट के अन्तर्गत आता है इसमें दोनों निषाद तथा अन्य स्वर शुद्ध लगते हैं। आरोह में ऋषभ वर्जित होने से तथा अवरोह में सातों स्वरों का प्रयोग होने कारण इस राग की जाति षाड़व–सम्पूर्ण है। धैवत स्वर आरोह में खमाज अंग के साथ लगता है अन्यथा आरोह में विहाग अंग के चलन में धैवत स्वर वर्जित रहता है। वादि स्वर गंधार तथा समवादी शुद्ध निषाद है। यह पूर्वांग प्रधान राग है। इस राग का गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। बिहागड़ा राग का स्वरूप बिहाग व खमाज के मिश्रण का परिणाम है। इसमें सभी स्वर बिहाग के हैं इसमें केवल ग म प ध नि ध प खमाज का यह स्वर समूह मिश्रित करके राग बिहागड़ा का सृजन किया गया है। इसके अतिरिक्त पूर्वांग में नि सा ग रे ग म। सा ग रे ग म स्वर–समूह विहाग बीच–बीच में दीर्घ कर दिया जाता है। अन्य रागों की भाँति बिहागड़ा में भी षड़ज का महत्वपूर्ण स्थान है। बिहागड़ा राग कुछ वर्षों पूर्व अप्रचलित रागों में गिना जाता था। आज यह राग प्रचार में आ गया है।

आरोह – सा ग, म, प, नि सां
अवरोह – सां नि ध प, म ग रे सा ।
पकड़ – नि ध प, ग म ग, प म ग, सा ।

मुख्य स्वर संगतियॉ – ग म प म, प ग ।
ग म प ध नि ध प ।
ध म प ग, रे सा ।
न्यास के स्वर – सा, ग, प, नि आदि ।

3.12.1 समप्रकृतिक राग – विहाग

3.12.2 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

(1) सा नि़ सा, ग सा (सा) नि।
(2) प़ नि़ सा ग रे सा ।
(3) नि़ सा ग म प म प ग रे सा ।
(4) ग म प ध नि ध प ।
(5) ग म प नि ध प, ध नि ध प ।
(6) सां नि ध प, ध नि ध प।
(7) ग म ध म, प ग रे सा ।

अभ्यास प्रश्न

क) एक शब्द में उत्तर दीजिए :–

1. श्यामकल्याण राग का थाट बताइये।
2. मारूबिहाग किस जाति का राग हैं
3. राग बागेश्री किस समय गाया जाता है।

ख) सही अथवा गलत बताइये :–

1. वैरागी राग उत्तर भारत का राग है।
2. बिहागड़ा राग में सभी स्वर शुद्ध होते हैं।
3. केदार राग का वादी स्वर पंचम है।

ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. केदार राग में दोनों...........................का प्रयोग होता है।
2. बैरागी राग का गायन समय........................ हैं।
3. श्याम कल्याण राग का गायन समय.............................है
4. मालकौंस राग में कोमल .... है।

3.13 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप पाठ्यक्रम के रागों का पूर्ण परिचय प्राप्त कर चुके हैं। परिचय के अन्त में दिये गये स्वर समूह द्वारा आप राग पहचानेंगे एवं समप्रकृतिक रागों के अध्ययन से आप राग को एक दूसरे से अलग कर पाएँगे। इस इकाई के पूर्ण अध्ययन के बाद आप राग के स्वरूप को क्रियात्मक रूप में प्रस्तुत कर पाएँगे। राग स्वरूप, राग के पकड़ स्वर, वादी–सम्वादी स्वर, स्वरों का अल्पत्व–बहुत्व प्रयोग, न्यास के स्वर आदि से स्थापित होता है, जिन सबके बारे में पाठ्यक्रम के प्रत्येक राग के सन्दर्भ में बताया गया है। इससे आप राग की सुन्दर प्रस्तुति कर सकेंगे।

3.14 शब्दावली

- **वादी स्वर** – राग के मुख्य स्वर जिसका प्रयोग राग में बार–बार किया जाता है।
- **सम्वादी स्वर** – इसका प्रयोग राग में वादी स्वर के साथ सम्वाद के रूप में किया जाता है
- **अनुवादी स्वर** – इसका प्रयोग राग में वादी सम्वादी के बाद प्रयोग किया जाता है।
- **विवादी स्वर** – इस स्वर का प्रयोग राग में बहुत खूबसूरती के साथ किया जाता है, वैसे विवादी स्वर का शाब्दिक अर्थ बिगाड़ पैदा करने वाला होता है, पर गुणजन इसका प्रयोग कहीं–कहीं खूबसूरती के लिए करते हैं।
- **अल्पत्व** – जिसका प्रयोग अल्प रूप में होता है
- **बहुत्व** – जिसका प्रयोग बहूतायत रूप से होता है।
- **लंघन** – एक स्वर से दूसरे स्वर को लांघना।
- **न्यास** – जिस स्वर पर रूका जाता है वह न्यास के स्वर होते हैं।

3.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) एक शब्द में उत्तर दीजिए :–

1. कल्याण 2. ओडव– सम्पूर्ण 3. रात्रि का तृतीय प्रहर

ख) सही अथवा गलत बताइये :–

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य

ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. दोनों मध्यम 2. प्रातःकाल 3. रात्रि का द्वितीय प्रहर 4. ग , ध नि।

3.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बसंत, *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय हाथरस।
2. भातखण्डे,पंडित विष्णुनारायण, *क्रमिक पुस्तक मलिका भाग–2, 3, 4*, संगीत कार्यालय हाथरस।
3. झा, पंडित रामाश्रय''रामरॅग'', *अभिनव संगीतांजलि – भाग – 1, 3, 4*।
4. पाठक, जगदीश नारायण, *संगीतशास्त्र प्रवीण*,श्री रत्नाकर पाठक, 27, महाजनी टोला इलाहाबाद
5. श्रीवास्तव, प्रो0 हरीश चन्द्र, *मधुर स्वर लिपि संग्रह भाग–2*, संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मलाका, इलाहाबाद।

3.17 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम के किन्हीं पांच रागों का पूर्ण परिचय दीजिए।

इकाई 1 – संगीतज्ञों(एन0 राजम, हाफिज अली खॉ, उ0 बिस्मिल्लाह खॉ, पं0 वी0जी0 जोग व अन्नपूर्णा देवी) का जीवन परिचय एवं भारतीय शास्त्रीय संगीत में योगदान

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 भारतीय संगीत एवं संगीतज्ञ
1.4 संगीतज्ञों की जीवन शैली एवं योगदान
   1.4.1 विदुषी एन0 राजम
   1.4.2 उस्ताद हाफिज अली खाँ
   1.4.3 उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ
   1.4.4 पंडित वी0जी0 जोग
   1.4.5 विदुषी अन्नपूर्णा देवी
1.5 सारांश
1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0आई0–102) के तृतीय खण्ड की पहली इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप राग निर्माण, वादी, सम्वादी, अनुवादी एवं विवादी स्वर के बारें में जान चुके होंगे। आप राग एवं रागिनी, रागों के समय चक्र, ग्राम, मूर्च्छना व पाठ्यक्रम के रागों के विषय में भी जान चुके होंगे।

भारतीय संगीत के लिए समर्पित विद्वान संगीतज्ञों ने जीवन तथा संगीत के प्रति उनके योगदान को जानते हुए इस इकाई में विस्तार से वर्णन प्रस्तुत किया गया है। भारतीय संगीत के क्षेत्र में उनकी गहन साधना तथा उनके विचारों को भी प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप विद्वान संगीतज्ञों के महत्वपूर्ण योगदान को समझा सकेंगे तथा उनकी संगीत साधना के प्रति लगन एवं परिश्रम को समझा सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बादः–

- बता सकेंगे कि विद्वान संगीतज्ञों का संगीत के क्षेत्र में क्या महत्व है।
- समझा सकेंगे संगीतज्ञों को अपनी साधना के क्षेत्र में आनन्द, यश, सम्मान एवं धन प्राप्त होता है तथा इसीलिए वह विशेष अभ्यास में निरन्तर लगे रहते हैं।
- संगीत के महत्व को संगीतज्ञों एवं शास्त्रकारों के माध्यम से जानते हुए विश्लेषण कर सकेंगे।
- संगीत कलाकार के अपनी कला सम्बन्धी तीन मुख्य उद्देश्य होते हैंः–
  1. अपनी कला द्वारा रोजी का साधन।
  2. कला सम्बन्धी अपने ज्ञान का विस्तार करना।
  3. कला में पूर्ण सिद्धि करके अपनी इच्छा पूर्ति करना।

1.3 भारतीय संगीत एवं संगीतज्ञ

संगीत का परम लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति है। इसके अतिरिक्त मनोरंजन एवं आनन्द प्राप्ति उसका द्वितीय पक्ष है। दोनों ही दृष्टिकोण में मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। संगीतज्ञ, संगीत प्रदर्शन द्वारा अपने मनोरंजन के साथ–साथ दूसरों का भी मनोरंजन करता है। जिस समय संगीतज्ञ द्वारा समाज को अधिकाधिक लाभ पहुँचने लगता है उस समय उसका व्यक्तित्व ऊपर उठ जाता है। संगीतज्ञ अपनी उपयोगिता बढ़ाने का प्रयत्न करता है तो उसका व्यक्तित्व निःसन्देह उच्च हो जाता है। संगीतज्ञ में आत्म प्रतिष्ठा तथा अपने मर्यादा की रक्षा की भावना निरन्तर जागृत रहती है। सच्चे कलाकार के सामने संसार की बड़ी–बड़ी विभूतियाँ नतमस्तक हो जाती है। संगीतज्ञ सदा मर्यादित तथा सभ्य संगीत प्रेमियों से घिरा रहता है। वह जहाँ भी जाता है उसको पूर्ण सम्मान प्राप्त होता है। प्राचीनकाल से ही संगीतज्ञों का समाज में आदर होता रहा है। उस समय वे संगीत प्रदर्शन के लिए मात्र सम्मान एवं स्वागत के अभिलाषी थे। कुछ संगीतज्ञ दृव्योपार्जन को महत्व देते थे। किन्तु उनकी प्रतिष्ठा समाज में कम थी। आधुनिक युग में व्यक्तित्व का मापदंड परिवर्तित हो गया है जो संगीतज्ञ निःशुल्क सेवा के रूप में संगीत प्रदर्शन करता है उसकी प्रतिष्ठा उचित रूप नहीं होती, उनका विशेष स्वागत भी नहीं होता किन्तु जो संगीतज्ञ पर्याप्त शुल्क लेते हैं एवं दिखावा करते हैं उनका विशेष रूप से स्वागत किया जाता है। अतः व्यक्तित्व निर्माण के लिए संगीतज्ञ को वातावरण एवं परिस्थितियों से परिचित होकर उसके अनुकूल आचरण करने का प्रयास करना चाहिए। कलाकार के व्यक्तित्व का प्रभाव उसके संगीत प्रदर्शन तथा श्रोताओं पर बहुत अधिक पड़ता है। व्यक्तित्वहीन कलाकार का संगीत प्रदर्शन प्रभावोत्पादक तथा आकर्षक नहीं होता है। संगीत एवं संगीतज्ञ का सम्बन्ध अत्यन्त प्रगाढ़ है दोनों का अस्तित्व एक–दूसरे के बगैर नहीं है। संगीत तो सृष्टि की उत्पत्ति से पहले भी व्याप्त था। आज तक उसके यथार्थ रूप को संगीतज्ञ ही समाज के सामने लाए हैं इसलिए ऐसे में संगीतज्ञों का दायित्व और अधिक बढ़ जाता है क्योंकि वह संगीत को जिस रूप में प्रस्तुत करेंगे उसका वही रूप श्रोताओं के मन में घर कर लेगा।

1.4 संगीतज्ञों की जीवन शैली एवं योगदान

संगीत जगत को जिन–जिन विभूतियों ने अपनी कला से अनुप्राणित किया, उन विद्वान संगीतज्ञों के नाम सदा के लिए अमर है। ऐसे ही कुछ संगीतज्ञों के विषय में आप जान सकेंगे। ये संगीतज्ञ वादन के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान बना चुके हैं। वादन संगीत की श्रेणी में विभिन्न वाद्यों को बजाने वाले संगीतज्ञ आते है। इसके अन्तर्गत आप सरोद, सितार, सुरबहार एवं बेला वादन शैली में विश्वविख्यात संगीतज्ञों के जीवन चरित्र एवं संगीत के क्षेत्र में उनके योगदान को जान सकेंगे।

1.4.1 <u>विदुषी एन0 राजम्</u> – डॉ0(श्रीमती) एन0 राजम् का जन्म सन् 1938 में संगीतज्ञों के परिवार में हुआ। श्रीमती डॉ0 एन0 राजम् एक आदर्श सुशिक्षित महिला संगीतज्ञ है जो वर्तमान समय में न केवल उत्तरी संगीत में दक्ष है, बल्कि कर्नाटक संगीत में भी उतनी ही कुशल हैं। मध्यम कद, सांवला वर्ण, गोल चेहरा, उच्च ललाट, मधुर स्वभाव और इसके साथ जब भी वायलिन के तारों पर अँगुलियाँ तो रसात्मक संगीत की वर्षा हो– ऐसे आकर्षक व्यक्तित्व वाली कलाकार है एन0 राजम्, जो किसी को भी अपनी ओर आकृष्ट करने में पूर्णतया समर्थ हैं। मूलतः यह दक्षिण भारत में रहने वाली हैं। इनके घर में सब कर्नाटक संगीत के प्रतिष्ठित कलाकार होने के बावजूद इन्होंने उत्तर भारतीय संगीत को अपना क्षेत्र बनाया। आपके पिता श्री ए0 नारायण अय्यर कर्नाटक संगीत के एक अच्छे वायलिन वादक थे। अतः बचपन से ही इस

वाद्य की ओर उनका झुकाव होना स्वाभाविक था। लगभग पाँच वर्ष की अवस्था में इनकी संगीत शिक्षा इनके पिता द्वारा प्रारम्भ की गई। इस समय कुछ वर्ष आपकी शिक्षा कर्नाटक संगीत की हुई। प्रशिक्षण के दूसरे चरण में उन्हें विख्यात कर्नाटक गायक एवं मद्रास के सेंट्रल कालेज ऑफ कर्नाटक म्यूज़िक के भूतपूर्व प्रिंसिपल संगीत–कलानिधि श्री सुब्रह्मण्यम अय्यर से सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस समय आप अपने गुरू के गायन के साथ संगत करने लगी थी। इसी दौरान श्रीमती राजम् ने मद्रास संगीत अकादमी द्वारा आयोजित संगीत प्रतिस्पर्धा में भाग लिया और प्रथम पुरस्कार के रूप में स्वर्ण पदक प्राप्त किया।

अभी तक आप कर्नाटक संगीत का ही अभ्यास कर रही थी, किन्तु बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से जब आपने बी0ए0 की प्राइवेट परीक्षा दी, तब उसमें हिन्दुस्तानी संगीत को भी एक विषय के रूप में लिया और आप प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई। वे लगभग इसी समय मद्रास में श्री सी0आर0 केलकर के सम्पर्क में आई और इन्हें उनसे हिन्दुस्तानी संगीत सीखने का अवसर प्राप्त हुआ। इन्हें हिन्दुस्तानी संगीत के विभिन्न संगीतज्ञों को सुनने का अवसर भी मिला। सन 1955 में राजम् जी पंडित ओंकारनाथ ठाकुर के सम्पर्क में आई और आपकी वादन प्रतिभा से प्रभावित होकर पंडित जी ने आपको शिष्या के रूप में स्वीकार किया। आप इन दिनों बम्बई में रहती थी। जब भी पंडित जी बम्बई आते, आप उनसे शिक्षा ग्रहण करती। विभिन्न कार्यक्रमों में आप पंडित ओंकारनाथ जी के गायन के साथ वायलिन पर संगत करती थी।

श्रीमती राजम् ने संगीत शिक्षा के साथ–साथ स्कूल और कालेज की शिक्षा को भी महत्व दिया। इसी उद्देश्य से आपने सर्वप्रथम बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से बी0ए0 पास किया। इसी विश्वविद्यालय से आपने संस्कृत में एम0ए0 किया। गन्धर्व महाविद्यालय से बी0म्यूज तथा प्रयाग संगीत समिति से एम0 म्यूज किया। 1949 में आप बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दुस्तानी संगीत की वायलिन के व्याख्यता के पद पर नियुक्त हुई। अब वे बनारस में ही रहने लगीं और पंडित ओंकारनाथ से बराबर शिक्षा लेती रही। आपने इसी वर्ष पी–एच0डी0 डिग्री की उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया, जिसका विषय था "हिन्दुस्तानी और कर्नाटक संगीत पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन"। इसके अलावा आपने अन्य पुस्तकें भी लिखी हैं।

<u>भारतीय संगीत में योगदान</u> :–

<u>कार्यक्रम</u> – श्रीमती राजम् भारत के लगभग सभी संगीत सम्मेलनों में अपना कार्यक्रम प्रस्तुत कर चुकी है। इन विभिन्न संगीत सम्मेलनों में आप अपना वायलिन कभी संगत के रूप में, कभी युगल रूप में तथा कभी सोलो वादन के रूप में प्रस्तुत करती हैं। आजकल आप मुख्य रूप से सोलो वादन ही करती हैं। आपने जुगलबन्दी कई वादकों के साथ की है। जैसे श्री टी0एन0 कृष्णन् के साथ। आपने कर्नाटक के युगल संगीत कार्यक्रम में भी भाग लिया है। बिसमिल्लाह खाँ के साथ भी कई बार आप जुगलबन्दी कर चुकी हैं। देश के भी सभी ख्याति प्राप्त तबलावादक उनके साथ संगत कर चुके हैं। रेडियो तथा दूरदर्शन के अखिल भारतीय संगीत–सम्मेलनों में भी आप अपना वादन प्रस्तुत करती रहती हैं।

सन् 1960 में श्रीमती राजम् ने रेडियो के नेशनल प्रोग्राम में भाग लिया और सन् 1965 में अपने भ्राता विख्यात वायलिन वादक श्री टी0एन0 कृष्णन् के साथ 'कर्नाटक युगल संगीत कार्यक्रम' में भाग लिया। उन्होंने पं0 ओंकारनाथ ठाकुर और श्रीमती एम0एस0 सुब्बलक्ष्मी के साथ भी अनेक बार संगति की।

<u>वादन शैली</u> – आपकी वादन शैली गायकी का अंग रही है। इसी अंग को आपने मुख्य रूप से अपनाया है। वैसे तो वायलिन पर अन्य संगीतकार भी गायकी अंग प्रस्तुत करते हैं लेकिन शुद्ध रूप में आप ही गायन शैली का सही अनुशीलन करती हैं। श्रीमती राजम् वायलिन पर विलम्बित और द्रुत ख्याल के माध्यम से गायकी अंग की अवतारणा करती है। उनका वायलिन सुनकर ऐसा लगता है कि जैसे कोई संगीतज्ञ स्वयं गा रहा है। श्रीमती राजम् विलम्बित बंदिश की लय गायन के समान रखकर उसे बखूबी प्रस्तुत करती हैं। आकर्षक एवं क्रमबद्ध आलाप के पश्चात गमक और छन्द युक्त तानें इनके वादन का मुख्य अंग है। तानों के वादन में एक बो के साथ घसीट की क्लिष्ट तानें तथा कट बो के तानों का प्रयोग इनके वादन को विशेष आकर्षण प्रदान करता है। मध्यलय बंदिश की योग्य प्रस्तुति के बाद यह द्रुत लय में झाला वादन करती हैं जो अत्यन्त

प्रभावित करता है। राग बागेश्री, दरबारी कान्हणा, मालकौंश, यमन और भैरवी कुछ ऐसे राग है जो इनके वायलिन से बजने पर भारतीय संगीत की महानता को व्यक्त करते हैं। उपशास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत यह ठुमरी आदि का भी वादन करती हैं। पं0 डी0वी0 पलुस्कर के भजनों को इनके वायलिन में सुनकर जो आत्म शान्ति मिलती है वह शब्दों में बताना कठिन है। उनके वादन पर ओंकारनाथ जी गाने का पूरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। उनके हाथों के सफाई और उनकी तैयारी प्रशंसनीय है। आलाप में हर स्वर का लगाव श्रोता पर अपनी अमिट छाप छोड़ देता है। श्रीमती राजम् ने वायलिन की क्षमताओं को जनता के समक्ष उद्घाटित किया और इस धारणा को मिथ्या सिद्ध कर दिया कि विदेशी वाद्य होने के कारण वायलिन हिन्दुस्तानी संगीत के लिए उपयोगी नहीं है। उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि यह वाद्य भारतीय संगीत के लिए सांरगी से भी अधिक अनुकूल है। आपके अनेक रिकार्ड तथा कैसेट निकल चुके हैं।

श्रीमती राजम् केवल भारत में नहीं, विदेशों में भी अपना वादन प्रस्तुत कर चुकी हैं। रूस, जर्मन, चेकोस्लोवाकिया, अमेरिका, कनाडा और फ्रांस के श्रोताओं को भी आप अपने वादन से प्रभावित कर चुकी हैं। 1984 में आपको राष्ट्रपति द्वारा पद्मश्री के राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में कार्यरत रहते हुए आप प्रोफेसर के पद से सेवानिवृत्त हुईं। इनके वायलिन वादन को सुनकर कह सकते है कि इन्होंने कर्नाटक संगीत की तकनीक को उत्तर भारतीय संगीत में प्रयोग करके उत्तर भारतीय वायलिन वादन की कला को समृद्ध बनाया है।

<u>शिष्य परम्परा</u> – इनकी प्रमुख शिष्याओं में सुपुत्री संगीता एवं भतीजी कला रामनाथ दोनों ही बड़ा मधुर वायलिन वादन कर रही हैं।

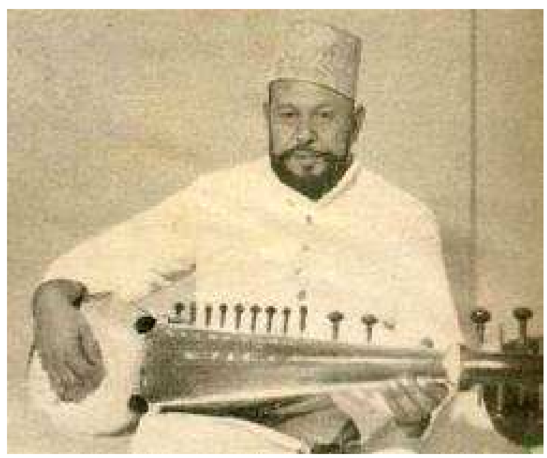

1.4.2 उस्ताद हाफिज़ अली खाँ – ऐसा माना जाता है कि सरोद वाद्य ढाई–तीन सौ वर्ष पूर्व ईरान–अफगानिस्तान के रास्ते भारत आया। यह भी कि यह रबाब का परिष्कृत रूप है। कुछ मानते हैं कि यह वाद्य भारत में बहुत पहले से था किंतु इसका नाम व स्वरूप कुछ भिन्न था। वैसे वाद्यों में समय–समय पर गुणी लोग परिवर्तन करते ही रहते हैं। यह कोई नई बात नहीं है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध व बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में दो प्रमुख सरोद वादक हुए हैं। एक 'मैहर' के उस्ताद अलाउद्दीन खाँ और दूसरे ग्वालियर के उस्ताद हाफिज अली खाँ। दोनो ने ही अपने वाद्य में आवश्यक परिवर्तन किए।

यह सौभाग्य की बात है कि इन दोनों महारथियों में, कुछ विवादी प्रकार के कलाकारों की भांति, कोई रंजिश या मनमुटाव नहीं था। ऐसा सम्भवतः इसलिए भी था कि दोनों की तालीम बीनकार घराने के रामपुर दरबार के उस्ताद वजीर खाँ द्वारा हुई। हाफिज अली साहब उस्ताद अलाउद्दीन के बारे में कहते थे– "दादा अलाउद्दीन खाँ पूरे भारत में एक बहुत सुलझे हुए एवं कुशल कलाकार हैं। उन्होंने बड़े परिश्रम से इतना इल्म हासिल किया कि उन्हें संगीत ज्ञान का सागर कहना चाहिए।" उस्ताद अलाउद्दीन खाँ भी हाफिज़ अली खाँ को एक 'जीनियस– मानते हुए कहते थे– "मैं तो संगीत का एक मजदूर हूँ, मेरे मोटे हाथ भी किसानों जैसे हैं किन्तु हाफिज़ अली खाँ साहिब एक कलाकार हैं। उनकी अगुलियाँ दुनिया भर का संगीत बजा सकती हैं। उनका संगीत सुनकर आँख में आँसू भर आते हैं। उन पर खुदा की महर हो।" इस प्रकार एक दूसरे की प्रशंसा करने वालों का युग तो सम्भवतः समाप्त ही हो गया है।

उस्ताद हाफिज़ अली खाँ का जन्म सन् 1888 में ग्वालियर में हुआ। नौ वर्ष की उम्र से ही आपने पिता उस्ताद नन्हे खाँ से संगीत शिक्षा लेना प्रारम्भ कर दिया। हाफिज़ अली खाँ ने

महान संगीतज्ञों के घर में जन्म लिया था। उनके पूर्वज गुलाम अली खाँ ग्वालियर के दरबारी संगीतज्ञ थे। उनके बाद उनके पुत्र नन्हें खाँ भी वहीं दरबारी संगीतज्ञ रहे तथा इन्होंने ध्रुपदियों व रबाबियों की परम्परा का निर्वाह किया। हाफिज अली खाँ, नन्हें खाँ के सुयोग्य सुपुत्र थे। उन्होंने पहले अपने वालिद साहब से और बाद में चाचा असगर अली खाँ व मुराद खाँ से तालीम हासिल की। वालिद साहब के निधन के बाद इनकी वालिदा ने भी इनको रियाज़ करवाने में मदद की वह हौसला बढ़ाया। पिता की मृत्यु के बाद हाफिज़ अली खाँ ने सरोद वादन का विशेष रूप से अभ्यास करके 'आफताबे–सरोद' की उपाधि प्राप्त की तथा वंश की कीर्ति को ओर भी उज्जवल किया।

<u>भारतीय संगीत में योगदान</u> :–

<u>वादन शैली</u> – उस्ताद हाफिज अली खाँ एक समर्पित कलाकार थे। उन्होंने वृन्दावन जाकर पं0 चुखालाल व पं0 गणेशीलाल से सैकड़ों ध्रुपद–धमार सीखे। ये दोनों स्वामी हरिदास की डागर वाणी के प्रसिद्ध कलाकार थे। सीखने की ऐसी ललक अनुकरणीय है। बाद में हाफिज़ अली खाँ संगीत की घराने की तालीम हासिल करने रामपुर पहुँचे और महान उस्ताद वजीर खाँ साहब के गंडाबंध शागिर्द बने। जिनसे आपसे होली, ध्रुपद व सुरसिंगार वादन की तालीम ली। खाँ साहब का कहना था कि राग में शास्त्रीय नियमों को तोड़ते हुए द्रुत तानों का इस्तेमाल करना संगीत के लिए बहुत हानिकारक है। बहुत गायक तान लेते समय मिलते–जुलते रागों में भेद नहीं रख पाते। राग की सच्चाई और शुद्धता मुझे बहुत प्यारी है। मैं सिर्फ उतना ही बजाता हूँ, जहाँ तक इन नियमों का पालन हो सकता हो। इनके सरोद वादन में सुरीलापन होना तो स्वाभाविक है क्योंकि संगीत इनके अंग–अंग में बसा था। वह बड़े चैन से अपना वादन प्रस्तुत करते रहे। आलाप के साथ गत में भी सूत का काम इनकी विशेषता थी। मसीतखानी गत वह नहीं बजाते थे इनके स्थान पर वह चौताल तथा धमार में विलम्बित गत प्रस्तुत करते थे। आप एक ही राग को बहुत समय तक बजाने के पक्ष में नहीं थे।

हाफिज अली खाँ का कंठ–स्वर भी बहुत मधुर था। उन पर ग्वालियर के विख्यात हारमोनियम वादक भैया गणपत राव का प्रभाव था। अतः हाफिज अली खाँ सरोद पर ध्रुपद जैसी गम्भीर गायकी व ठुमरी जैसी मधुर शैली समान कुशलता से बजाते थे। हाफिज अली खाँ का सरोद वादन पूरे देशवासियों को पंसद था, विशेष रूप से तंत्रकारों की नगरी कलकत्तावासी तो उन पर मुग्ध थे। बोराल के संगीतज्ञ परिवार ने तो उन्हें काफी समय तक अपने यहाँ मेहमान रखा।

एक बार उस्ताद हाफिज अली खाँ कलकत्ता में किसी जलसे में बजा रहे थे। शंभू सिंह पखावज पर संगत कर रहे थे। चार घंटे बजा लेने के बाद उस्ताद ने सरोद रख दिया। तभी एक तबला वादक दर्शन सिंह ने खाँ साहब से उनके तबला संगत में सरोद बजाने को कहा। खाँ साहब थक चुके थे किन्तु उसके चुनौती भरे आग्रह को टाल न सके। उन्होंने उसी द्रुत लय में बजाना आरम्भ किया जिस पर हाल ही छोड़ा था। कहते हैं कि दर्शन सिंह ने बहुत कस बल से संगत की किन्तु आधा घंटे बाद वह थक कर तबले पर लुढ़क गये और देह त्याग दी। इस हादसे का सदमा, खाँ साहब के मन पर बहुत दिनों तक रहा। वैसे खाँ साहब ने तत्कालीन सभी श्रेष्ठ तबला वादकों या पखावजियों के साथ बजाया किन्तु उनके प्रिय संगतकार पर्वत सिंह, या फिर आबिद हुसैन और रायचंद बोराल थे।

<u>शिष्य परम्परा</u> – मुबारक अली और रहमत अली खाँ उस्ताद हाफिज अली खाँ के सुपुत्र हुए और पैसठ वर्ष की आयु में अमजद अली खाँ का जन्म हुआ। उन्होंने तीनों पुत्रों का संगीत की तालीम दी किन्तु अमजद अली खाँ ने सरोद पर पिता की पूरी तस्वीर उतारने में सफलता प्राप्त की। वे आज देश के सर्वोच्च सरोद वादकों में से एक हैं। वे अपने पिता व घराने का सही प्रतिनिधित्व कर रहे हैं एवं योग्य शिष्य तैयार कर रहे हैं। उस्ताद हाफिज़ अली खाँ 28 दिसम्बर, 1972 को पंचतत्व में विलीन हो गये।

1.4.3 बिस्मिल्लाह खाँ – भारतीय संगीत में शहनाई को प्रतिष्ठा दिलाने का श्रेय बिसमिल्लाह खाँ को है। आपके पूर्वज भोजपुर दरबार में शहनाई वादक रहे। उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ का जन्म 21 मार्च, 1916 को बिहार राज्यान्तर्गत पूर्व रियासत डुमराव में हुआ। आपके पिता का नाम उस्ताद पैंगबर बख्श था जो अपने युग के श्रेष्ठतम संगीतज्ञ रहे। आपके पूर्वज भोजपुर दरबार में शहनाई वादक रहे थे। आपके तीनों मामा अली बख्श, विलायत हुसैन और सादिक अली अच्छी शहनाई बजाते थे। बस फिर क्या था, बिसमिल्लाह खाँ को संगीत का वातावरण और संगीत शिक्षा का अवसर घर पर ही मिल गया। बालक बिस्मिल्लाह खाँ ने शहनाई की प्रारम्भिक शिक्षा अली बख्श से प्रारम्भ की। अली बख्श शहनाई के अच्छे वादक होने के साथ–साथ एक अच्छे गायक भी थे। अली बख्श ने इन्हें गायन की शिक्षा भी देना प्रारम्भ किया। बिस्मिल्लाह खाँ के पिता की इच्छा थी कि आप स्कूल में पढ़ाई करें। पिता के जोर जबरदस्ती से आप छः वर्ष की आयु तक स्कूल जाते रहे लेकिन उसका कोई फल नहीं निकला। अन्त में पिता ने हारकर आपको पूरी स्वतंत्रता दे दी। बस फिर बालक बिस्मिल्लाह खाँ की खुशी का क्या कहना। आप संगीत साधना में जुट गये। आप दिन रात गायन तथा शहनाई का रियाज में लगे रहते थे। कुछ समय बाद आपने लखनऊ के मोहम्मद हुसैन से भी गायन की शिक्षा ली। आपने अपने मामा अली बख्श के साथ विभिन्न स्थानों में शहनाईवादन का कार्य प्रारम्भ किया। आपके चाचा भी बहुत अच्छे शहनाई वादक थे। चाचा वाराणसी के विश्वनाथ मन्दिर में नियमपूर्वक नित्य प्रति नौबत बजाते थे। एक बार मन्दिर में संगीत का जलसा हुआ, जिसमें खाँ साहब ने अपने चाचा के साथ गये। वहाँ चाचा के शहनाई बजा लेने के बाद उन्होंने शहनाई बजाई। उनके चाचा को 'स्वर्ण पदक' एवं स्वय खाँ साहब को 'रजत पदक' मिला। इस कार्यक्रम के बाद उनके चाचा ने उन पर और भी अधिक ध्यान देना प्रारम्भ किया। वे उन्हें अपने साथ आसपास के लगभग सभी राजदरबारों में ले गये। सन् 1930 में चौदह वर्ष की अवस्था में उन्होंने लखनऊ–नुमायश के संगीत जलसे में अपने चाचा के साथ भाग लिया। खाँ साहब ने वहाँ पर भी 'स्वर्ण पदक' जीता। इन सब उपलब्धियों के कारण आप 18 वर्ष की आयु में ही लोकजीवन में विख्यात हो गये।

शहनाई के जादूगर उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ, जिन्हें हम प्रवाद पुरूष कह सकते हैं, जिनके लिए उपाधियाँ, सम्मान गौण हैं। उस्ताद ने बार–बार कहा है, "मैं वह बजाता हूँ जो अल्लाह ने दिया है– वह दैवी सुर है, जिसने पाया वह निहाल है। सर्वशक्तिमान से प्राप्त 'सुर' की मेरे द्वारा प्रस्तुति से रसिक श्रोता प्रभावित होते हैं तो मेरा इस दृष्टि से प्रसन्न होना स्वाभाविक है कि मैं उन्हें 'कुछ' दे सका।" खाँ साहब ने एक अवसर पर कहा भी था कि, 'सुर' सच्चा स्वर पाने के लिए 'तपस्या' करनी होती है, धीर भाव से साधना की लम्बी यात्रा करनी होती है। फिर भी उस 'परम ज्योति' की एक किरण मिल जाए तो यह भाग्य की बात है।" 'संगीत कला विहार' के अनुसार खाँ साहब ने एक अन्य अवसर पर कहा कि कलाकार के रूप में बाहरी आकर्षणों से मैं विचलित नहीं होता।

खाँ साहब ने कहा, "मैं संगीतकार हूँ, राजनेता नहीं; हमसे सात सुरों के बारे में बात कीजिए, जिनसे हमारी दुनिया बनी है। सुर और ताल ही जिसकी जिन्दगी रही हो, ऐसे प्रतिष्ठित शहनाई नवाज ने कहा कि संगीतकार को संगीत के लिए जाना जाना चाहिए, उसे उसकी प्रतिभा और क्षमता के अनुरूप मिलना चाहिए। हालांकि प्रतिभा अल्लाह की मेहरबानी है, लेकिन कोशिश तो करनी ही चाहिए। वार्ता के अनुसार देहरादून में खाँ साहब ने उक्त बात कहते हुए बताया कि कठिन परिश्रम और अनुशासन से ही इस कला में महारत हासिल की जा सकती है। देश के सर्वोच्च अलंकरण मिल जाने पर भी खाँ साहब के चिन्तन में अध्यात्म का उच्चतम स्थान है और वे मानते थे कि संगीत एवं नृत्य यथार्थ में साधना है। अधिकाधिक लोगों को इनकी शिक्षा दी जानी चाहिए। उनके लिए शहनाई ईश्वर–अल्लाह से जुड़ने का साधन है। उनका कहना है कि शहनाई को भारतीय संगीत में शुभ माना जाता है।

खाँ साहब की मान्यता है कि संगीत में सुर (स्वर) ही शुद्ध हैं, उनके साथ धोखा नहीं हो सकता और वह किसी को धोखा नहीं दे सकता। यह दर्पण के समान है, जिसमें आपको विश्व दिखायी देता है और मैं भी वादन के समय अपना चेहरा देखता हूँ। वादन के आरम्भ में मेरा मन भटकता रहता है और मैं 'असर' की खोज में रहता हूँ, किन्तु जब वह 'सुर' मिल जाता है, तब हृदय–मस्तिष्क पर राज करने लगता है और मैं समझ नहीं पाता कि कौन बजा रहा है।"

खाँ साहब के पास लिखित कुछ भी नहीं– राग, स्वर, लय सभी उनकी चिंतनधारा में एकरूप हैं। गुरू रूप में खाँ साहब अपने गुरू से भिन्न नहीं। शिक्षा की नयी पद्धति उन्हें स्वीकार्य नहीं, जिन्हें संगीत से प्रेम है, आसक्ति है, उन्हें वे सिखाते है। 'शागिर्दों का एक पैसा भी हम खाते नहीं'– फीस लेना उनके उसूल के विरूद्ध है। खाँ साहब स्वयं गाकर शिक्षा देते हैं और कहते हैं कि गाये बिना स्वर पर टिकाव, न्यास, मींड आदि समझ में नहीं आते। खाँ साहब का कहना है कि मेरे गुरू मामा के अनुसार प्रत्येक घराने की प्रस्तुति पद्धति भिन्न है, यद्यपि स्वर ताल राग एक ही हैं, अतः सभी घराने को सुनो और उसमें से अपनी पंसद के फूल चुनो। यही खाँ साहब की मान्यता है।

14 वर्ष की आयु से आज तक खाँ साहब ने देश के विभिन्न अंचलों में शहनाई वादन प्रस्तुत कर जैसा इतिहास रचा है, वह अपने आप में अनूठा है और अभी कुछ माह पूर्व यह शरीर से वृद्ध होते हुए भी अंतर से स्वस्थ और सानन्द थे। 70 से अधिक वर्षों की दीर्घ संगीत सेवा के लिए खाँ साहब को जो सम्मान मिले हैं, उनमें से उल्लेखनीय सम्मानों की सूची निम्नवत् हैः–

1. संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार (1956)
2. पद्मश्री अलंकरण (1961)
3. अखिल भारतीय शहनाई चक्रवती (1963)
4. तानसेन सम्मान (1965)
5. पद्मभूषण अलंकरण (1968)
6. पद्मविभूषण अलंकरण (1980)
7. मध्य प्रदेश का तानसेन पुरस्कार (1980)
8. भारत रत्न (2001)
9. शान्ति निकेतन, मराठवाड़ा विश्वविद्यालय एवं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से 'डॉक्टरेट' की उपाधि।

खाँ साहब का मानना है कि पाठशालाओं से बच्चों को संगीत की अच्छी शिक्षा मिलती है, किन्तु वहाँ एकाग्रता के अवसर नहीं है। भारत सरकार व राज्य सरकारें भी इस क्षेत्र में प्रोत्साहन दे रही हैं। बच्चे अच्छे निकल सकते है, किन्तु ईमानदार गुरू का होना भी आवश्यक है। साथ ही असली श्रद्धा वाले शिष्य भी होना निहायत जरूरी है।

फिल्मों में खाँ साहब को योगदान विशेष उल्लेखनीय है। 'गूंज उठी शहनाई' फिल्म खाँ साहब के मधुर व शुद्ध वादन के कारण अमर हो गयी और यह 'मधुर गूंज' घर–घर में गूंजने लगी, जैसे कि खाँ साहब की माता जी ने अपने नाम 'मिठु बीबी' के अनुरूप कामना की और आर्शीवाद दिया था, खाँ साहब की शहनाई वादन में शहद की मिठास जैसी मृदुता, कोमलता और सरसता है। खाँ साहब ने कन्नड़ फिल्म 'सनदि अप्पन्ना' में शहनाई बजायी। इस फिल्म में एक शहनाई वादक का जीवन चित्रित है।

यह एक ऐतिहासिक व चिरस्मरणीय घटना ही मानी जाएगी कि स्वतंत्रता के गौरवमय अवसर पर यानी 15 अगस्त, 1947 को लाल किले पर खाँ साहब ने इस घटना का शुभांरभ किया। स्वतंत्रता के 50 वर्ष पूर्ण होने पर 15 अगस्त, 1997 को भी खाँ साहब ने लाल किले के 'दीवाने आम' में शहनाई वादन पेश किया। यह गौरव की बात है।

<u>भारतीय संगीत में योगदान</u> – प्राचीनकाल से ही शहनाई को एक मांगलिक वाद्य माना जाता रहा है। समाज के सभी शुभ पर्वों एवं धार्मिक कृत्यों पर इसका वादन आवश्यक समझा जाता रहा है, किन्तु समाज में इस वाद्य को प्रतिष्ठित स्थान नहीं प्राप्त था। शहनाई वादकों को लोग बहुत निम्न तथा हेय दृष्टि से देखते थे। इसके अतिरिक्त शहनाई को मुख्य रूप से लोक संगीत का वाद्य मानते आये थे। शास्त्रीय संगीत में इस वाद्य का कोई स्थान नहीं था। शहनाई वाद्य को

शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में उच्चतर शिखर पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय बिसमिल्लाह खाँ को ही है।

<u>**कार्यक्रम**</u> – उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ ने भारत के हर कोने में शहनाई बजाकर शास्त्रीय संगीत में इस वाद्य को प्रतिष्ठा दिलायी। उन्होंने अपने जीवन में शहनाईवादन के कार्यक्रमों का सिलसिला सन् 1930 में इलाहाबाद में आयोजित भारतीय संगीत समारोह में किया था। सन् 1937 ई0 में कलकत्ता के अखिल भारतीय संगीत समारोह में शहनाईवादन के पश्चात आपने देश में उच्च श्रेणी के कलाकारों में अपना स्थान बना लिया। इसके बाद आप आकाशवाणी तथा अन्य संस्थाओं से शहनाई वादन के लिए आमंत्रित किये जाने लगे। भारतवर्ष में वायलिनवादन वी0जी0 जोग, श्रीमती एन0 राजम्, उस्ताद विलायत खाँ के साथ आपने जुगलबन्दी का मनोहारी प्रदर्शन किया। धीरे–धीरे आपकी ख्याति विदेशों में भी पहुँची। विदेशों से भी आप शहनाई वादन के लिए आमन्त्रित किये जाने लगे। विदेश भ्रमण की श्रृंखला में उन्हें सर्वप्रथम सन् 1962 में अफगानिस्तान के 'राष्ट्रीय दिवस' के पर्व पर भाग लेने के लिए आमंत्रित किया गया। इसके बाद पाकिस्तान द्वारा भी इन्हें आमंत्रित किया गया। सन् 1964 में लन्दन में आयोजित कॉमनवेल्थ आर्टस फेस्टिवल में शहनाईवादन के लिए आपको आमंत्रित किया गया। यहीं पर विश्वविख्यात ओबोवादक मिस्टर ई0 रूथवेल के साथ आपने जुगलबन्दी की। आपकी शहनाई की मधुर ध्वनि ने वहाँ के लोगों का मन मोह लिया। सन् 1967 में मान्ट्रियल में आयोजित 'वर्ल्ड एक्सपोजिशन' में उन्होंने भारत सरकार का प्रतिनिधित्व किया। इस वर्ष अमेरिका में न्यूयार्क में स्थित फिलहार्मिक नामक विश्व के श्रेष्ठतम रंगमंच पर उन्होंने शहनाई वादन प्रस्तुत किया जो भारतवर्ष की उपलब्धि मानी गई। इसी समय अमेरिका के अन्य शहरों में भी आपके शहनाईवादन के कार्यक्रम आयोजित किये गये। इसके बाद आपने ईराक, ईरान और सऊदी अरब आदि देशों का दौरा किया। सन् 1969 में यूनेस्कों के इण्टनेशनल म्यूज़िक काउन्सिल के आमंत्रण पर आपने मध्यपूर्व एशिया के कई देशों एवं यूरोप के फ्रांस, हालैण्ड, आस्ट्रिया, संघीय जर्मन गणराज्य, स्विट्जरलैण्ड, इटली आदि अनेक देशों का भ्रमण किया। सन् 1970 में आप जापान के ओसाका शहर में आयोजित 'एक्सयों 70' में शहनाईवादन के लिए आमंत्रित किये गये। इस प्रकार आपने विदेशों में भारतीय वाद्य शहनाई को प्रतिष्ठित किया।

<u>**वादन शैली**</u> – बिस्मिल्लाह खाँ साहब ने शहनाई के साथ–साथ आपने गायन की शिक्षा भी विधिवत ली है। इसलिए गायन का प्रभाव उनकी शहनाई पर पूरा दिखाई पड़ता है। स्वर बहलाव, सपाट तान, दमदार गमक तथा सुन्दर मींड आपके वादन की विशेषताएं हैं। लय तथा स्वर दोनों का समन्वय आपके वादन में दृष्टिगोचर होता है। आप अपने शहनाई वादन की संगति के लिए तबले के मुकाबले में खुर्दक को अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि तबले की आवाज अधिक देर तक गूँजने के कारण शहनाई के स्वरों में एक रस नहीं हो पाती जबकि खुर्दक की आवाज कम गुंजायमान होने के कारण उसमें मिल जाती है। आप विभिन्न प्रान्तों की लोकधुनें बजाने में भी कुशल हैं।

<u>**शिष्य परम्परा**</u> – देश–विदेश में अपने शहनाईवादन को गुंजायमान करने के साथ–साथ अपने कुछ शिष्यों को भी तैयार किया है। उनके नाम इस प्रकार हैं–

1. **जगदीश प्रसाद कमर देहलवी**
2. **एल0 लप्पा**
3. **विष्णु प्रसन्न**
4. **नैयर हुसैन**
5. **अति अब्बास**
6. **मकबूल खाँ**

उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ को जो कीर्ति एवं सम्मान प्राप्त है, वह अभी तक किसी अन्य शहनाई वादक को प्राप्त नहीं हो सका। आप देश–देश में अपना शहनाई वादन प्रस्तुत करते रहे। साथ ही साथ कई संस्थाओं ने आपको विभिन्न उपाधियों से अलंकृत भी किया।

1.4.4 पंडित वी0जी0 जोग – बेलावादक वी0जी0 जोग का जन्म सन् 1922 में बम्बई के सतारा जिले के 'वई' नामक स्थान में हुआ। इनका पूरा नाम विष्णु गोविन्द जोग है। इनके पिता का नाम गोविन्द गोपाल जोग था जिनकी मृत्यु तब हुई, जब वी0जी0 जोग केवल पाँच वर्ष के ही थे। आपने संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा श्री शंकर राव से प्राप्त की। आप अपने कठिन परिश्रम और लगन से आगे बढ़ते गये। लेकिन अपनी संगीत शिक्षा से वे सन्तुष्ट नहीं थे। वे और भी अच्छा संगीत सीखना चाहते थे। आपने श्री गनपत बुवा पुरोहित से भाष्कर बुवा के घराने की गायन शैली प्राप्त कर ली। अब तक आपने गायन और वादन दोनों की ही शिक्षा ले रखी थी। कर्नाटक पद्धति के आचार्य श्री कृष्णम भट्ट के शिष्य विज्ञानेश्वर शास्त्री से भी आपने वायलिन की शिक्षा ली। 1936 में आप श्री कृष्ण नारायण रातंजनकर के सम्पर्क में आये और उन्होंने इन्हें मैरिस म्यूज़िक कॉलेज, लखनऊ में कार्य करने के लिए आमंत्रित किया, जिसे आपने सहर्ष स्वीकार किया। काफी समय तक आपने इस कॉलेज की सेवा की। तदुपरान्त आकाशवाणी, दिल्ली के म्यूज़िक प्रोड्यूसर और फिर डिप्टी चीफ म्यूज़िक प्रोड्यूसर के रूप में काम करते रहे। सन् 1949 में हीराबाई बड़ौतकर के साथ आपने दक्षिणी अफ्रीका का भ्रमण किया और सन् 1951 में समस्त दक्षिण भारत का दौरा कर आपने अपूर्व ख्याति प्राप्त की। श्री जोग में उच्चकोटि के संगीतज्ञ के सभी गुण विद्यमान हैं। वे एक मिलनसार और प्रसन्नचित्त व्यक्ति हैं। कर्नाटक संगीत का आकर्षक भाग लेकर आप भारतीय संगीत में मिलाने के लिए प्रयत्नशील हैं और वर्तमान में आप संगीत रिसर्च अकादमी, कलकत्ता से सम्बद्ध हैं। इनके प्रमुख शिष्यों में शिशिर कणाधर चौधरी (बेला), जरीन जारूवाला (सरोद), रमेश तागड़े (बेला) विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

भारतीय संगीत में योगदान – वी0जी0 जोग ने भारतवर्ष के कई स्थानों में अपना वादन प्रस्तुत किया। इलाहाबाद, लखनऊ, वाराणसी, कलकत्ता, बम्बई आदि स्थानों पर आपके वायलिन के प्रदर्शन ने धूम मचा दी। सन् 1936 में श्री रातनजनकर जी के एक संगीत सम्मेलन में श्री जोग को निमंत्रित किया गया। इनके वादन से सभी श्रोता अत्यन्त प्रभावित हुए। अपने जीवन के साठ वर्षों में वी0जी0 जोग ने देश–विदेश की अनेक यात्राएँ कीं तथा भारतीय संगीत का विस्तार किया। वर्तमान में आप कुछ दिन 'अली अकबर कालेज ऑफ म्यूज़िक' वर्कले(यू0एस0ए0) में अतिथि प्राध्यापक के रूप में अपनी सेवाएँ देने के उपरान्त अब 'संगीत रिसर्च अकादमी' कलकत्ता से सम्बद्ध है। वी0जी0 जोग की एक विशेषता यह भी रही है कि उन्होंने फय्याज खाँ, ओंकारनाथ ठाकुर, मुश्ताक हुसैन, एस0एन0 रातनजनकर, विनायक राव पटवर्धन, हीराबाई बड़ौतकर आदि गायक–गायिकाओं के साथ वायलिन की संगत की थी। सन् 1949 में हीराबाई बड़ौतकर के साथ आपने दक्षिण अफ्रीका का भ्रमण किया।

वादन शैली – प्रो0 जोग की वादन शैली गायकी पर आधारित है। आप वायलिन में विलम्बित और द्रुत ख्याल प्रस्तुत करते हैं। स्वर का लगाव आपकी गायकी का प्रमुख अंग हैं। पं0 वी0जी0 जोग अपना वायलिन अधिकतर प़ सा प सां से मिलाकर बजाते है। मींड तथा गमक का काम उनके वादन में कम होता है। पं0 जोग ने आलाप में गम्भीरता के स्थान पर राग के स्वरूप को आकर्षक एवं मधुर बनाने पर ध्यान केन्द्रित किया है, जिससे उनके वादन में सांगीतिक कल्पना का विकसित रूप सुनने को मिलता है। कभी–कभी बंदिश गायकी के ढंग की बजाते हुए काम तंत्र अंग का करते हैं। स्वतंत्र बेला वादन में आलाप के बाद जोड़ के प्रस्तुतिकरण में तार सप्तक के सां स्वर मिले तार का प्रयोग सितार–सरोद के समान चिकारी के रूप में भी होता रहता है। इनके वादन में तिहाईयों का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। विशेषकर छोटी–छोटी तिहाईयों को बड़ी सुन्दरता से प्रयुक्त करते हुए आप सम पर मिलते हैं। वायलिन वाद्य पर सारंगी के समान

ही ख्याल अंग की बारीकियों को निकाला जाता है। वादन के अन्त में वे झाला अवश्य बजाते हैं। आपका व्यक्तित्व इतना आकर्षक है कि जिस समय आप शेरवानी पहनकर रंगमंच पर आते हैं तो श्रोताओं का मन खिल उठता है। वादन करते समय आपका हावभाव श्रोताओं को आकर्षित करता रहता है।

वादन के अन्त में ठुमरी बजाने के लिए आप प्रसिद्ध हैं। सम्पूर्ण भारतवर्ष में वायलिन को वाद्य रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय निःसन्देह जोग साहब को ही जाता है। सन् 1980 में पं0 जोग जी को भारतीय वाद्य संगीत में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करने के लिए संगीत अकादमी का पुरस्कार प्रदान किया गया।

1.4.5 विदुषी अन्नपूर्णा देवी – अन्नपूर्णा देवी का जन्म सन् 1927 में पूर्णिमा के दिन मैहर में हुआ। अन्नपूर्णा देवी, उस्ताद अलाउद्दीन खाँ की सुपुत्री हैं। इनका अन्नपूर्णा नाम मैहर के महाराजा ने रखा था। श्रीमती अन्नपूर्णा देवी का स्वरूप किसी भी कलासेवी को नतमस्तक करने में सक्षम है। माँ दुर्गा की भव्य मूर्ति के सानिध्य में विराजमान श्रीमती अन्नपूर्णा देवी माँ शारदा–स्वरूपा कहीं जा सकती है।

उस्ताद अलाउद्दीन की संगीत साधना से सभी परिचित है। उनके घर में संगीत का सम्पूर्ण वातावरण था। खाँ साहब कई वाद्यों को कुशलता से बजा लेते थे। इन्होंने संगीत शिक्षा कई उस्तादों से बड़ी कठिनाई के साथ सीखी। अतः घर में संगीत का सम्पूर्ण वातावरण अन्नपूर्णा जी को मिला। बचपन से ही अन्नपूर्णा ने सितार सीखना प्रारम्भ किया। खाँ साहब की तालीम पद्धति बड़ी कठिन थी। उनके बताये हुए मार्ग पर ही अन्नपूर्णा का संगीत आगे बढ़ता गया। लगभग 1940 तक इन्होंने सितार सीखा लेकिन उसके बाद अन्नपूर्णा ने सुरबहार सीखना प्रारम्भ किया। सुरबहार सीखने का कारण यह रहा कि सितार पर स्वर के काम में गम्भीरता नहीं आ पाती थी। इसलिए इन्होंने सुरबहार सीखना प्रारम्भ किया।

बाबा ने अपनी इस पुत्री को प्रेम से तालीम दी। बाबा ने अन्नपूर्णा से कहा था कि, "संगीत भगवान तथा गुरू को अर्पित करने की चीज है। यह उसी को दिया जाता है, जो इसे सम्भाल कर रख सके। तुममें धैर्य है, अतः मैं तुम्हें ऐसा संगीत दूंगा, जिससे आन्तरिक शान्ति मिले तथा ईश्वर का सानिध्य प्राप्त हो। यह वाह्य प्रदर्शन की चीज नहीं है। ध्रुवपद अंग का आलाप सुरबहार पर ही निर्भर है और इसी से तुम्हें संगीत के विद्वानों तथा प्रेमियों से आदर मिलेगा।"

बाबा का संगीत शिक्षण बड़ा कठोर था। उसके बारे में अन्नपूर्णा का कहना है कि, "बाबा ने वर्षों तक कई साजों की शिक्षा पाई थी और अनेक कष्ट उठाए थे। इस निष्ठा के बल पर ही वे तानसेन वंशज, दिग्गज बीन–वादक उस्ताद वजीर खाँ से परम्परागत शिक्षा प्राप्त कर सके। इसी का निर्वाह करने के लिए बाबा ने अपने शिष्यों को प्रेरित किया।" श्रीमती अन्नपूर्णा ने बताया कि हमें वस्तुतः दिन भर अभ्यास करना पड़ता था, बाबा की कड़ी देखरेख में। यह ध्रुवपद अंग का संगीत है। इसमें किसी प्रकार की मिलावट नहीं है। यह भक्ति का संगीत है। यह सार्वजनिक चीज नहीं है। यह कार्य अत्यन्त मुश्किल है। यहाँ मुरकी नहीं है। इसमें स्वरों की सच्चाई के साथ भाव की सृष्टि व राग–रूप की शुद्धता का प्रदर्शन होता है। इसके लिए कठोर साधना की आवश्यकता है। राग सिद्धि एक प्रकार की मंत्रसिद्धि है और गुरू के सामने ही इसकी उपलब्धि सम्भव है। अपने घर पर ही अल्लाउद्दीन खाँ के निर्देशन में अन्नपूर्णा सुरबहार, इनके भाई अली अकबर सरोद तथा रविशंकर सितार सीख रहे थे। अलाउद्दीन खाँ नृत्यकार उदयशंकर के साथ नृत्यदल लेकर विदेश भ्रमण के लिए भी जाया करते थे। उस दल में रविशंकर भी जाया करते

थे। जब विदेश भ्रमण से उस्ताद लौटे तो श्री उदयशंकर ने अपने छोटे भाई रविशंकर से अन्नपूर्णा के साथ शादी का प्रस्ताव रखा। परिजनों के कट्टर विरोध एवं उलाहनों के बावजूद भी यह शादी सन् 1941 में सम्पन्न हो गई। तत्पश्चात् पिता की आज्ञा लेकर अन्नपूर्णा अपने पति सहित 'इष्टा' संस्था के साथ भारत भ्रमण के लिए निकल पड़ी। इष्टा संस्था की ओर से पं0 जवाहर लाल नेहरू की 'डिस्कवरी आफ इंडिया' मंच पर अभिनीत की जा रही थी। इसमें पार्श्व से अन्नपूर्णा शंकर वादन किया करती थी। इसके बाद 1942 में अन्नपूर्णा देवी ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम शुभेन्दु शंकर रखा गया।

मैहर घराने के प्रवर्तक आचार्य अलाउद्दीन खाँ ने कहा था, "अन्नपूर्णा, अली अकबर और रविशंकर से किसी प्रकार कम नहीं। ध्रुपद अंग की मेरी जो शिक्षा है, वह सब मैंने उसे दी है। मेरी विद्या अन्नपूर्णा के पास है। वह जब सुरबहार बजाती है, मानों साक्षात् देवी सरस्वती विराजमान है।" प्रचार से दूर निरभिमानी श्रीमती अन्नपूर्णा देवी की सात्विक साधना परम शक्तिमान के उद्देश्य से है। जनवरी, 1968 में नादब्रह्म की उपासिका श्रीमती अन्नपूर्णा देवी को विश्व भारती की ओर से 'देशिकोत्तम' (डी0लिट्0) अलंकरण से विभूषित किया गया। संगीत के क्षेत्र में उनके विशिष्ट योगदान के लिए वास्तव में शारदा–स्वरूपा अन्नपूर्णा देवी को अलंकरण प्रदान कर विश्व भारती गौरवान्वित हुई है। श्रीमती अन्नपूर्णा देवी को इसके पूर्व 1977 में 'पद्मभूषण' अलंकरण, 1988 में सुर सिंगार संसद की ओर से 'शारंगदेव फैलोशिप' और 1991 में केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया।

श्रीमती अन्नपूर्णा देवी ने अपने पिता आचार्य अलाउद्दीन खाँ से गायन, सितार वादन और सुरबहार वादिका के रूप में अपना जीवन समर्पित कर दिया, गुरू के रूप में वहाँ किसी प्रकार का समझौता नहीं।

पुरूष और महिला के लिए विशेष पृथक नियम नहीं, फिर भी पुरूष को पूरे दिन नियमपूर्वक अभ्यास करना चाहिए। वास्तव में संगीत सीखने के लिए पूर्ण समर्पण की आवश्यकता होती है। उनकी शिक्षा से उनके शिष्यों और शिष्याओं ने यही अनुभव किया है कि इसके लिए आसन जमाना आना चाहिये। इस हेतु त्याग करना होगा, तभी इसके माध्यम से ईश्वर के दर्शन होंगे, स्वर मूर्त होगा।

श्रीमती अन्नपूर्णा देवी ने बताया कि, "हमें वस्तुतः दिन–भर अभ्यास करना पड़ता था। बाबा की कड़ी देखरेख में। यह ध्रुपद अंग का संगीत है, इसमें किसी प्रकार की मिलावट नहीं है। यह भक्ति का संगीत है, सार्वजनिक चीज नहीं है। यह कार्य अत्यन्त मुश्किल है। यहाँ मुरकी नहीं है, स्वरों की सच्चाई के साथ रस–भाव की सृष्टि व राग–रूप की शुद्धता का प्रदर्शन है। इसके लिए कठोर साधना की आवश्यकता है। राग–सिद्धि की शुद्धता का प्रदर्शन है। इसके लिए कठोर साधना आवश्यक है। राग–सिद्धि एक प्रकार की मंत्र–सिद्धि है और गुरू के सामने ही इसकी उपलब्धि सम्भव है।"

श्रीमती अन्नपूर्णा देवी ने बताया कि, "गाना और बजाना समानान्तर रूप में चलना चाहिए। इसी से यह अनुभूति होती है कि किस स्वर पर कितना ठहरा जाता है और स्वर की सच्चाई है या नहीं।" 'बाबा' की मान्यता के अनुसार श्रीमती अन्नपूर्णा देवी का कहना है कि, "यमन, भैरव और बिलावल राग 'सिद्ध' कर लेने से अन्य सभी राग स्वतः आ जायेंगे। वास्तव में पद्धति सिखाई जानी चाहिए। यह रटने की विद्या नहीं, यह शिक्षा सृजन–क्षमता जागृत करने की है।

श्रीमती अन्नपूर्णा देवी का कहना है कि, "सही तालीम की अवधि दस–पन्द्रह वर्ष हो सकती है। आज कलाकार वादन–पद्धति को अन्यों से प्राप्त कर स्वनिर्मित कहने में भी नहीं हिचकिचाते हैं। वास्तव में यह गुरू का ही नहीं, बल्कि ऋषि–मुनियों द्वारा प्रत्थापित परम्परा का अपमान है।" उन्होंने कहा कि, "एक बार सही गुरू मिल जाने पर शिक्षार्थी का यह कर्त्तव्य है कि वह गुरू के निर्देश के अनुसार अभ्यास करें। गुरू के प्रति शिष्य की निष्ठा अटूट रहनी चाहिए। संगीत के मामले में प्रशिक्षण काल के दौरान गुरू के निर्णय पर पूर्ण आस्था होनी चाहिए।"

वर्तमान में अन्नपूर्णा कई वर्षों से बम्बई में रह रही हैं। वहाँ इन्होंने अपनी जीवन को निजी बना रखा है। वे बहुत कम बोलती हैं तथा लोगों से मिलना कम पसन्द करती हैं। व्यक्तिगत तौर पर लोगों से इस तरह की दूरी रखने वाली श्रीमती अन्नपूर्णा देवी शुद्ध संगीत की

साधना की प्रतीक है। उनका संगीत जीवन की तरह ही सहज और भावनात्मक उतार–चढ़ाव से भरपूर है। उन्होंने संगीत द्वारा धन कमाने की चेष्टा कभी नहीं की।

<u>भारतीय संगीत में योगदान</u> :–

<u>संगीत चिन्तन</u> – श्रीमती अन्नपूर्णा देवी की मान्यता है कि पुरानी पारम्परिक पद्धति से ही संगीत सीखा जा सकता है, आज की पद्धति से नहीं। शिष्य–शिष्याओं को उनके द्वारा दी जाने वाली शिक्षा से इसका अन्दाजा लगाया जा सकता है। उनका कहना है कि आरम्भ से स्वर–ज्ञान होना चाहिए और इसके लिए आवश्यक है कि सा नि ध प– प्रत्येक स्वर पर पूरी देर ठहरा जाए। इसके बाद पलटे, मूर्च्छना, आरोह–अवरोह का अभ्यास किया जाए तथा हाथ का अभ्यास भी उसी के अनुरूप हो।

अन्नपूर्णा ने प्रारम्भ में पंडित रविशंकर के साथ जुगलबन्दी की। इसके अलावा कुछ और भी कार्यक्रम दिये। उन्होंने जितने भी कार्यक्रम दिये, उन्हीं के आधार पर विशेषज्ञों ने इन्हें महान संगीतज्ञ घोषित किया। अधिक कार्यक्रम देना उनको पसन्द नहीं है। बाबा की दी हुई तालीम कुछ ऐसी ही थी। सुरबहार बजाने की तकनीक में उनमें कोई कमी नहीं है। ऐसा कोई अंग नहीं है जो वह प्रस्तुत नहीं करती हो। लेकिन सबका इस्तेमाल उन्होंने एक संवेदनशील सृजनकर्त्ता के रूप में किया है। उन्होंने वाद्य दिल के भावों को श्रोताओं तक पहुँचाने का माध्यम बना दिया। विशेषज्ञों का कहना है कि वाद्ययंत्र खुद ही भावनायंत्र बन गया है। उनको सुनकर लगता है कि आप सुर के महासागर में रूबरू डुबकियाँ लगा रहे हैं।

अन्नपूर्णा जी ने उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब की महान संगीत परम्परा को पूरी शुद्धता के साथ कायम रखा है और उसे भावनाओं का नया आयाम दिया है। वे कलाकार तथा सुरबहार की बेजोड़ साधिका साबित हुई हैं जो भारतीय संगीत के लिए निश्चय ही एक बड़ी उपलब्धि है।

<u>महान संगीत शिक्षिका</u> – अन्नपूर्णा देवी को रागों में चमम कल्याण और मालकौंस तथा तालों में चौताल और धमार बहुत प्रिय हैं। सेनी घराने की सारी विशेषताएँ नई कल्पनाओं और नए रूप को लेकर इनके वादन में दृष्टिगोचर होती है।

अन्नपूर्णा देवी केवल एक कलाकार ही नहीं बल्कि एक उच्चस्तरीय संगीत शिक्षिका भी हैं। बम्बई में वह संगीत की शिक्षा देती है और अपने विद्यार्थियों के माध्यम से बाबा के संगीत का प्रचार और प्रसार करती रहती है। अन्नपूर्णा का संगीत की सिखाने का एक अपना अलग तरीका है। सिखाते समय अपने शिष्य की कमी तथा जरूरत को वे समझ लेती हैं। फिर उसी के अनुसार सिखाना प्रारम्भ करती है। वे अपने शिष्यों को बहुत कठिन परिश्रम कराती हैं तथा खुद भी बहुत परिश्रम करती हैं। जब तक उनकी बतायी गयी चीजों का सही तरीके से शिष्य अनुकरण नहीं कर लेते, तब तक उनका पीछा नहीं छोड़ती हैं। वे अपने शिष्यों को एक–एक करके सिखाती है। उनमें तन्मयता से सिखाते देखने का जिनका अनुभव है, उनका कहना है कि पूर्णता की इस साधिका और गुरू के नजदीक समय का एक अवरूद्ध हो गया है। वे एक प्रमुख राग से शुरू करती है और उसके सभी उतार–चढ़ाव से शिष्य को गुजारती हैं। इस प्रक्रिया में वर्षों गुजर सकते हैं। इसी कठिन परिश्रम के परिणामस्वरूप निखिल बनर्जी तथा हरिप्रसाद चौरसिया जैसे कलाकार भारतवर्ष को प्राप्त हुए है। इसके अलावा उनके अन्य विषय भी तैयार हुए है।

<u>शिष्य परम्परा</u> – श्रीमती अन्नपूर्णा देवी ने प्रशिक्षण देने में अपने पिता के समान ही विशाल हृदयता और उदारता का परिचय दिया है और आज भी वे इसी सेवाव्रत की पथगामिनी हैं। उनके शिष्यों और शिष्याओं के नाम इस प्रकार है–

1. निखिल बनर्जी (सितार)
2. हरिप्रसाद चौरसिया (बांसुरी)
3. अमित हीरेन राय (सितार)
4. ज्योतिन भट्टाचार्य (सरोद)
5. डेनियल ब्रेडले (सितार)

6. हेमकान्त देसाई (सितार)
7. प्रदीप बारोत (सरोद)
8. स्तुति डे (सरोद)
9. नित्यानन्द हल्दीपुर (बांसुरी)
10. विनय भरतराम (गायन)
11. सुरेश व्यास (सरोद)
12. संध्या आप्टे (सितार)
13. पिटन वान गेल्डर (सितार)
14. रूसी कुमार पंड्या (सितार)
15. बहादुर खाँ(सरोद)
16. शुभेन्द्र शंकर (सितार)
17. आशीष खाँ (सरोद)
18. इन्द्रनील भट्टाचार्य (सितार)
19. वंसत काबरा (सरोद)
20. कार्तिक कुमार (सितार)
21. देवी चटर्जी (सितार)
22. लक्ष्मी नारायण गर्ग (सितार)
23. गौतम मुखर्जी (गायन)

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ को प्राप्त पुरस्कारों का उल्लेख कीजिए।
2. विदूषी अन्नपूर्णा देवी की शिष्य परम्परा का उल्लेख कीजिए।
3. पं0 वी0जी0 जोग का जीवन परिचय देते हुए वादन शैली पर भी प्रकाश डालिए।
4. डॉ0 एन राजम के भारतीय संगीत में योगदान पर चर्चा कीजिए।
5. उ0 हाफिज अली खॉ का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिए।

ख) सत्य असत्य बताइए :–

1. विदूषी एन0 राजम् बेला वाद्य बजाती हैं।
2. उस्ताद हाफिज अली खाँ सितार वादक हैं।
3. पंडित वी0जी0 जोग सांरगी वादक हैं।
4. अन्नपूर्णा देवी सितार वादिका हैं।
5. उ0 बिस्मिल्लाह को भारत रत्न 2003 में मिला।

ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति करिए :–

1. अन्नपूर्णा देवी के पिता का नाम .... था।
2. उ0 बिस्मिल्लाह खाँ का निवास स्थान .... है।
3. डॉ0 एन0 राजम् ने पी–एच0डी0 की उपाधि .... से प्राप्त की।
4. पं0 वी0जी0 जोग का जन्म ....में .... नामक स्थान में हुआ।
5. उ0 हाफिज अली खाँ का निधन .... को हुआ।

घ) एक शब्दों में उत्तर दो :–

1. डॉ0 एन0 राजम् के पिता का नाम बताइये।
2. डॉ0 वी0जी0 जोग किस सन् में भातखण्डे विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बने।
3. उ0 हाफिज अली खाँ के गुरू का नाम बताइये।
4. उ0 बिस्मिल्लाह खाँ ने गायन की शिक्षा किससे ली?
5. अन्नपूर्णा देवी को डी0लिट0 की उपाधि किसने प्रदान की?

1.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि संगीत के महत्व को संगीतज्ञों एवं श्रोताओं दोनों ने स्वीकार किया है, तभी दोनों इसका रसास्वाद करते हैं। अनेक महान संगीत साधक हुए जिनकी साधना ने अनेक सोपान पार किए जिनका योगदान अमूल्य है। संगीत कला संगीतज्ञों के व्यक्तित्व को महानता प्रदान करती है। हमारे देश में अनेक प्रसिद्ध एवं विद्वान संगीत विभूतियाँ हुई हैं जिनके अमर योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता है। जब संगीतज्ञ का व्यक्तित्व उसके कलात्मक प्रतिभा के फलस्वरूप प्रतिष्ठित हो जाता है तो वह किसी भी वातावरण में अपने प्रोज्जवल व्यक्तित्व द्वारा संगीत प्रदर्शन को सर्वोत्कृष्ट बनाने में सक्षम हो जाता है। इस इकाई में आप जान चुके हैं संगीतज्ञ कला में पूर्ण आनन्द का अनुभव करता है। संगीत साधना के लिए समय, कर्ता, स्थान, अभ्यास, उचित संगीतिक शिक्षा आत्मविश्वास आदि गुणों का होना आवश्यक है तभी संगीतज्ञ अपनी कला द्वारा इच्छा पूर्ति कर सकेगा।

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ख) सत्य असत्य बताइए :–

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. असत्य

ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति करिए :–

1. उ0 अलाउद्दीन खाँ
2. बनारस
3. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
4. 1922, वई
5. 28 दिसम्बर 1972

घ) एक शब्दों में उत्तर दो :–

1. श्री ए0 नारायण अय्यर
2. सन् 1938
3. उ0 वजीर खाँ
4. मोहम्मद हुसैन
5. विश्व भारती

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. माथुर, श्री रामलाल (1997), *भारतीय संगीत और संगीतज्ञ*, बोहरा प्रकाशन, जयपुर।
2. बहोरे, श्री रवीन्द्र नाथ (2005), *भारतीय संगीत के प्रमुख स्तम्भ*, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली।
3. जौहरी, श्रीमती सीमा (2003), *संगीतायन*, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
4. गर्ग, डॉ0 लक्ष्मीनारायण (1984), *हमारे संगीत रत्न*, संगीत कार्यालय, हाथरस।

1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वसन्त,(1997), *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. खाँ, उ0 विलायत हुसैन, (1959), *संगीतज्ञों के संस्मरण*, संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली।

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बेला वादन के क्षेत्र में प्रसिद्ध पं0 वी0जी0 जोग के सम्पूर्ण जीवन एवं संगीत के क्षेत्र में योगदान को समझाईये।
2. सरोद वादन के क्षेत्र में उस्ताद हाफिज अली खाँ की संगीत यात्रा पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई 2 – संगीत के प्रसिद्ध ग्रन्थों (नाट्यशास्त्र, बृहद्देशी, स्वरमेलकलानिधि व संगीत दर्पण) का अध्ययन

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 प्राचीन एवं मध्यकालीन सांगीतिक ग्रन्थ
2.4 भरत कृत 'नाट्यशास्त्र' ग्रन्थ का अध्ययन
2.5 मतंग कृत 'बृहद्देशी' ग्रन्थ का अध्ययन
2.6 रामामात्य कृत 'स्वरमेलकलानिधि' ग्रन्थ का अध्ययन
2.7 दामोदर कृत 'संगीत दर्पण' ग्रन्थ का अध्ययन
2.8 सारांश
2.9 शब्दावली
2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0आई0–102) के तृतीय खण्ड की दूसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि भारतीय संगीत के उत्थान में संगीतज्ञों की विशेष भूमिका है तथा विभिन्न घरानों में कौन महान संगीतज्ञ है? आप कुछ प्रसिद्ध संगीतकारों के जीवन तथा भारतीय शास्त्रीय संगीत में उनके योगदान के विषय में भी जान चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में भारतीय संगीत के कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थों का विस्तृत वर्णन दिया गया है। वैदिक काल के अन्तिम काल खण्ड तक संगीत से सम्बन्धित कोई स्वतंत्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। वेदों में ऋग्वेद में गीत, वाद्य और नृत्य के विषय में चर्चा मिलती है। सामवेद में सबसे अधिक गायन से सम्बन्धित चर्चा की गई है। इसके पश्चात संगीत से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। इस इकाई में भरत का 'नाट्यशास्त्र', मतंग के 'बृहद्देशी', मध्यकालीन पं0 दामोदर कृत 'संगीत दर्पण' एवं रामामात्य कृत 'स्वरमेल कलानिधि' ग्रन्थों का अध्ययन प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप प्राचीन संगीत पर दृष्टि डालने वाले इन ग्रन्थों के महत्व को समझा सकेंगे तथा इनमें जो प्राचीन एवं मध्यकालीन विद्वान संगीत चिन्तकों के विचारों का सम्यक विश्लेषण कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आपः–

- बता सकेंगे कि प्राचीन एवं मध्यकालीन समय में संगीत का क्या अस्तित्व था।
- समझा सकेंगे कि संगीत के अन्तर्गत स्वर, राग, गायन शैलियों का स्वरूप किस प्रकार शनै–शनै विकसित हुआ है।
- गायन, वादन एवं नृत्य के विषय में प्राचीन संगीत मनीषियों के ज्ञान एवं विचारों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- समझा सकेंगे कि ग्रन्थों के अन्तर्गत संस्कृत साहित्य में संगीत के विकास की कड़ियाँ स्पष्ट रूप से पाई जाती है।

2.3 प्राचीन एवं मध्यकालीन सांगीतिक ग्रन्थ

भारतीय संगीत की उत्पत्ति किस समय हुई यह बतलाना कुछ कठिन है। संगीत की उत्पत्ति के विषय में अनेक किवदन्तियाँ सुनने में आती है। अनेक प्रकार के मत भी सामने आते हैं जिनमें कुछ ने ब्रह्मा जी तथा कुछ ने शिव, सरस्वती आदि को संगीत का अविष्कारक माना है। संगीत अनादिकाल से चला आ रहा है, जिसका उद्देश्य आत्मउत्थान एवं ईश्वर प्राप्ति माना गया है।

चार वेदों में से सामवेद में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है तथा उसका पाठ भी संगीतमय है। रामायण एवं महाभारत काल में संगीत के सातों स्वरों का विकास हो गया था। इसके अतिरिक्त अनेक ग्रन्थों में संगीत विषय सामग्री प्राप्त होती है। प्राचीन ग्रन्थों में प्रमुख ग्रन्थ भरत का नाट्यशास्त्र, मतंग का बृहद्देशी तथा शारंगदेव का संगीत रत्नाकर आदि है तथा मध्यकाल में लोचन कृत राग तरंगिणी, अहोबल कृत संगीत पारिजात, रामामात्य कृत स्वरमेलकलानिधि तथा दामोदर कृत संगीत दर्पण आदि ग्रन्थों में संगीत विषयक सामग्री प्राप्त होती है।

2.4 भरत कृत नाट्यशास्त्र ग्रन्थ का अध्ययन

पाँचवीं शताब्दी में भरत ने नाट्यशास्त्र नामक ग्रन्थ लिखा। भरत के समय के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग यह काल चौथी तथा पॉचवी शताब्दी का मानते तथा कुछ तीसरी शताब्दी का, परन्तु भरत का काल पॉचवी शताब्दी ही सर्वमान्य है। भरत के इस ग्रन्थ में संगीत के श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना आदि विषयों की व्याख्या की गई है। भरत ने, नाट्यशास्त्र गायन का विषय लेकर नहीं लिखा था। उन्होंने तो उसे नाट्य कला को समझने के लिए लिखा था। परन्तु गायन को उन्होंने नाट्य का एक अंग समझ कर ही संगीत की चर्चा की हैं। भरत ने नाट्यशास्त्र में 28 से 33 तक के अध्यायों में संगीत सम्बन्धी वर्णन किया है।

संगीत सम्बन्धी प्राप्त होने वाले ग्रन्थों में भरत का नाट्यशास्त्र मुख्य तथा आधारभूत ग्रन्थ है। यद्यपि राग शब्द पारिभाषित संज्ञा के रूप में नाट्यशास्त्र में अपेक्षाकृत न्यून मात्रा में पाया जाता है, परन्तु यह राग–प्रणाली के तत्कालीन अस्तित्व को प्रमाणित करता है इसमें कोई सन्देह नहीं। भरत के परवर्ती विद्वान कोहल, कश्यप, याष्टिक, दुर्गा शक्ति आदि संगीतज्ञों के द्वारा जाति की राग–प्रणाली का विवेचन अधिक विस्तापूर्वक किया गया है, इससे प्रतीत होता है कि काल तक प्राचीन जातियों का स्थान राग–प्रणाली ग्रहण कर चुकी थी।

राग शब्द का प्रयोग नाट्यशास्त्र में रंजकता के अर्थ में निम्न रीति से हुआ है–

'यथा वर्णादृते चित्रं न शोभोत्पादनं भवेत्।
एवमेव बिना गानं नाट्यं रागं न गच्छति।।'

भारतीय संगीत के शास्त्रीय विवेचन के आज जो भी ग्रन्थ उपलब्ध है उन सभी में भरत के 'नाट्यशास्त्र' का नाम सर्वप्रथम आता है और वही आज के सभी संगीत ग्रन्थों का आधार रहा है। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार भरत का नाट्यशास्त्र नाट्यवेद के नाम से सम्मानित रहा है। नाट्यशास्त्र के अनुसार वह चार वेदों के अतिरिक्त पंचम तथा सार्ववर्णिक वेद है। भरत का नाट्यशास्त्र भारतीय साहित्य तथा संगीत का वृहद् कोष है तथा दोनों के सम्बन्ध में प्राचीन एवं प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करता है। वस्तुतः संगीत शब्द की व्याप्ति भरत काल में गीत तक सीमित रही है – गीत, वाद्य तथा नृत्य इस त्रयी का बोध उसमें कथमपि नहीं होता, यह तथ्य ध्यान देने योग्य है। भरतोक्य नाट्य में केवल नाट्यांग के रूप में इन तीनों का प्रयोग निहित है, न कि स्वतंत्र रूप में। इनका उद्देश्य केवल नाट्य की रंजकता को बढ़ाना था। नाट्य में गान्धर्व अथवा संगीत का प्रयोग उतना ही अभीष्ट है, जो उसकी रस–सिद्धि में सहायक हो और इसी हद तक भरत ने उसका उपयोग स्वीकृत किया है।

<u>स्वर एवं श्रुति</u> – भरत के नाट्यशास्त्र तथा तीनों कालों (प्राचीन, मध्य एवं आधुनिक) के ग्रन्थकारों ने स्वर एवं श्रुति का विभाजन नीचे लिखे सिद्धान्त के आधार पर किया है :–

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः।
द्वे द्वे निषादगांधारौ त्रिस्त्रीऋषभधैवतौ।।

अर्थात षड़ज, मध्यम तथा पंचम स्वरों में चार–चार श्रुतियाँ, निषाद तथा गन्धार में दो–दो श्रुतियाँ, ऋषभ तथा धैवत स्वरों में तीन–तीन श्रुतियाँ हैं। भरत के साथ–साथ यह सिद्धान्त तीनों कालों के ग्रन्थकार मानते हैं। परन्तु तीनों कालों के ग्रन्थकार अपने शुद्ध तथा विकृत स्वरों की स्थापना 22 श्रुतियों पर अलग–अलग ढंग से करते हैं। भरत ने शुद्ध स्वरों की स्थापना उनकी अन्तिम श्रुति पर की हैं। कहने का अर्थ यह है कि यदि स में चार श्रुतियाँ है तो स की स्थापना इन चार श्रुतियों की अन्तिम श्रुति यानि चौथी श्रुति पर की है। इस प्रकार उनके सात शुद्ध स्वर नीचे लिखी श्रुतियों पर स्थापित थे। स चौथी श्रुति पर, रे सातवीं श्रुति पर, ग नवीं श्रुति पर, म तेरहवीं श्रुति पर, प सत्रहवीं श्रुति पर, ध बीसवीं श्रुति पर तथा नि बाईसवीं श्रुति पर। भरत ने सात स्वरों के अतिरिक्त अन्तर गन्धार और काकली निषाद इन दो विकृत स्वरों का उल्लेख भी अपनी पुस्तक में भी किया है। इससे पता चलता है कि भरत के समय में शुद्ध एवं विकृत कुल मिलाकर 9 स्वर प्रचार में थे।

श्रुति का नाम	भरत के स्वर
1. तीव्रा	
2. कुमुद्वती	काकली निषाद
3. मंदा	
4. छन्दोवती	सा
5. दयावती	
6. रंजनी	
7. रतिका	रे
8. रौद्री	
9. क्रोधा	ग
10. वज्रिका	
11. प्रसारिणी	अन्तर गन्धार
12. प्रीति	
13. मार्जनी	म
14. क्षिति	
15. रक्ता	
16. संदीपनी	प
17. आलापिनी	
18. मदन्ती	
19. रोहिणी	
20. रम्या	ध
21. उग्रा	
22. क्षोभिणी	नि

श्रुतियाँ समान–असमान और सारणा चतुष्टयीः श्रुतियों के माप के विषय में प्राचीन एवं मध्यकालीन ग्रन्थों में कुछ नहीं कहा गया है। भरत व शारंगदेव ने श्रुति विवेचन बहुत ही संक्षिप्त किया है। उनके द्वारा किये गये वर्णन को लेकर वर्तमान के विद्वानों में अनेक मतभेद हैं। भरतमुनि ने अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में श्रुति चर्चा करते हुए सारणा चतुष्टयीः में एक प्रयोग लिखा है जिससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन ग्रन्थकार अपनी श्रुतियाँ समान मानते थे। इस प्रयोग में प्रमाण श्रुति का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। संक्षेप में भरत की सारणाओं के विषय में निम्न वर्णन है।

सर्वप्रथम भरत ने बताया कि दो वीणाएँ ऐसी लें जिनका आकार, नाद, दण्ड आदि समान हो। सर्वप्रथम दोनों वीणाओं को षड्ज–ग्राम में मिला लें। इनमें से एक का नाम ध्रुव–वीणा है और दूसरी का चल–वीणा। दोनों वीणाओं में सात–सात तार हैं। प्रथम तार को कहीं भी मिला लें जो षड्ज होगा। चौथा तार षड्ज–मध्यम संवाद के आधार पर मध्यम में मिला है।

चल वीणा के पंचम को उतार कर मध्यम–ग्राम की बना लें अर्थात् चल वीणा, जिस पर सारणा करनी है उस के पंचम को एक श्रुति उतार लें जिससे यह मध्यम ग्राम की हो जाए।

जिससे उसका पंचम, ऋषभ से संवाद करने लगे, तत्पश्चात पंचम को बिना उतारे शेष स्वरों को उतार कर वीणा को पुनः षड्ज–ग्राम की बना लें। अब दोनों वीणाओं में एक श्रुति का अन्तर हो गया है।

दूसरी सारणा के लिए कहा गया है कि 'पुनरपि तद्वदेवापकर्षेत', यह अंश समान श्रुति कहने वालों का आधार है। इस का अर्थ है कि चल–वीणा को फिर से वैसे ही उतार लें लेकिन इसके बाद के अंश के अनुसार– 'यथा गांधारनिषादवनतावितरस्यामृषभधैवतौ प्रवेक्ष्यतः द्विश्रुत्यधिकत्वात्'। यह अंश असमान वादियों का आधार है। इसका अर्थ है कि चल–वीणा के गांधार व निषाद दो श्रुति अधिक होने के कारण ध्रुव–वीणा के ऋषभ व धैवत में मिल जाएँगे।

इसी प्रकार तीसरी सारणा में पुनः कहा गया है कि फिर से वैसे ही उतार लें, जिससे चल वीणा के तीन श्रुति के 'ऋषभ' और 'धैवत' ध्रुव वीणा के 'षड्ज' और 'पंचम' में क्रमशः मिल जाएँगें।

चतुर्थ सारणा में पुनः वैसे ही करें जिससे चल–वीणा के चार श्रुति वाले स्वर पंचम, मध्यम और तार–षड्ज ध्रुव–वीणा के क्रमशः मध्यम, गांधार और निषाद में मिल जाएँगे।

भरतमुनि द्वारा किए गये श्रुति सम्बन्धी संक्षिप्त विधान ने वर्तमान के विद्वानों को दो वर्गों में विभक्त कर दिया है। चारों सारणाओं के प्रथम भाग पर बल देने वालों का मत है कि भरत व शारंगदेव की श्रुतियाँ समान थी। क्योंकि चारों बार समान रूप से कहा गया है कि ठीक वैसी ही प्रक्रिया करनी है अतः परिणाम चारों बार समान ही होना चाहिए, अलग–अलग नहीं। इस मत का अनुसरण करने वालों में मुख्य रूप से पं0 भातखण्डे और उनकी परम्परा के विद्वान आते हैं।

सारणा चतुष्टयीः के प्रयोग से यह विदित होता है कि भरत अपनी श्रुतियों को समान मानते थे। क्योंकि यदि वे अपनी श्रुतियों को असमान मानते तो इस प्रकार प्रत्येक सारणा में एक–एक श्रुति का अन्तर नहीं करते। उनकी श्रुति एक नाप बन गयी थी जिसके द्वारा वे स्वरों को स्थापित किया करते थे। उदाहरण के लिए यदि उनके सा, म, प, स्वरों में चार–चार श्रुतियाँ कम कर दे तो नि, ग और म स्वर बन जाते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि उनकी 22 श्रुतियाँ समान थी। भरत की तरह प्राचीन सभी ग्रन्थकार अपनी श्रुतियाँ समान मानते थे।

<u>ग्राम</u> – सात स्वरों के सप्तक को 22 श्रुतियों को भिन्न–भिन्न प्रकार से स्थापित करने को ग्राम कहते हैं। चतुश्चतुश्चतुश्चैव के सिद्धान्त से 22 श्रुतियों की स्थापना करें तो एक ग्राम बन जाता है। यदि अब यही स्वर किसी अन्य स्वर से 22 श्रुतियों पर स्थापित किये जाये तो एक नया ग्राम बनता है। भरत ने तीन ग्राम माने हैं। **1. षड्ज ग्राम, 2. मध्यम ग्राम तथा 3. गान्धार ग्राम**

1. षड्ज ग्राम – यदि सप्तक के सात स्वर 22 श्रुतियों पर इस प्रकार स्थापित किये जाये कि सा चौथी पर, रे सातवीं पर, ग नवीं पर, म तेरहवीं पर, प सत्रहवी पर, ध बीसवीं पर तथा नि बाईसवीं पर हो तो षड्ज ग्राम बनता है। परन्तु इस क्रम के अतिरिक्त यदि कोई स्वर अपनी श्रुति बदल देता है तो वह फिर षड्ज ग्राम नहीं रहेगा। आधुनिक समय में यही ग्राम प्रचार में हैं।

2. मध्यम ग्राम – षड्ज ग्राम के स्वरों में से यदि केवल पंचम स्वर की एक श्रुति कम पर स्थापित किया जाये तो मध्यम ग्राम बनता है। कहने का अर्थ यह है कि यदि षड्ज ग्राम का पंचम स्वर जो सत्रहवीं श्रुति पर है, सोलहवीं श्रुति पर किया जाये तो मध्यम ग्राम बनता है।

3. गान्धार ग्राम – भरत ने बताया कि गान्धार ग्राम का लोप प्राचीनकाल में ही हो गया था। इसीलिए इस ग्राम की स्पष्ट व्याख्या शास्त्रों पर नहीं मिलती।

<u>मूर्च्छना</u> – भरत ने अपने ग्रन्थ में बताया कि ग्रामों से ही मूर्च्छनाओं की उत्पत्ति होती थी। किसी एक ग्राम से सात स्वरों का बारी–बारी से प्रत्येक को षड्ज मानकर आरोह–अवरोह करने से विभिन्न मूर्च्छनाऐं बनती थी। उदाहरण के लिए षड्ज ग्राम के प्रत्येक स्वर को एक–एक कर षड्ज माना जाए और उसका आरोह–अवरोह किया जाए अर्थात पहली मूर्च्छना षड्ज ग्राम से प्रारम्भ होकर आरोह–अवरोह करने पर षड्ज ग्राम के स्वरों की तरह होगी। हमें यहाँ ध्यान रखना है कि प्राचीनकाल के ग्रन्थकार अपने स्वरों को अन्तिम श्रुतियों पर स्थापित करते थे। इससे षड्ज ग्राम के सात स्वर आधुनिक काफी थाट के समान होते हैं। दूसरी मूर्च्छना मन्द्र निषाद को षड्ज मानकर आरोह–अवरोह करने पर बनेगी। तीसरी मूर्च्छना मन्द्र धैवत को षड्ज स्वर मानकर आरोह–अवरोह

करने से बनती हैं। इसी प्रकार क्रमशः मन्द्र, पंचम, मध्यम, गान्धार, ऋषभ स्वरों को षड्ज मानकर आरोह–अवरोह करने पर अन्य मूर्च्छनाएँ बनेगी।

<u>जातियाँ</u> – प्राचीनकाल में राग नाम की कोई वस्तु नहीं थी। रागों के स्थान पर उस समय जातियाँ गाई जाती थी। ये जातियाँ मूर्च्छनाओं से ही उत्पन्न होती थी।

नाट्यशास्त्र में वर्णित शुद्धगत, भिन्नराग, गौड़राग, कैशिकराग, साधारण, भाषाराग, विभाषाराग, इन सात गीतियों के राग, दृष्टफल की सिद्धि एवं भाव और रस का उपरज्जन करते हैं। आचार्य अभिवन गुप्त की 'नाट्यशास्त्र कृत टीका' के अनुसार वे जातियाँ हैं।

ऐसी सात षड्जग्रामाश्रित जातियों का वर्णन नाट्यशास्त्र के 28वें अध्याय यानि स्वराध्याय में मिलता है–

1. षाड्जी
2. आर्षभी
3. धैवती
4. निषादिनी
5. षड्जकैशिकी
6. षड्जमध्या
7. षडजोदीच्यवती

ऐसी 11 मध्यमग्रामीय जातियों का विवरण हमें नाट्यशास्त्र में मिलता है :–

1. गाधांरी
2. मध्यमा
3. गान्धारोदीच्यवा
4. पंचमी
5. रक्तगांधारी
6. गान्धारपंचमी
7. मध्यमोदीच्यवा
8. नन्दयन्ती
9. कार्मारवी
10. आन्ध्री
11. कैशिकी

भरत ने जाति के 10 लक्षण भी बताए हैं जो इस प्रकार है – **ग्रह, अंश, मन्द्र, तार, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाडव, औडव**। कालान्तर में जाति लक्षण, राग लक्षण के नाम से जाने जाने लगे हैं, क्योंकि जाति का स्थान राग ने ले लिया है। आजकल इन्हें 'प्राचीन राग लक्षण' के नाम से भी जाना जाता है।

भरत के अनुसार जातियाँ एवं जातिगान सामगान से उद्भूत हुई हैं। इस सम्बन्ध में भरत का कथन है–

'अस्य योनिर्भवेद्गानं वीणा वंशस्तथैव च।
एतेषां चैव वक्ष्यामि विधिं स्वरसमुत्थितम्।।'

जाति की परिभाषा को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि सामगान के अन्तर्गत जो स्वरावलियाँ प्रचलित थीं, उन्हीं के आधार पर जातियों का निर्माण हुआ। जातियों को व्यवस्थित रूप देने के लिए ग्रामों में स्वरो को श्रुतिबद्ध किया गया तथा षड्जग्राम को आधार सप्तक मान कर जाति–गायन का विकास हुआ।

राग के कई अर्थ हैं, इसका प्रयोग भिन्न–भिन्न अर्थों में भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में तथा कालिदास ने अपने काव्य में किया है। संगीत के सन्दर्भ में 'राग' शब्द रंजकता से जुड़ा हुआ है तथा इस ग्रन्थ में भी संगीत के राग तथा रंजकता के अर्थ में ही इसका प्रयोग हुआ है।

आज भी नाट्यशास्त्र प्राचीन कला का एक आधारभूत ग्रन्थ माना जाता है। वास्तव में भरतमुनि के पूर्व शताब्दियों में भारतीय संगीत की स्थिति बड़ी उच्चकोटि की रही, जैसा कि ऐतिहासिक गवेषणाओं से मालूम पड़ता है। आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र को लिखकर संगीत की महान सेवा की है, क्योंकि भरत से पूर्व हमें कोई प्रामाणिक ग्रन्थ संगीत पर नहीं मिलता। इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने से इस युग में विधान पूर्ण संगीत की अभिवृद्धि हुई है। नाट्य के अन्तर्गत 'ध्रुवा' नामक गीतों का विशिष्ट स्थान है।

<u>गीतिगान</u> – भारतीय संगीत के शास्त्रीय का उल्लेख मिलता है। भरत के अनुसार गीतियों का अन्तर्भाव गान्धर्व के अन्तर्गत है।

भरत के अनुसार ये गीतियाँ नाट्य के अतिरिक्त गान्धर्व में भी गायी जाती रही हैं। संगीत रत्नाकर के अनुसार वर्ण, पद तथा लय में समन्वित गानक्रिया गीति कहलाती हैं–

वर्णाद्यलंकृता गानक्रिया पदलयान्विता।
गीतिरित्युच्यते सा च बुधैरूक्ता चतुर्विधा।।

गीतियाँ दो प्रकार की थी – स्वराश्रिता तथा पदाश्रिता। पाँच स्वराश्रिता गीतियों पर आधारित पाँच प्रकार के ग्रामरागों की चर्चा की गई है।

अलंकारों का सम्बन्ध प्राचीन गीतियों से है। प्राचीन ग्रन्थकारों ने स्वर से वर्ण, वर्णों से अलंकार तथा अलंकारों का प्रयोग व उद्देश्य गीतियों को रंजकता व सौन्दर्य प्रदान करना माना है। गीति गाये जाने वाले गीतों को कहते हैं जो छन्द, अक्षर, पद तथा ताल, लय युक्त हो। अलंकार के पश्चात भरत ने गीतियों का वर्णन किया है।

'अथ गीतिं प्रवक्ष्यामि छन्दोक्षरसमन्विता।'

भरत के अनुसार गीति अक्षरों से निर्मित तथा छन्दों से समन्वित गान है।

भरत ने नाट्यशास्त्र में पदाश्रित गीतियों का ही उल्लेख किया है। यद्यपि गीतियां दो प्रकार की मानी गई हैं– पदाश्रिता तथा स्वराश्रिता।

भरत ने पदाश्रिता गीतियों का उल्लेख किया है तथा यह भी कहा है कि इन्हें ध्रुवागीत के बिना भी गाया जाता है। इन गीतियों में ताल, पद रचना, लय, पद की आवृत्ति, यति, ग्रह आदि का बंधन दिखाई पड़ता है जो ध्रुवगीतियों के उद्देश्य तथा प्रयोजन के विरूद्ध प्रतीत होता है। इन गीतियों को चंचतपुट ताल में ही गाने की व्यवस्था भी दीख पड़ती है। भरत ने स्वराश्रिता गीतियों(जिसे मतंग तथा अन्य परवर्ती ग्रन्थकारों ने रागों का आधार माना है) का उल्लेख नहीं किया है। स्वराश्रिता गीतियाँ मूलतः पाँच हैं।

<u>वाद्य</u> – नाट्यशास्त्र के 28वें अध्याय यानि स्वराध्याय में चार प्रकार के वाद्यों का विवरण मिलता है, जो इस प्रकार हैः

ततं चैवावद्धं च घन सुषिरमेव च।
चतुर्विधं तु विज्ञयमातोद्यं लक्षणान्वितम्।।

भावार्थः लक्षणों से युक्त वाद्य चार प्रकार के जानना चाहिये – तत् और अवनद्ध, घन और सुषिर।

'तत्' का अर्थ है 'वीणा' इत्यादि तंत्री वाद्य, सुषिर का अर्थ है वंशी इत्यादि फूंक से बजाए जाने वाले वाद्य, अवनद्ध का अर्थ है खाल से मढ़े हुए और बद्धियों से कसे हुए मृदंग इत्यादि वाद्य और घन का अर्थ है 'झांझ' या मंजीरा यानि दो धातु द्वारा परस्पर टकराकर बजाए जाने वाले वाद्य।

नाट्यशास्त्र में शरीर से उत्पन्न होने वाले स्वर और वीणा से उत्पन्न होने वाले स्वर बताए हैं, क्योंकि स्वरों के दो उत्पत्ति स्थान होते हैं, वीणा और शरीर।

जिस पर तंत्रियां फैली हो वे 'तत् वाद्य' कहलाते हैं, सुषिर– छिद्र से युक्त होने के कारण 'वंशी' 'शहनाई' जैसे वाद्य सुषिर कहलाए। चमड़े की बद्धियों से बंधे होने के कारण 'मृदंग जैसे वाद्य अवनद्ध कहलाए, इनको ही 'पौष्कर' भी कहा गया क्योंकि पुष्करिणी (कमल युक्त सरोवर) में खिले हुए कमलों की पंखुड़ियों पर पड़ने वाली वर्षा की बूंदों से उत्पन्न मधुर ध्वनियों का अनुकरण करने के लिये स्वाति नामक मुनि ने इनका निर्माण किया।

तत् वाद्यों की श्रेणी में मत्तकोकिला वीणा को प्रधान वीणा माना गया है तथा विपंची को सहायक वीणा माना गया है। वीणा में प्रमुख मत्तकोकिला वीणा मानी गई है, जिसमें मन्द्र, मध्य और तार स्थान में सात–सात स्वरों की अभिव्यक्ति के लिये इक्कीस तंत्रियां होती हैं। नौ तंत्रियों वाली वीणा विपंची अंगमात्र है और विपंची वादक का कार्य तत्वृन्द में मत्तकोकिला वीणा वादक की सहायता करना है। वांशिक भी वैणिक का सहायक मात्र है। अवनद्ध वाद्यों में मृदंग वादक प्रमुख माना गया है और अन्य वाद्यों के वादक उसके सहायक हैं। हुडुक्क के आकार का एक वाद्य विशेष 'पणव' है जिसके अन्दर तार लगे होते हैं। 'महाघट' के आकार का एक वाद्य विशेष 'दुर्दर' कहलाता है। झांझ, मंजीरा इत्यादि वाद्यों को भी 'अवनद्ध कुतप' के अन्तर्गत समझना चाहिये। भरतकालीन वाद्यवृन्द के लिये 'कुतप' संज्ञा दी गई है। नाट्यशास्त्र में तीन प्रकार के कुतप का वर्णन मिलता है।

1. तत् कुतप – तत कुतप का अर्थ नाटक की कथा से असम्बद्ध, तत् वाद्यों का प्रयोग और उनके साथ मानव कंठ का स्वतंत्र (सूत्रधार की अपनी इच्छा के अनुसार) प्रयोग है। इस प्रकार तत्वृन्द तंत्री प्रधान या स्वर प्रधान कहलाया जायगा।
2. अवनद्ध कुतप – इसी प्रकार अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग अवनद्ध कुतप है।
3. नाट्य कुतप – तत् और अवनद्ध वाद्यों का अभिनय पोषण और नाटक पात्र का वर्गगत प्रयोग, नाट्यकृत प्रयोग या नाट्य कुतप कहलाता है।

अभ्यास प्रश्न

क) सही/गलत बताइए :–

1. भरत ने जाति के बारह लक्षण बताए हैं।
2. भरत ने जाति गान को सामगान से उद्भूत बताया है।
3. भरत ने स्वराश्रिता गीति का उल्लेख किया है।

ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति :–

1. भरतकालीन वाद्यवृन्द के लिए .... संज्ञा दी गई है।
2. नाट्यशास्त्र का स्वराध्याय .... वां अध्याय है।

2.5 मतंग कृत 'बृहद्देशी' ग्रन्थ का अध्ययन

मतंग का काल 5 से 7 शताब्दी के बीच का माना जाता है। मतंग के ग्रन्थ का नाम 'बृहद्देशी' है जिसमें आठ अध्याय हैं। ताल और वाद्य पर भी इस ग्रन्थ में विचार किया गया है। मतंग ने कश्यप, नन्दी, कोहल, दत्तिल, वल्लभ, विशाखिल इत्यादि पुर्वाचार्यों की चर्चा अपने ग्रन्थ में की है।

बृहद्देशी नाट्यशास्त्र के पश्चात महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। 'बृहद्देशी' नाम से ही प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ में देशी संगीत का विवरण है।

ग्रन्थ के आरम्भ में ही महर्षि मतंग 'देशी' के विषय कहते हैं। ग्राम रागों से भिन्न भाषा, विभाषा आदि रागों का वर्णन मतंग ने दिया है (मतंग ने इसे याष्टिक उवाच कहकर तथा शार्द्वल के मत से प्रस्तुत किया है)।

<u>देशी संगीत</u> – मतंग मुनि के ग्रन्थ का नाम ही बृहद्देशी है। यानि देशी संगीत का वर्णन करने वाला विस्तृत ग्रन्थ। मार्ग का अर्थ है– रास्ता। अर्थात जो संगीत आध्यात्म के मार्ग की ओर ले जाने में सहायक हो, जिसकी खोज ब्रह्मा आदि देवताओं ने की हो तथा जिसका उद्देश्य ईश्वर प्राप्ति हो और जिसके नियम कठोर हो वह मार्ग संगीत है। इसके विपरीत जो संगीत वाग्येयकार द्वारा रचा गया हो। जिस संगीत का उद्देश्य जन–मन–रंजन हो, जो परिवर्तनशील हो, जिसके नियम कठोर न हो और अलग–अलग देशों या प्रान्तों में अलग–अलग प्रकार का हो, वह देशी संगीत है। मतंग के अनुसार बाल–गोपाल और स्त्रियों द्वारा तथा राजांज्ञा से जो संगीत गाया जाता है वह देशी संगीत है। इस नियम से लगता है कि बाल–गोपाल और स्त्रियाँ तो लोक–संगीत ही गायेंगे। इस बात से संकेत मिलता है कि देशी संगीत का अर्थ लोक–संगीत भी हो सकता है। पर वास्तव में ध्यान देने पर यही अनुभव होता है कि देशी संगीत का अर्थ आज का लोक–संगीत नहीं बल्कि उस समय यह शास्त्रीय संगीत का ही रूप था। अतः देशी संगीत का तात्पर्य शास्त्रीय संगीत से है न कि

लोक—संगीत से। क्योंकि मतंगमुनि ने जिस संगीत का वर्णन किया है वह रागदारी संगीत ही है न कि लोक—संगीत।

सामवेद से उत्पन्न सामगान से उत्पन्न जो संगीत था वह लौकिक संगीत कहलाता था। उसके दो भाग थे — गंधर्व और गान। मतंगकाल तक आते—आते गंधर्व का स्थान मार्ग संगीत ने ले लिया तथा गान का देशी संगीत ने। मतंग के समय तक संगीत ने नाट्य से स्वतंत्र स्थान प्राप्त कर लिया था। अतः मतंग ने बृहद्देशी में ध्रुवाओं का वर्णन नहीं किया है वरन् उसके स्थान पर देशी रागों में प्रबन्ध पर विस्तृत वर्णन किया है।

देशी राग वर्गीकरण — मतंग ने चार वर्णों में देशी रागों का विभाजन किया है— रागांग, भाषांग, क्रियांग और उपांग। इनमें से पहले तीन वर्णों का उल्लेख उन शब्दों की निरूक्ति और उनके अनुसार राग वर्गीकरण मतंग से लिया गया है। बृहद्देशी में उपांग अलग से नहीं कहे गये है।

1. **रागांग** — ग्राम रागों की छाया जिन रागों में दिखाई दे वे रागांग कहलाये।
2. **भाषांग** — भाषा रागों की छाया लेकर जिन रागों की उत्पत्ति हुई वे मतंग के अनुसार भाषांग कहलायें।
3. **क्रियांग** — जिन रागों से चित में करूणा, उत्साह, शोक आदि क्रिया उत्पन्न होती है वे क्रियांग राग होते हैं।
4. **उपांग** — जैसे रागांगों का ग्राम रागों से, भाषांगों का भाषा रागों से और क्रियांगों का क्रिया से सम्बन्ध जुड़ा है। उस तरह उपांग का किसी से सम्बन्ध नहीं कहा गया है। मतंग ने उपांग अलग से नहीं कहे हैं।

श्रुति एवं स्वर — ग्राम मूर्च्छना व्यवस्था में स्वरों की स्थापना उनकी अन्तिम श्रुति पर होती थी। मतंग ग्राम मूर्च्छना व्यवस्था को भी मानते हैं। उत्तर व दक्षिण के मेल वर्गीकरण को मानने वाले भी स्वरों की स्थापना उनकी अन्तिम श्रुति पर ही करते हैं। जिससे षड्ज ग्राम के स्वर लगभग काफी के समान प्राप्त होते हैं। प्राचीन मत तथा मतंग के अनुसार भी स्वरों की श्रुतियाँ अवरोह क्रम में थी जिससे षड्ज ग्राम के स्वर काफी ठाठ के रूप में प्राप्त होते थे। अवरोह क्रम से तात्पर्य यह है कि षड्ज की चार श्रुतियाँ है तो अवरोह क्रम से 4, 3, 2, 1 षड्ज की श्रुतियाँ हुई। इसके विपरीत वर्तमान में आरोह क्रम में स्वर अपनी प्रथम श्रुति पर स्थापित किये जाते है। जैसे षड्ज की 4 श्रुतियाँ हैं तो षड्ज प्रथम श्रुति पर है और दूसरी, तीसरी, चौथी श्रुति तक षड्ज का क्षेत्र है। कहने का भाव यह है कि प्राचीन मत के स्वरों की श्रुतियाँ अवरोह में अपने से पूर्व के स्वर तक थी। जैसे षड्ज की श्रुतियाँ षड्ज एवं कोमल निषाद के मध्य होती थी। मतंग ने भरत के समान ही स्वरों की व्याख्या अपने ग्रन्थ में की है।

ग्राम मूर्च्छना — मतंग ने भरत के समान ही पृथ्वी पर षड्ज और मध्यम दो ही ग्राम स्वीकार किये है। गान्धार ग्राम के लिए कहा है धरती में इसका लोप हो चुका है। षड्ज ग्राम में षड्ज मध्यम, पंचम की चार—चार, ऋषभ—धैवत की तीन—तीन और गान्धार निषाद की दो—दो श्रुतियाँ होती है। प्रत्येक स्वर के अन्तिम श्रुति पर स्थित होने के कारण षड्ज ग्राम के स्वर आज के लगभग काफी के समान होते हैं। मध्यम ग्राम का वर्णन मतंग ने भरत के समान ही किया है।

द्वादष स्वर मूर्च्छनावाद — 'बृहद्देशी' में प्राचीन मूर्च्छना की चर्चा भी की गई हैं। मतंग ने भरतोक्त सप्त मूर्च्छना के आकार को विस्तृत करके उसे द्वादश (12) स्वर मूर्च्छना मानने पर बल दिया है। इस 12 स्वर की मूर्च्छना में सात स्वर एक सप्तक के तथा पांच स्वर अन्य सप्तकों के सम्मिलित हैं। जैसे ध़ ऩि सा रे ग म प ध नि सां रें गं। ये द्वादश स्वर मूर्च्छना 'नन्दिकेश्वर' मत कहा जाता है। आचार्य अभिनवगुप्त ने द्वादश स्वर मूर्च्छनावाद का युक्तियुत्त खंडन किया है। इसके पश्चातवर्ती आचार्यों ने भी द्वादश—स्वर मूर्च्छनावाद की उपेक्षा की है। पं0 शारंगदेव ने जातियों के रूप तो मतंग इत्यादि आचार्यों से लिए हैं, परन्तु मूर्च्छना सप्त स्वर ही मानी है। मतंगमुनि ने मूर्च्छना का विस्तार सात से बारह स्वरों तक कर दिया। उन्होंने दो स्वर मन्द्र सप्तक के तथा तीन स्वर तार सप्तक के मिलाकर कुल 12 स्वरों वाली मूर्च्छना कही है। जैसे— यदि आज केवल मध्य सप्तक के बिना मन्द्र निषाद के यमन और पूरिया, बसन्त, परज आदि को बिना तार सप्तक के स्वरों के गाया जाय तो

अपेक्षाकृत कठिन होगा। इन्हीं आवश्यकताओं को देखते हुए मतंगमुनि ने द्वादश स्वर मूर्च्छना प्रणाली का प्रचार किया। जिन रागों या जातियों में मूर्च्छना, षड्ज आदि, धैवत आदि या किसी अन्य स्वर से कही गई है वहाँ 12 स्वरों वाली मूर्च्छना ही होती है। सबसे बड़ी कठिनाई द्वादश मूर्च्छना प्रणाली में यह है कि इसके स्वर ही ज्ञात करना दुष्कर है, क्योंकि षड्ज ग्राम की उत्तरमन्द्रा, रजनी आदि मूर्च्छनाएँ जो कि स, नि, ध, प, म, ग, रे से आरम्भ होती थी वे द्वादश स्वर मूर्च्छना पद्धति में ध, नि, सा, रे, ग, म, प से क्रमशः आरम्भ होती है। मध्यम ग्राम की सौवीरी आदि मूर्च्छनाऐं म, ग, रे, सा, नि, ध, प से आरम्भ होती है। द्वादश स्वर मूर्च्छना विधान में नि, सा, रे, ग, म, प, ध से क्रमशः प्रारम्भ होती है। चूँकि इस विधान से तो मूर्च्छनाओं के स्वरों को ज्ञात करना अत्यधिक कठिन है, सम्भवतः इसलिए मतंग के परिवर्ती ग्रन्थकारों ने द्वादश स्वर मूर्च्छना अस्वीकार कर सप्त स्वर मूर्च्छना को ही स्वीकार कर लिया।

गीति – अपने ग्रन्थ में मतंग ने 'गीति' शब्द का प्रयोग किया है जिससे अभिप्राय है स्वरों के विशेष प्रकार का चलन। ऐसी सात स्वराश्रया गीतियों का उल्लेख मतंग ने किया है जो इस प्रकार है– शुद्ध; भिन्ना, गौड़ी, रागंगीति, साधारणी, भाषा गीति, विभाषा गीति।

1. **शुद्ध गीति** – शुद्ध गीति में स्वरों का चलन बिल्कुल सीधा तथा मधुर होता था। इसमें मन्द्र, मध्य तथा तार तीनों सप्तकों में सहज आकर्षित करने वाले स्वरों का प्रयोग होता था। शुद्ध गीति को पूर्ण कहा गया है।
2. **भिन्ना** – इसका चलन सीधा नहीं होता था तथा इसमें गमकयुक्त वक्र स्वरों का प्रयोग होता था।
3. **गौड़ी गीति** – यह गीति काफी कठिन थी। इसमें स्वरों का चलन बिना ठहराव के तीनों सप्तकों में होता था तथा ओहाटी शैली का भी जोरदार प्रयोग होता था। ह तथा ओ संयोग का संयोग ओहाटी में होता था। ओहाटी शैली से तात्पर्य मन्द्र सप्तक में स्वरों का विशेष प्रकार से कम्पन होता था तथा ओंकार या हाकार का उच्चारण भी होता था। इसमें स्वरों का कम्पन बढ़ाते हुए द्रुत तथा द्रुततर गति में गाया जाता था। ऐसा मत है कि गौड़ देश के लोग इस प्रकार की गीति का प्रयोग करते थे इसलिये इसका नाम 'गौड़ी गीति' रखा गया।
4. **राग गीति** – इसमें स्वरों का चलन 4 वर्णों, स्थायी, आरोह, अवरोही, संचारी में तेजी से होता था। यह नीति पं0 शारंगदेव द्वारा बेसरा के नाम से बताई गई हैं। ऐसा कहा जाता हैं कि टप्पा शैली का चलन इस गीति से मिलता–जुलता था।
5. **साधारण गीति** – यह गीति उपर लिखि 4 गीतियों के सम्मिश्रण से बनी थी। ऐसा कहा जाता है कि ख़्याल शैली की विशेषताएँ इस गीति में विद्यमान थी।
6. **भाषा** – मतंग के अनुसार भाषा का अर्थ है ग्राम रागों का आलाप प्रकार। यानि ग्राम रागों को गाने के विभिन्न प्रकार।
7. **विभाषा** – विभाषा और अन्तरभाषा शब्दों की व्याख्या नहीं मिलती। भाषा के बाद विकसित हुए एवं भाषाओं की अपेक्षा इन में तथा ग्राम रागों में व्यवधान और भी ज्यादा होने से इन्हें भाषा में रखकर विभाषा कहा गया।

राग – 'राग' को सर्वप्रथम परिभाषित करने का श्रेय मतंग को है। उनसे पहले भरतमुनि इत्यादि आचार्यों ने राग की परिभाषा नहीं दी है। बृहद्देशी में मतंग द्वारा दी गई ये परिभाषा आज भी उसी प्रकार विख्यात् और प्रचलित है जिस प्रकार उनके युग में थी। ये परिभाषा इस प्रकार है–

यो ऽसौ ध्वनि विशेषस्तु स्वर वर्ण विभूषितः।
रजंको जन चित्तानां स च राग उदाहृत।।

भावार्थः ध्वनि की वह विशेष रचना जो स्वर और वर्ण से विभूषित हो और जो जन के चित्त का रंजन कर सके उसे 'राग' कहते हैं।

स्वर से तात्पर्य है संगीत के उपयोग में आने वाले स्वर।

वर्ण – गाने की प्रत्यक्ष क्रिया को वर्ण कहते हैं। वर्ण चार प्रकार के हैं– स्थायी, आरोही, अवरोही, संचारी।

इनसे पहले राग का उल्लेख इस विशेष रूप में कभी नहीं किया गया। इस समय तक राग विकसित हो चुका था, यह बृहद्देशी में उल्लिखित रागों से स्पष्ट होता है। महर्षि मतंग ही सभी रागों के निर्माता थे ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि मतंग से पूर्व अनेक ग्रन्थकार हुए हैं जैसे दत्तिल, कोहल, याष्टिक, दुर्गाशक्ति तथा कश्यप इनके मतों का उल्लेख मतंग तथा अन्य पश्चात्वर्ती ग्रन्थकारों ने किया है। इन मनीषियों द्वारा वर्णित ग्राम राग, भाषा, विभाषा, अंतरभाषा का वर्णन बृहद्देशी में मिलता है।

<u>जाति</u> – मतंग द्वारा दी गई जाति की परिभाषा यहाँ उद्धृत है–

> स्वरा एवं विशिष्टा सन्निभाजों रक्तिमदृष्टाभ्युदयंच जनयन्तो
> जातिरित्युक्तः। कोऽसो सन्निवेश इतिचेत् जातिलक्षणेन
> दशकेन भवति सन्निवेशः।

अर्थात् स्वर ही जब विशिष्ट बनकर और सन्निवेश गत होकर रंजकता और अदृष्ट अभ्युदय का उत्पन्न करते हैं, तब वे जाति कहलाते है। सन्निवेश से क्या अभिप्राय है? स्वयं अभिनव इसे स्पष्ट करते हैं उनका कथन है।

मतंग के समय में रागों के गायन का प्रचलन अधिक हो गया था अतः जाति के लक्षणों का प्रयोग राग के लक्षणों में भी किया गया। बृहद्देशी में इसी बात का संकेत हमें मिलता है। भरत के द्वारा रागों का उल्लेख न किए जाने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि राग उस समय अस्तित्व में नहीं था।

मतंग द्वारा बृहद्देशी में भरत मुनि का ही अनुसरण किया गया है। अन्यतम तथ्य यह भी है कि राग के लक्षणों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। ये लक्षण जाति लक्षणों के ही समान हैं।

महर्षि मतंग द्वारा रचित बृहद्देशी में सर्वप्रथम जाति की परिभाषा उपलब्ध होती है जो निम्नविध है–

'श्रुतिग्रहस्वरादि समूहाज्जायते जातयः। अतो जातय इत्युच्यते। यस्माज्जायते रस प्रतीतिरारभ्यत्ते इति वा(यतः ? तयः) अथवा सकलस्य रागादेर्जन्महेतुत्वाज्जातय इति। यदा जातय इति जातयः। यथा नराणां ब्राह्मणत्वादयो जातयः। शुद्धाश्च विकृताश्चैवमत्रापि जाति लक्षणम्।

अर्थात जो श्रुति, ग्रह व स्वर आदि के समूह से जन्म पाती हो, जिससे रस प्रतीति की उत्पत्ति अथवा रस प्रारम्भ हो, और जो सभी रागों के जन्म का कारण हो, उसे जाति कहा गया है। यहाँ जाति शब्द का सामान्य अर्थ लिया गया है, जैसे कि मनुष्यों में ब्राह्मणत्वादि जातियाँ होती हैं।

<u>वाद्य</u> – मतंग सत्पतंत्री वीणा 'चित्रा' के वादक थे। भरत कोष के सम्पादक राम कृष्ण कवि के अनुसार किन्नरी वीणा के अविष्कारक मतंग ही थे। उनके अनुसार मतंग से पूर्व वीणा पर परदे नहीं होते थे। इन्होंने सबसे पहले वीणा पर सारिकाएं रखी। मतंग की वीणा पर 14 पर्दे थे। किन्नरी वीणा आदिम सारिकायुक्त वाद्य है। किन्नरी वीणा के तीन भेद लोक में प्रचलित हुए– बृहती किन्नरी, मध्यमा किन्नरी, लघ्वी किन्नरी। शारंगदेव ने किन्नदी का देशी रूप पृथक बताया हैं। वहाँ देशी शब्द का तात्पर्य शारंगदेव के युग में प्रचलित किन्नरी से हैं।

'संगीत राज' में महाराणा कुम्भ ने किन्नरी वीणा के सम्बन्ध में केवल मतंग के मत का उल्लेख किया है।

अभ्यास प्रश्न

क) एक शब्द में उत्तर दो :–

1. बृहद्देशी का काल कौन सा माना जाता है?
2. बृहद्देशी में कितने अध्याय है?
3. गमक युक्त व्रक स्वरों का प्रयोग किस गीति में होता है?

ख) सही/गलत बताइए :–

1. मतंग ने बृहद्देशी में भरतमुनि का अनुकरण किया है।
2. द्वादश स्वर मूर्च्छनावाद भरत ने माना है।

2.6 रामामात्य कृत 'स्वरमेलकलानिधि' ग्रन्थ का अध्ययन

यह दक्षिणी–संगीत पद्धति का सर्वप्रथम ग्रन्थ है इसका रचनाकाल सन् 1550 ई0 है और इसके रचनाकार रामामात्य हैं, जो विजयनगर के मंत्री थे। इस ग्रन्थ में पाँच प्रकरण है – 1. उपोधघात प्रकरण, 2. स्वर प्रकरण, 3. वीणा प्रकरण, 4. मेल प्रकरण और 5. राग प्रकरण।

<u>1. उपोधघात प्रकरण</u> – इस अध्याय में सम्पूर्ण ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय दिया गया है जैसे कि स्वर प्रकरण में संगीत की प्रशंसा, गांधर्व और गान का भेद, स्थान(सप्तक), श्रुति, शुद्ध–विकृत स्वर आदि। वीणा प्रकरण में वीणा को मिलाने, उस पर शुद्ध व विकृत स्वर निकालने के विषय में वर्णित किया गया है। मेल प्रकरण में गायकों के बीस और वैणिकों के पन्द्रह मेलों का वर्णन है। राग प्रकरण में रागों के तीन वर्ग बनाए गए हैं जिनमें उत्तम के बीस, मध्यम के पन्द्रह और अधम के तेंतीस राग गिनाए हैं।

<u>2. स्वर प्रकरण</u> – इस प्रकरण में सर्वप्रथम संगीत की महिमा(प्रशंसा) की गई है यथा रोता हुआ बालक संगीत सुनते ही हँसने लगता है, मृग संगीत के प्रभाववश अपने प्राणों को बहेलिए के हाथ में दे देता है, कालानाग भी संगीत के वश में आकर अपने आपको समर्पित कर क्रोध मुक्त हो जाता है, आदि।

अनादि काल से जो संगीत चला आ रहा है वह गांधर्व है जिसकी रचना ब्रह्मा ने की है और जिसका उद्देश्य आत्म–कल्याण है। इसके विपरीत गान वाग्गेयकार द्वारा रचा गया है जिसका उद्देश्य जन मन रंजन है। जब आत्मा को बोलने की इच्छा होती है तब वह मन को प्रेरित करती है, मन देहस्थ अग्नि को प्रेरणा देता है, अग्नि वायु का चलन करती है तब ब्रह्म–ग्रन्थि स्थित वायु क्रमशः ऊपर चढ़ती हुई नाभि, हृदय, कण्ठ, मूर्धा और मुख इन स्थानों से पाँच प्रकार के नाद(ध्वनि) उत्पन्न करता हैं।

नाद के पाँच भेद है– अतिसूक्ष्म, सूक्ष्म, अपुष्ट, पुष्ट और कृत्रिम। जिसमें हृदय कण्ठ व मूर्धा में 22 नाड़ियों से टकराकर 22 श्रुतियों की उत्पत्ति का उल्लेख हैं तत्पश्चात स्वर की परिभाषा दी गई है, कहा गया है कि स्वर स्निग्ध और स्वयं आनन्द देने वाला नाद होता है। प्राचीन ग्रन्थकारों की भांति रामामात्य ने 4, 7, 9, 13, 17, 20 और 22 क्रम की श्रुतियों पर अपने शुद्ध स्वर सा, रे, ग, म, प, ध और नि स्वीकार किए हैं जिसे मुखारी नाम दिया जो उत्तर–संगीत में सा, <u>रे</u> रे म प <u>ध</u> ध होते हैं। विकृत स्वरों के विषय में संगीत रत्नाकर के 12 विकृत स्वरों में से केवल 7 विकृत स्वर ग्रन्थकार ने स्वीकार किए हैं। शारंगदेव के अच्युत–षड्ज, विकृत–ऋषभ, अच्युत–मध्यम, कैशिक–पंचम और विकृत धैवत को रामामात्य ने यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि ये अपनी श्रुति को नहीं छोड़ते यानी इनकी अलग ध्वनि नहीं है। अतः वे इन पाँच स्वरों नहीं मानते। शेष 7 विकृत स्वरों में से 3 के नवीन संयुक्त नाम च्युत–षड्ज को च्युत–षड्ज–निषाद, च्युत–मध्यम को च्युत–मध्यम–गांधार और मध्यम–ग्रामिक–पंचम को च्युत–पंचम–मध्यम नाम दिए हैं। शेष चार प्राचीन नामों को ही स्वीकार किया है जो कि साधारण–गांधार, अन्तर–गांधार, कैशिक–निषाद व काकली–निषाद हैं। तीन स्वरों, जिनके संयुक्त नाम हैं के विषय में ग्रन्थ में कहा गया है कि च्युत–षड्ज–निषाद, निषाद का च्युत–मध्यम–गांधार, गांधार का और च्युत–पंचम–मध्यम, मध्यम का चढ़ा हुआ रूप है तथा चूँकि च्युत–षड्ज–निषाद, निषाद का चढ़ा हुआ रूप है तथा षड्ज के क्षेत्र में है अतः उसका नाम दोनों के संयोग से च्युत–षड्ज–निषाद रखा गया। इसी प्रकार च्युत–मध्यम–गांधार और च्युत–पंचम–मध्यम को भी स्पष्ट किया गया है।

इनके अतिरिक्त व्यवहार में चार स्वरों के दो–दो नाम हैं जैसे शुद्ध–गांधार को ऋषभ कहा जाएगा तो उसे पंचश्रतिक–ऋषभ, जब साधारण–गांधार को ऋषभ कहा जाएगा तो उसे षट्श्रुतिक–ऋषभ कहा जाएगा। इसी तरह शुद्ध–निषाद को जब धैवत कहा जाएगा तो उसे षट्श्रुतिक–धैवत और कैशिक–निषाद को जब धैवत कहा जाएगा तो षट्श्रुतिक धैवत कहा जाएगा। इन्हें अलग नाम तो दिया गया है पर इनकी अलग ध्वनि नहीं है इसलिए इन की गणना विकृत स्वरों में अलग से नहीं की गई। आगे रामामात्य के शुद्ध–विकृत स्वर सारिणी में स्पष्ट हैं, जिससे स्वरों का स्थान स्पष्ट हो जायेगा :–

श्रुति संख्या	शुद्ध—स्वर	विकृत—स्वर	झूठे विकृत—स्वर
1		कैशिक—निषाद	षट्श्रुतिक—धैवत
2		काकली—निषाद	
3		च्युत—षड्ज—निषाद	
4	षड्ज		
5			
6			
7	ऋषभ		
8			
9	गांधार		पंचश्रुतिक—ऋषभ
10		साधारण—गांधार	षट्श्रुतिक—ऋषभ
11		अन्तर—गांधार	
12		च्युत—मध्यम—गांधार	
13	मध्यम		
14			
15			
16		च्युत—पंचम—मध्यम	
17	पंचम		
18			
19			
20	धैवत		
21			
22	निषाद		पंचश्रुतिक—धैवत

हिन्दुस्तानी स्वरों के अनुसार रामामात्य के स्वरः—

संख्या	हि.—स्वर	शुद्ध—स्वर	विकृत—स्वर	झूठे—स्वर
1	स	सा		
2	रे	रे		
3	रे	ग		पंचश्रुतिक—रे
4	ग		साधारण—ग	षट्श्रूतिक—रे
5	ग		अन्तर—ग, च्युत म—ग	
6	म	म		
7	म		च्युत प—म	
8	प	प		
9	ध	ध		
10	ध	नि		पंचश्रुतिक—ध
11	नि		कैशिक—नि	षट्श्रुतिक—ध
12	नि		काकली—नि, च्युत सा—नि	
13	सां	सां	सां	

3. वीणा प्रकरण — वीणा पर चार तारों को क्रमशः प्रथम को अनुमन्द्र—षड्ज में जिसे उत्तर में अतिमन्द्र कहा जाता है, मिलाने का निर्देश है। दूसरे को अनुमन्द्र—पंचम में, तीसरे को मन्द्र—षड्ज में और चौथे तार को मन्द्र—मध्यम में मिलाने के लिए कहा गया है। तत्पश्चात् छह परदों पर क्रमशः स्वर बताए गए हैं। खुले तार पर अनुमन्द्र—षड्ज, प्रथम पर्दे पर शुद्ध—गांधार, तीसरे पर साधारण—गांधार, चौथे पर च्युत—मध्यम—गांधार, पाँचवें पर मध्यम और छठे पर्दे पर च्युत—पंचम—मध्यम बताए हैं। इस प्रकार शेष तारों पर भी इसी क्रमानुसार स्वर बताए गए हैं।

4. मेल प्रकरण – इस प्रकरण में 20 मेलो का वर्णन है साथ ही मेलों के दो मतों का उल्लेख किया गया है। गायकों के बीस और वैणिकों(वीणा–वादक) के 15 मेल कहे गए हैं। निम्न सारिणी में 15 के बाद के मेलों में च्युत–षड्ज–निषाद और च्युत–मध्यम–गांधार के स्थान पर काकली–निषाद और अन्तर–गांधार हैं। उत्तर–संगीत की दृष्टि से ये दोनों स्वर शुद्ध–निषाद और शुद्ध–गांधार ही हैं। रामामात्य अन्तर और काकली नाम कम प्रयोग करना चाहते हैं, क्योंकि शारंगदेव ने अन्तर और काकली स्वरों का अल्प मात्रा में प्रयोग करने का निर्देश दिया है।

आगे हिन्दुस्तानी स्वरों के साथ रामामात्य के प्रारम्भ के छः मेल निम्न सारिणी में दिए गए हैः–

मेल–नाम	मेलगत–स्वर							हिन्दुस्तानी–स्वर
	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	
1.मुखारी	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	सा रे रे म प ध ध सां
2.मालवगौल	शुद्ध	शुद्ध	च्युत म–ग	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	च्युतसा–नि	सा रे ग म प ध नि सां
3.श्री	शुद्ध	पं.श्रु.	साधा.	शुद्ध	शुद्ध	पं.श्रु.	कैशिक	सा रे ग म प ध नि सां
4.सारंगनाट	शुद्ध	पं.श्रु.	च्युत म–ग	शुद्ध	शुद्ध	पं.श्रु.	च्युतसा–नि	सा रे ग म प ध नि सां
5.हिन्दोल	शुद्ध	पं.श्रु.	साधा.	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	कैशिक	सा रे ग म प ध नि सां
6.शुद्धरामक्रिया	शुद्ध	शुद्ध	च्युत म–ग	च्युत म–ग	शुद्ध	शुद्ध	च्युतसा–नि	सा रे ग म प ध नि सां

5. राग प्रकरण – स्वरमेलकलानिधि के इस प्रकरण में रागों के उत्तम, मध्यम और अधम ये तीन वर्ग किए गए है– बीस राग उत्तम, पन्द्रह राग मध्यम और तेंतीस राग अधम माने हैं। बीस उत्तम राग जो कि मेल नाम वाले आश्रय राग हैं इनमें आलाप, गीत व प्रबन्ध हो सकते हैं और उल्लेख है कि ये संकीर्ण नहीं हैं जिससे इनमें विस्तार की सम्भावना अधिक है। पन्द्रह मध्यम रागों में आलाप के विस्तार की सम्भावना अपेक्षाकृत कम है और वे अधिक प्रयोग में नहीं हैं इसलिए ऐसे रागों को मध्यम वर्ग में रखा गया है। जो तेंतीस राग अधम वर्ग के हैं वे पूरी तरह संकीर्ण हैं। रागों में संरचनागत भ्रम होने के कारण ये अधम कहलाते हैं। ऐसे रागों में प्रबन्ध नहीं होते, इसका भी ग्रन्थ में वर्णन है।

ग्रन्थ में सभी रागों को वर्णन करते समय प्रत्येक राग का ग्रह, अंश, न्यास दिया गया है। जो स्वर राग में नहीं लगते उनका भी वर्णन है। अधिकांश रागों को गाने का समय भी दिया गया है। अन्त में ग्रन्थ लिखने की तिथि, जो कि शक् संवत् 1472 की श्रावण–साधारण–मास की शुक्ल–पक्ष की दसवीं तिथि दी गई है, के साथ ग्रन्थ का समापन कर दिया गया है। आगे सारिणी में रामामात्य के कुछ मेलों में रागों को वर्गीकृत करके दर्शाया गया है :–

क्र.सं.	मेल नाम	अन्य राग
1	मुखारी	1. मुखारी
2	मालवगौड़	1. मालवगौड़, 2.ललिता, 3.वौली, 4. सौराष्ट्र, 5.गुर्जरी, 6.मेचवौली, 7. फलमंजरी, 8.गुण्डक्री, 9.सिन्धुरामक्री, 10.छायागौल, 11.कुरंजी, 12.कन्नड वङ्गाल, 13.मङ्गल कैशिक, 14.मलहरी
3	श्री	1.श्रीराग, 2.भैरवी, 3.गौली, 4.धन्यासी, 5.शुद्धभैरवी, 6.बेलावली, 7.मालवश्री, 8.शंकराराभरण, 9.आंधाली, 10.देवगांधार, 11.मध्यमादि
4	सारङ्गनाट	1. सारङ्गनाट, 2.सावेरी, 3. सालङ्गभैरवी, 4.नटनारायणी, 5.शुद्धबसन्त, 6. पूर्वगौड, 7. कुन्तलवराली, 8.भिन्नषड्ज, 9.नारायणी
5	हिन्दोल	1.हिन्दोल, 2.मार्गहिन्दोल, 3.भूपाल
6	शुद्धरामक्री	1.शुद्धरामक्री, 2.वौली, 3.आर्द्रदेशी, 4.दीपक
7	देशाक्षी	1.देशाक्षी
8	कन्नड गौल	1. कन्नडगौल, 2.घण्टारव, 3.शुद्धबङ्गल, 4. छायानट, 5.तुरूष्कतोर्ड, 6. नागध्वनि, 7. देवक्रिया

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. स्वरमेलकलानिधि के स्वर प्रकरण को समझाईये।
2. रामामात्य के मेल वर्गीकरण के विषय में संक्षेप में वर्णन करिए।
3. स्वरमेलकलानिधि ग्रन्थ में किन प्रमुख रागों को वर्णित किया गया है?

2.7 पं0 दामोदर कृत 'संगीत दर्पण' ग्रन्थ का अध्ययन

संगीत दर्पण नामक संस्कृत ग्रन्थ के रचनाकार पं0 दामोदर थे। इस ग्रन्थ में छः अध्यायों के अन्तर्गत संगीत की व्याख्या की गई है। अध्यायों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं – स्वराध्याय, रागाध्याय, प्रबन्धाध्याय, वाद्याध्याय, तालाध्याय और नृत्याध्याय। पं0 दामोदर ने रागों का वर्णन देवताओं के स्वरूपों में किया है जिनके द्वारा आज का संगीतकार कोई विशेष लाभ नहीं उठा सकता है। बस श्रृद्धावान तथा उपासक व्यक्तियों के लिए यह ग्रन्थ की सामग्री लाभप्रद हो सकती है। इस ग्रन्थकार ने स्वरों के रंग भी बतलाये हैं। परन्तु यह रंग वर्तमान में प्रचलित रागों के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकते है। क्योंकि पं0 दामोदर ने संगीत रत्नाकर(13वीं सदी) के स्वराध्याय को लिया है और रागाध्याय किसी अन्य ग्रन्थ से लिया गया मालूम होता है। रागाध्याय में 17वीं सदी में प्रयुक्त होने वाले रागों का वर्णन है। इसलिए 13वीं सदी के स्वरों के रंग 17वीं सदी के रागों के लिए नितान्त अनुप्रयुक्त प्रतीत होते है।

पं0 दामोदर मुगल बादशाह जहाँगीर के समय में हुए है। उसी समय संगीत दर्पण की रचना हुई। 17वीं शताब्दी में संगीत पद्धति में काफी परिवर्तन हुए। श्रुति प्रमाण एक सा नहीं रहा। षड्ज एवं पंचम स्वरों को अचल मान लिया गया। ऐसे युग में 13वीं शताब्दी के स्वरों का विशेष महत्व नहीं रहा। फिर भी यह ग्रन्थ संगीत जिज्ञासुओं के लिए मनन की वस्तु रही है। संगीत दर्पण ग्रन्थ का अनुवाद फारसी तथा गुजराती भाषाओं में भी हो चुका है और वर्तमान में इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद संगीत कार्यालय, हाथरस द्वारा प्रकाशित हो चुका है।

<u>स्वराध्याय</u> – पं0 दामोदर ने 'संगीत दर्पण' में संगीत रत्नाकर का अनुकरण करते हुए कहा है कि श्रुत्यनन्तर भावी स्निग्ध, श्रोताओं के चित्त का स्वयं रंजन करने वाला नाद स्वर कहलाता है। पं0 दामोदर ने शुद्ध एवं विकृत स्वरों का वर्णन इस प्रकार किया है :–

श्रुति का नाम	शुद्ध स्वर	विकृत स्वर
1. तीव्रा		कैशिक– नि
2. कुमुद्वती		काकली– नि
3. मंदा		च्युत– सा
4. छन्दोवती	सा	अच्युत– सा
5. दयावती		
6. रंजनी		
7. रतिका	रे	विकृत– रे
8. रौद्री		
9. क्रोधा	ग	
10. वज्रिका		साधारण– ग
11. प्रसारिणी		अन्तर– ग
12. प्रीति		च्युत– म
13. मार्जनी	म	अच्युत– म
14. क्षिति		
15. रक्ता		
16. संदीपनी		मध्यम ग्रामिक–प
17. आलापिनी	प	

18. मदन्ती		
19. रोहिणी		
20. रम्या	ध	विकृत– ध
21. उग्रा		
22. क्षोभिणी	नि	

<u>**राग–रागिनी वर्गीकरण**</u> – पं0 दामोदर के 'संगीत दर्पण' में राग–रागिनी वर्गीकरण को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। प्रमुख ग्रन्थों में मुख्य रूप से दो प्रकार से वर्गीकरण मिलता है। 1. विशुद्ध राग–रागिनी के आधार पर 2. मेलों या संस्थानों के अन्तर्गत

पं0 दामोदर के 'संगीत दर्पण' राग–रागिनी, राग–माला में राग–रागिनी और पुत्र है तथा दोनों में राग–ध्यान भी हैं। राग–रागिनी पद्धति में राग औडव हैं। औडव रागों में स्वरों के बड़े–बड़े अन्तराल होने के कारण गम्भीरता और प्रौढ़ता आती है। जिसका सम्पूर्ण रागों के छोटे अन्तरालों में प्रायः अभाव रहता है। इसलिए रागों में पुरूषत्व की और इनसे भिन्न रागों में स्त्रीत्व की अनुभूति स्वाभाविक रूप से होने के कारण राग और रागिनी नाम दिये गये हैं।

पं0 दामोदर कृत 'संगीत दर्पण' में रागोत्पत्ति को शिव से सम्बन्धित बताया गया है। इनके अनुसार शिव तथा शक्ति दोनों के योग से रागोत्पत्ति हुई। महादेव के पाँच राग तथा पार्वती के मुख से छठा राग उत्पन्न हुआ। शिव ने जब नाट्य(नृत्य) प्रारम्भ किया, तो उनके सद्योवक्त्र मुख से श्री राग, वामदेव के मुख से बसंत, अधोर मुख से भैरव, तत्पुरूष मुख से पंचम, ईशान मुख से मेघ तथा नृत्य के प्रसंग में पार्वती के मुख से नट्नारायण राग उद्भूत हुआ।

राग और रागिनी ये दो शब्द क्रमशः पुरूष और स्त्री के वाचक हैं। पुरूष और स्त्री उस द्वन्द्व के प्रतीक हैं जो सृष्टि की उत्पत्ति के मूल से हैं। पं0 दामोदर ने 'संगीत दर्पण' में तीन मतों का उल्लेख किया है– 1. सोमेश्वरमत, 2. हनुमन्तमत, 3. रागार्णमत। इनके अनुसार राग और उनकी रागिनियों के नाम भी दिये हैं। तीनों मतों के राग नामों और उनकी रागिनियों के नाम व संख्या में अन्तर हैं। राग सभी में 6 है लेकिन पहले मत में प्रत्येक की छः–छः रागिणियाँ है और अन्य दो में पाँच–पॉच। 'संगीत दर्पण' में शिव मत के प्रमुख 6 राग निम्न है– श्रीराग, बसन्त, पंचम, मेघ, भैरव, बृहन्नाट। हनुमन्त के 6 राग है – भैरव, कौशिक, हिन्दोल, दीपक, श्रीराग और मेघ।

राग और रागिनियों के इस विवेचन में कुछ बातें मनोरंजक है। रागों को पुरूष और रागिनियों को उनकी स्त्रियाँ अथवा पत्नियाँ माना गया है। पति–पत्नी के इस सम्बन्ध को स्थापित करने के साथ ही तत्कालीन लेखकों को रागों के सन्तान की चिन्ता हुई। अर्थात प्रत्येक राग के कई पुत्र माने गये। साथ ही प्रत्येक राग का भार्याओं, पुत्रों तथा पुत्रवधुओं सहित एक विस्तृत परिवार स्थापित कर दिया गया। वस्तुतः रागों के वर्गीकरण का यह भी एक ढंग है।

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. पं0 दामोदर मुगल बादशाह .... के समय में हुए।
2. संगीत दर्पण में स्वराध्याय में .... मत का अनुकरण किया है।

ख) सही/गलत बताईये :–

1. संगीत दर्पण में नौ अध्याय है।
2. पं0 दामोदर ने रागों का वर्णन देवताओं के स्वरूपों में किया है।
3. शिव मत के अन्तर्गत दस प्रमुख राग है।

2.8 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि संगीत सदा संस्कृति का संगी रहा है। संगीत के इतिहास को संस्कृति के इतिहास से अलग नहीं किया जा सकता है। भरत, मतंग, शारंगदेव, दामोदर तथा रामामात्य आदि की कृतियाँ संगीत की दृष्टि से महत्वपूर्ण रही हैं। भरत कृत 'नाट्यशास्त्र' संगीत एवं नाट्य का विश्वकोष है। स्वर के सूक्ष्मतम रूप श्रुति की व्याख्या सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ में पायी जाती है। इसके पश्चात मतंग कृत 'बृहद्देशी' में विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित संगीत शैलियों पर प्रकाश डाला गया है तथा वर्तमान संगीत में महत्वपूर्ण 'राग' नामक वस्तु का विवेचन भी सर्वप्रथम इसी ग्रंथ में पाया गया है। धरती पर सदियों वर्ष पूर्व से लेकर भरत काल तक एवं छठी—सांतवी शताब्दियों में रचित मतंगकृत बृहद्देशी आदि तथा मध्यकाल तक सभ्यता के सभी युगों में संगीत की उन्नत अवस्था का परिचय प्राप्त होता है जिसमें गायन, वादन, नृत्य और नाट्य को आवश्यकतानुसार महत्व एवं प्रश्रय प्राप्त था। अतः विभिन्न कालों में लिखित ग्रन्थों में जो संगीत के सिद्धान्त और नियम बताए गए हैं वे अब भी मान्य हैं। परन्तु इस पद्धति का विस्तृत पालन वर्तमान में नहीं होता है। संगीत शास्त्र सम्बन्धी विशिष्ट जानकारी जो हमें प्राचीन एवं मध्यकालीन ग्रन्थों में प्राप्त होती है उन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर आज भी पूरी सांगीतिक व्यवस्था टिकी हुई है।

2.9 शब्दावली

1. **श्रुति** — कानों से सुनी जा सकने वाली सूक्ष्म ध्वनि।
2. **ग्राम मूर्च्छना** — निश्चित सप्तक के सात स्वर समूहों के भाग को ग्राम कहते है। सप्तक में क्रमानुसार पॉच, छः या सात स्वरों का विशेष क्रमयुक्त प्रयोग मूर्च्छना कहलाता है।
3. **गमक** — आन्दोलित बलयुक्त स्वर का प्रयोग।
4. **गन्धर्व एवं गान** — यह मार्गदेशी संगीत का प्राचीन स्वरूप है। प्रथम ईश्वर प्राप्ति तथा दूसरा जन—रंजन के लिए हैं।
5. **जाति गान** — ध्रुपद व प्रबन्ध गायन के पूर्व एक प्राचीन गान प्रकार।
6. **ग्रह एवं अंश स्वर** — संगीत रचना का सबसे प्रारम्भिक स्वर ग्रह स्वर है तथा इसके पश्चात महत्वपूर्ण स्वर अंश स्वर है।

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

<u>2.4 के प्रश्नोत्तर</u> :—

क) सही/गलत बताइए :—

1. गलत 2. सही 3. गलत

ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति :—

1. कुतप 2. अठ्ठाईस

<u>2.5 के प्रश्नोत्तर</u> :—

क) एक शब्द में उत्तर दो :—

1. पाँचवी से सातवीं शताब्दी 2. आठ 3. भिन्ना

ख) सही/गलत बताइए :—

1. सही 2. गलत

<u>2.7 के प्रश्नोत्तर</u> :—

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :—

1. जहाँगीर 2. संगीत रत्नाकर

ख) सही/गलत बताईये :—

1. गलत 2. सही 3. गलत

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुभाष रानी चौधरी(2002), संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त, कनिष्का पब्लिसर्स, नई दिल्ली।
2. डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे(1992), संगीत बोध, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
3. डॉ0 लक्ष्मी नारायण गर्ग(2001), राग विशारद भाग—1, संगीत कार्यालय, हाथरस।
4. विष्णु नारायण भातखण्डे(1966), उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, संगीत कार्यालय, हाथरस।

2.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. लक्ष्मी नारायण गर्ग, बसन्त(1997), संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. शान्ति गोबर्धन(1989), संगीत शास्त्र दर्पण भाग—2, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
3. पं0 जगदीश नारायण पाठक(1995), संगीत शास्त्र प्रवीण, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भरत के नाट्यशास्त्र का विस्तार पूर्वक विवेचन कीजिए।
2. मध्यकालीन ग्रन्थ 'स्वरमेलकलानिधि' व 'संगीत दर्पण' के विषय में संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

इकाई 3 – संगीत संबंधी विषयों पर निबन्ध लेखन

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 निबन्ध की व्याख्या
3.4 निबन्ध के अवयव
3.4.1 भूमिका
3.4.1.1 संगीत शिक्षा विषय की भूमिका
3.4.2 विषय वस्तु
3.4.2.1 गुरूमुख द्वारा संगीत शिक्षा
3.4.2.2 संगीत संस्थाओं द्वारा संगीत शिक्षा
3.4.2.3 विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में संगीत शिक्षा
3.4.3 उपसंहार – संगीत शिक्षा विषय पर
3.5 सारांश
3.6 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.7 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0आई0–102) के तृतीय खण्ड की तीसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप विद्वान संगीतज्ञों के महत्वपूर्ण योगदान तथा उनकी संगीत साधना के प्रति लगन एवं परिश्रम को जान चुके होंगे। आप भारतीय संगीत के ग्रन्थों का ज्ञान भी प्राप्त कर चुके होंगे।

इस इकाई में निबन्ध लेखन के विषय में आपको कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों से अवगत कराया जाएगा। निबन्ध लिखते समय किन–किन बातों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है यह भी इस इकाई में वर्णित है।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप निबन्ध लेखन की विधि तथा निबन्ध लेखन के अवयवों से परिचित होंगे। आप किसी भी विषय पर निबन्ध लिखने में सक्षम हो सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

- निबन्ध लेखन के अवयवों का सही प्रयोग कर सकेंगे।
- अपनी लेखन शैली का विकास कर सकेंगे।
- किसी भी विषय में आप व्यवस्थित रूप से निबन्ध प्रस्तुत कर सकेंगे।

3.3 निबन्ध की व्याख्या

निबन्ध के विषय में आपने पूर्व में काफी सुना है तथा प्राथमिक कक्षाओं से ही निबन्ध लेखन का अभ्यास कराया जाता है। प्रत्येक स्तर पर निबन्ध का स्तर भी पृथक होता है। निबन्ध किसी विषय विशेष की समग्र रूप में व्यवस्थित व्याख्या है। निबन्ध में विषय से सम्बन्धित समस्त पहलुओं पर विचार प्रस्तुत किये जाते है। अतः निबन्ध में विषय की व्याख्या का स्वरूप व्यापक हो जाता है। विषय से सम्बन्धित पूर्व की उपलब्ध जानकारी को निबन्ध में समाहित कर उसका विश्लेषण किया जाता है और लेखक समालोचना के लिए भी स्वतंत्र रहता है। निबन्ध के माध्यम से लेखक व्याप्त भ्रान्तियों को भी दूर करने की चेष्टा करता है। इसी सन्दर्भ में निबन्ध और लेख के अन्तर को भी समझने की आवश्यकता है।

लेख प्रायः समस्या को लेकर आरम्भ किया जाता है एवं समस्या का निराकरण ही किसी लेख का मूल उद्देश्य रहता है। विद्यालय स्तर पर आपको दृश्यों का ऑखों देखा वर्णन निबन्ध के रूप में लेखन का अभ्यास करवाया गया है। परन्तु विश्वविद्यालय स्तर पर निबन्ध, विषय से ही सम्बन्धित रहता है और उस विषय के बारे में आपको समस्त जानकारी और यदि आवश्यक हो तो गुण–दोष के साथ प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। लेख सामान्य विषय पर वक्तव्य रूप में रहता है। निबन्ध लेखन अभ्यास से ही आप लेख लिखने एवं शोध पत्र लिखने में भी सक्षम हो जाते है। अतः निबन्ध लेखन के अभ्यास से आपकी लेखन क्षमता बढ़ती है और आप अपने विचारों को कलम के माध्यम से प्रस्तुत करने की तकनीक भी विकसित कर पाते हैं। इस ईकाई में स्नातकोत्तर स्तर के विषयों के निबन्ध की लेखन विधि पर चर्चा की जाएगी।

3.4 निबन्ध के अवयव

किसी भी विषय पर निबन्ध को प्रायः निम्न भागों में बॉटकर विषय की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं:

1. भूमिका **2. विषयवस्तु** **3. उपसंहार**

3.4.1 भूमिका – इसके अन्तर्गत विषय के बारे में जानकारी देते हुए व्याख्या के अन्तर्गत आने वाले सन्दर्भो के बारे में बताते है। भूमिका के माध्यम से निबन्ध का स्वरूप पता चल जाता है। व्याख्या किन–किन बिन्दुओं पर केन्द्रित होनी है इसका संक्षिप्त परिचय भी भूमिका के माध्यम से दिया जाता हैं। भूमिका में विषय प्रवेश प्रस्तुत किया जाता है अर्थात विषय क्या है एवं विषय पर निबन्ध के माध्यम से हम विषय के सन्दर्भ में क्या–क्या चर्चा करेंगे।

उदाहरण के रूप में संगीत शिक्षा विषय के माध्यम से आपको निबन्ध की लेखन शैली से परिचित कराएँगे।

3.4.1.1 संगीत शिक्षा विषय पर भूमिका – प्राचीन काल से ही संगीत का सन्दर्भ हमें सामवेद से प्राप्त होता है तथा वैदिक समय में ऋचाओं के गान की शिक्षा गुरूमुख से देने की परम्परा थी और इस परम्परा का निर्वाह काफी समय तक रहा। संगीत का वास्तविक स्वरूप क्रियात्मक है। अतः इसकी शिक्षा भी क्रियात्मक रूप में देने से ही संगीत का स्वरूप स्पष्ट हो पाता है। यद्यपि संगीत से सम्बन्धित अवयवों की व्याख्या समय–समय पर विभिन्न संगीत मनीषियों के द्वारा दी जाती रही है परन्तु संगीत को क्रियात्मक स्वरूप में प्रस्तुत करने के लिए शिष्य को गुरूमुख से ही शिक्षा ग्रहण करना होती थी जिसके लिए गुरूकुल की व्यवस्था रहती थी। वर्तमान में संगीत शिक्षा का स्वरूप बदल चुका है जिसकी चर्चा आगे की जाएगी। संगीत को विषय के रूप में समझा जाने लगा है जिससे उसकी शिक्षा भी उसी के अनुरूप होने लगी है। जबकि संगीत को कला के रूप में ही समझने की आवश्यकता है। वर्तमान में संगीत हेतु शिक्षा के विभिन्न माध्यमों का अध्ययन कर उनके गुण दोष पर इस निबन्ध के माध्यम से विचार किया जाएगा।

संगीत शिक्षा विषय पर निबन्ध की भूमिका उदाहरण स्वरूप आपके लिए प्रस्तुत की गई है जिससे आप किसी भी विषय पर निबन्ध हेतु भूमिका लिखने में सक्षम हो पाएंगे।

3.4.2 विषयवस्तु – भूमिका के पश्चात निबन्ध के विषय की विषय वस्तु प्रस्तुत की जाती है जिसमें विषय से सम्बन्धित सभी सन्दर्भो को प्रस्तुत किया जाता है। किसी विषय पर विषयवस्तु किस प्रकार लिखी जाती है इसका ज्ञान संगीत शिक्षा विषय पर उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत विषयवस्तु से जान सकेंगे।

संगीत शिक्षा विषय की विषयवस्तु – पहले संगीत की शिक्षा गुरूमुख से ही प्राप्त की जाती थी। परन्तु बाद में संगीत शिक्षा के नये स्वरूप भी स्थापित हुए संगीत शिक्षा स्वरूप निम्न प्रकार है।

1. गुरूमुख द्वारा संगीत शिक्षा।
2. संगीत संस्थाओं द्वारा संगीत शिक्षा।
3. विद्यालयों एव विश्वविद्यालयों द्वारा संगीत शिक्षा।

3.4.2.1 गुरूमुख द्वारा संगीत शिक्षा – संगीत की शिक्षा शिष्य द्वारा गुरू के पास रहकर ही प्राप्त की जाती थी। इस शिक्षा पद्धति में शिष्य को अनुशासित होकर शिक्षा प्राप्त करनी होती थी। गुरू द्वारा शिष्य की लगन, धैर्य आदि को परखकर शिष्य को स्वीकार किया जाता था। गुरू द्वारा शिष्य को स्वीकार करने के पश्चात शिष्यत्व की औपचारिक घोषणा 'गंडा रस्म' अदायगी के साथ होती थी। इसमें गुरू और शिष्य एक दूसरे के 'धागा' बाँधकर प्रतिबद्धता का संकल्प लेते थे। इस प्रकार की शिक्षा में कोई निश्चित पाठ्यक्रम नहीं होता था और न ही संगीत शिक्षा की समयावधि निश्चित होती थी। गुरू द्वारा शिष्य की क्षमता के आधार पर ही शिक्षा दी जाती थी। एक ही गुरू के कई शिष्य होते थें। परन्तु यह आवश्यक नहीं था कि सबको एक ही शिक्षा दी जाए। दी हुई संगीत शिक्षा का अभ्यास भी गुरू के निर्देशन में ही होता था। संगीत शिक्षा के अतिरिक्त संगीत सुनने का मार्ग निर्देशन का उद्देश्य यह था कि शिष्य अपना विवेक एवं धैर्य ना खो बैठे। इस प्रकार की शिक्षा में धैर्य का बहुत महत्व था और लगन से गुरू द्वारा दिये गये अभ्यास के नियमों से कठिन अभ्यास करने की आवश्यकता होती थी। गुरू जब तक शिष्य को कार्यक्रम प्रस्तुत करने के अनुकूल नहीं समझता था तब तक शिष्यों को कार्यक्रम प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं होती थी बल्कि शिष्य को कार्यक्रम के

योग्य समझने के पश्चात शिष्य को संगीतकारों के मध्य प्रस्तुत किया जाता था जिससे वह सभी संगीतज्ञों का आशीर्वाद प्राप्त करें। इस प्रकार की संगीत शिक्षा में शिष्य, गुरू के सानिध्य में संगीत के गूढ़ रहस्यों को जानता था। संगीत में घराने स्थापित हुए एवं घरानों की शिक्षा इस संगीत शिक्षा पद्धति में ही सम्भव थी। शिष्य अपने गुरू के घराने से सम्बन्धित हो जाता था और उस घराने का प्रतिनिधित्व प्राप्त करने में अपना गौरव समझता था।

<u>3.4.2.2 संगीत संस्थानों द्वारा संगीत शिक्षा</u> – आधुनिक समय में संगीत संस्थानों का महत्व बढ़ गया है। पंडित विष्णुनारायण भातखण्डे एवं विष्णुदिग्बर पलुस्कर ने संगीत शिक्षा का प्रचार इस प्रकार किया जिससे संगीत क्रियात्मक रूप में विकसित होने लगा। गुरूमुख शिक्षा पद्धति में बहुत कम लोग ही शिक्षा प्राप्त कर पाते थे। अतः दो संगीत मनीषियों ने संगीत के अधिक प्रचार एवं प्रसार हेतु संगीत संस्थानों की कल्पना कर पंडित विष्णु नारायण भतखण्डे द्वारा लखनऊ में 'मैरिस कालेज आफ म्यूजिक' एवं विष्णु दिगम्बर पलुस्कर द्वारा पूना में 'गन्धर्व मंडल' की स्थापना की गई जिसके अन्तर्गत देश के कई शहरों में 'गन्धर्व संगीत महाविद्यालय' के नाम से संगीत शिक्षण संस्थान खोले गये। यह संगीत शिक्षण की औपचारिक व्यवस्था का आरम्भ था। इन संस्थानों में प्रत्येक वर्ष के लिए पाठ्यक्रम निश्चित किये गये तथा वर्ष के अन्त में परीक्षा की भी व्यवस्था की गई। इन संस्थानों में संगीत के गुणीजन, गुरू अथवा उस्तादों को संगीत शिक्षा हेतु आमंत्रित किया गया और इनके लिए किसी प्रकार के औपचारिक प्रमाण–पत्रों की बाध्यता नहीं रखी गई ।

संगीत के विद्यार्थियों को परीक्षा में सफल होने पर औपचारिक प्रमाण–पत्र देने की व्यवस्था भी की गई। संगीत की हर विधा और हर अंग के लिए विशेषज्ञ रखे गये। प्रतिदिन संगीत शिक्षा का समय भी निर्धारित किया गया तथा अन्य संस्थानों की भाँति इन संस्थानों में भी उत्सव एवं त्यौहारों पर अवकाश का प्राविधान था। जबकि गुरूमुख शिक्षा पद्धति में इस प्रकार की व्यवस्था नहीं रहती थी और शिष्य को गुरू के पास रहकर ही सीखना होता था और गुरू द्वारा शिष्य को किसी समय भी शिक्षा के लिए बुला लिया जाता था जिसमें शिष्य को उपस्थित होना आवश्यक होता था। संगीत संस्थानों की शिक्षा में शिष्य गुरू के सानिध्य में निश्चित समय के लिए ही रहता है और प्राप्त की गई शिक्षा का अभ्यास स्वयं घर पर ही करता है। संगीत संस्थानों की शिक्षा पद्धति में गुरू का शिष्य के ऊपर नियंत्रण गुरूमुखी शिक्षा पद्धति की अपेक्षा कम रह पाता है। प्रारम्भ में इन संस्थानों में संगीत की शिक्षा हेतु पाँच–छः वर्षो का पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया। संस्थानों में पाँच–छः वर्ष की शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त भी यह माना गया कि इसके पश्चात भी शिष्य को गुरू के सानिध्य की निरन्तर आवश्यकता रहती है। इन दो संस्थानों की स्थापना के पश्चात प्रयाग (इलाहाबाद) में 'प्रयाग संगीत समिति' एवं पंजाब के चडीगढ़ क्षेत्र में प्राचीन कला संगीत संस्थान की स्थापना हुई। इन सभी संस्थानों ने देश के भिन्न–भिन्न शहरों में अपने केन्द्र स्थापित किये और इन केन्द्रों पर शिक्षा का प्रचार हुआ एवं विद्यार्थियों को प्रमाण–पत्र मिलने लगे।

गुरूमुखी शिक्षा में गुरू एवं शिष्य दोनों का ही लक्ष्य कलाकार बनना तथा बनाना होता था जिसके लिए शिष्य द्वारा अनुशासित अभ्यास किया जाता था और संगीत ही एकमात्र लक्ष्य रहता था। संगीत संस्थानो में ऐसे भी विद्यार्थी शिक्षा लेते थें जिनका लक्ष्य केवल संगीत ही नहीं होता था बल्कि वे संगीत की शिक्षा शौकिया रूप में लेते थे। अतः संगीत संस्थानों में संगीत के विद्यार्थियों को समूह में एकरूपता नहीं रहती थी। गुरू द्वारा भी एक ही कक्षा के समस्त विद्यार्थियों को लगभग एक जैसी

ही शिक्षा दी जाती थी जो कि संस्थानों के शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता एवं सीमा भी थी। अतः संगीत संस्थानों से शिष्य उस प्रकार की शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते थे जिस प्रकार की शिक्षा गुरू–शिष्य परम्परा पद्धति में प्राप्त होती थी। संगीत संस्थानों का उद्देश्य संगीत शिक्षा के माध्यम से संगीत का प्रचार एवं प्रसार था और यह सामान्य रूप से संस्थानो के उद्देश्य के बारे में कहा जाता था कि संस्थान तानसेन नहीं तो कानसेन तो बना ही देते हैं। अर्थात संगीत कलाकार ना भी बन पायें तो संगीत का एक अच्छा श्रोता तो बन ही जाता है। इन संगीत संस्थानों ने विभिन्न शहरों में अपने परीक्षा केन्द्र खोले जहाँ पर संगीत शिक्षा देने का भी प्रावधान किया गया तथा विद्यार्थी इन केन्द्रों से संगीत सीखकर प्रमाण–पत्र प्राप्त करने लगे। इन प्रमाण–पत्रों को सरकार के शिक्षा निदेशालय द्वारा मान्यता भी प्रदान की गई।

विद्यालयों में बिना इन संस्थानों के प्रमाण–पत्र के नियुक्तियाँ नहीं होती हैं। विद्यालय स्तर पर शिक्षक के लिए अन्य विषयों में बी. एड. अनिवार्य अर्हता है परन्तु संगीत विषय में शिक्षक होने के लिए बी.एड. के स्थान पर 'संगीत विशारद' एवं 'संगीत प्रभाकर' होना आवश्यक है जो कि इन संस्थानों द्वारा दिया गया प्रमाण पत्र है। इस व्यवस्था से इन केन्द्रों पर संगीत के प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों की भीड़ बढ़ गई। इन संगीत संस्थानों में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात कलाकार बनने के इच्छुक विद्यार्थियों को गुरू–शिष्य परम्परा के अन्तर्गत ही शिक्षा लेना अनिवार्य रहता है। इन संस्थानों द्वारा सामान्य संगीत के जिज्ञासु एवं विद्यार्थियों ने संगीत के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

3.4.2.3 विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों द्वारा संगीत शिक्षा – स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में संगीत विषय अन्य विषयों की भाँति पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में संगीत विषय का पाठ्यक्रम तैयार कर समय–सारिणी में इसका वादन (पीरियड) शिक्षण के लिए निश्चित किया गया। इनमें शिक्षण पाठ्यक्रम के अनुसार ही दिया जाता है और अध्यापक द्वारा सब विद्यार्थियों को समान रूप से ही अध्यापन कराया जाता है। स्नातक स्तर तक एक वादन प्रायः 45 मिनट का होता है जो कि संगीत की व्यवहारिकता के अनुकूल नहीं है क्योंकि 45 मिनट के अन्दर ही वाद्यों को स्वर में करना सम्भव नहीं हो पाता है। अतः देखा जा रहा है कि विश्वविद्यालय स्तर पर भी संगीत की मूल आवश्यकता वाद्यों को स्वर में करना विद्यार्थी पूर्ण रूप से नहीं सीख पाते हैं। स्नातक स्तर तक विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों को संगीत विषय के अतिरिक्त अन्य विषयों का भी अध्ययन करना होता है अतः विद्यार्थी संगीत के प्रति पूर्ण समर्पित नहीं हो पाता है। संगीत के लिए अधिक समय की आवश्यकता होती है, जिसमें अधिक से अधिक समय देने से ही संगीत कला को समझा जा सकता है।

विद्यालय, विश्वविद्यालय में संगीत विषय प्रारम्भ होने से संगीतज्ञों को व्यवसाय तो प्राप्त हुआ परन्तु इससे संगीत शिक्षा की गुणात्मकता पर प्रभाव पड़ा। यद्यपि विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में संगीत के विद्वान भी नियुक्त हुए परन्तु इन संस्थानों की व्यवस्था में उतने समय के लिए संगीत शिक्षक भी सीमा में बँध गये। गुरू–शिष्य परम्परा पद्धति में शिष्य पूर्ण रूप से संगीत के वातावरण में रहता था और संगीत संस्थानों में भी जितने समय के लिए वह संस्थान में है उतने समय तक वह संगीत के वातावरण में रहता था है परन्तु विद्यालय और विश्वविद्यालय में विद्यार्थी केवल संगीत के वादन(पीरियड) में ही संगीत के वातावरण से जुड़ा रहता है। विद्यालयों, विश्वविद्यालयों से उपाधि

सामान्य रूप में मिलती है जिसमें संगीत एक विषय के रूप में रहता है, जबकि संगीत संस्थानों में मिलने वाली उपाधि एवं प्रमाण पत्र केवल संगीत का ही मिलता है। गुरू–शिष्य परम्परा में तो कोई औपचारिक प्रमाण–पत्र नहीं होता है, इसमें शिष्य स्वयं अपनी शिक्षा का प्रमाण प्रस्तुत करता है। विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों में संगीत विषय की शिक्षा, स्नातकोत्तर उपाधि के लिए दी जाने लगी है जिसमें केवल संगीत विषय का ही अध्ययन विद्यार्थी को करना होता है।

विश्वविद्यालय स्तर पर केवल स्नातकोत्तर कक्षाओं में ही विद्यार्थी संगीत के वातावरण में रहता है जो मात्र दो वर्ष के पाठ्यक्रम में निबद्ध होता है। संगीत शिक्षा की गुणात्मकता स्नातकोत्तर स्तर पर ही हो पाती है जिसका स्वरूप संगीत संस्थानों की शिक्षा जैसा रहता है। स्नातकोत्तर कक्षाओं में विद्यार्थियों को संगीत के अध्ययन और अभ्यास का समय प्राप्त होता है। विश्वविद्यालय स्तर पर स्नातक की कक्षाओं में संगीत विषय का विद्यार्थी सीमित समय जो कि उसके लिए समय सारिणी में निश्चित किया गया उसमें ही संगीत शिक्षक के सम्पर्क में रहता है। इसी उपलब्ध समय में शिक्षक का उद्देश्य निर्धारित पाठ्यक्रम पूरा करने का भी होता है। अतः गुरू–शिष्य परम्परा पद्धति एवं संगीत संस्थान द्वारा शिक्षा पद्धति की तुलना में विश्वविद्यालय द्वारा दी जाने वाली संगीत शिक्षा की गुणवत्ता में कमी रहती है। स्नातकोत्तर में भी यही स्थिति रहती है परन्तु इसमें विद्यार्थी तथा शिक्षक के पास संगीत विषय के लिए अधिक समय रहता है।

संगीत के जिज्ञासु विद्यार्थी विश्वविद्यालय शिक्षा के अतिरिक्त संगीत संस्थानों एवं गुरू की सहायता भी प्राप्त करते हैं संगीत में शिक्षक बनने हेतु विश्वविद्यालय प्रमाण–पत्र की आवश्यकता होती है अतः विद्यार्थी संगीत हेतु विश्वविद्यालय में प्रवेश लेता है। विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को संगीत पढ़ाना उद्देश्य है। केवल विश्वविद्यालय की संगीत शिक्षा से विद्यार्थी का कलाकार बनना कठिन है और ना ही विश्वविद्यालय का यह उद्देश्य ही है। विश्वविद्यालय में विषय के सम्बन्धित आयामों से विद्यार्थी को परिचित कराया जाता है जिससे वह भविष्य के लिए अपने विकल्प चुन सके।

विश्वविद्यालय की उपाधि प्रमाण–पत्र का महत्व संगीत की शिक्षक अर्हता के रूप में ही है। व्यवसायिक कलाकार बनने में इसका कोई महत्व नहीं है। विद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर पर संगीत शिक्षक हेतु अर्हताएं एवं विश्वविद्यालय स्तर पर संगीत शिक्षक हेतु अर्हताएं व्यवहारिक नहीं कि जिससे इनमें सदैव योग्य संगीत शिक्षक नियुक्त नहीं हो पाते हैं। संगीत विषय मुख्य रूप से क्रियात्मक विषय है परन्तु नैट की परीक्षा जो कि विश्वविद्यालय में संगीत शिक्षक के लिए पास करना अनिवार्य अर्हता है। परन्तु इस परीक्षा में संगीत विषय हेतु विद्यार्थी के क्रियात्मक ज्ञान को नहीं परखा जाता है जबकि संगीत विषय के शिक्षक के लिए क्रियात्मक ज्ञान होना आवश्यक है।

अभी तक आपने संगीत शिक्षा विषय पर निबन्ध हेतु भूमिका एवं विषय वस्तु का अध्ययन किया जो कि निबन्ध लेखन के लिए उदाहरण स्वरूप आपको बताया गया। किसी विषय के निबन्ध पर उपसंहार लिखने के विषय में आप संगीत शिक्षा विषय निबन्ध पर नीचे लिखे गये उपसंहार से समझेंगे।

3.4.3 उपसंहार–संगीत शिक्षा विषय पर – संगीत शिक्षा गुरू–शिष्य परम्परा, संगीत संस्थानों के माध्यम से एवं विद्यालय व विश्वविद्यालय में एक विषय के रूप में दी जाती है। गुरू–शिष्य परम्परा में गुरू और शिष्य के मध्य अटूट सम्बन्ध बन जाता है और शिष्य के सानिध्य में रहकर संगीत के गूढ़ रहस्यों को सीखता है। इसमें गुरू एवं शिष्य दोनों का उद्देश्य कलाकार बनाना तथा बनना होता है। संगीत संस्थानों में भी केवल संगीत शिक्षा दी जाती है जिसमें विद्यार्थी सीमित समय के लिए ही गुरू के सम्पर्क में रहता है और विश्वविद्यालय शिक्षा में स्नातक स्तर पर तो बहुत ही कम समय के लिए विद्यार्थी संगीत के वातावरण में रहता है परन्तु संगीत शिक्षक बनने हेतु संस्थानों एवं विश्वविद्यालय में प्रमाण–पत्रों की आवश्यकता होती है।

संगीत के जिज्ञासु विद्यार्थियों के लिए यह आवश्यक है कि वह संस्थानों की शिक्षा अथवा विश्वविद्यालय की शिक्षा के साथ गुरू–शिष्य परम्परा पद्धति में भी किसी गुरू से शिक्षा प्राप्त करें जिससे उसके पास संगीत शिक्षक का व्यवसाय अथवा व्यवसायिक कलाकार बनने का विकल्प रहेगा। उपरोक्त कथन से यह निष्कर्ष न निकाला जाए कि विश्वविद्यालय संगीत शिक्षा से ही अच्छा संगीत शिक्षक बन सकता है। जबकि संगीत की सही शिक्षा प्राप्त ही अच्छा शिक्षक बनेगा। वर्तमान व्यवस्था में संगीत शिक्षक हेतु सभी माध्यमों का अपना महत्व है अतः विद्यार्थी को अपने निश्चित उद्देश्य के लिए इनका चयन करने की आवश्यकता है।

संगीत शिक्षा विषय पर निबन्ध के माध्यम से आपने निबन्ध लेखन के विषय में अध्ययन किया। कुछ अन्य संगीत सम्बन्धित विषयों की सूची दी जा रही है।

अभ्यास हेतु निबन्ध के विषयः–

1. फिल्मों में संगीत
2. संगीत में इलक्ट्रोनिक उपकरण का योगदान
3. लोकसंगीत एवं शास्त्रीय संगीत
4. भक्ति एवं संगीत
5. संगीत एवं अध्यात्म
6. संगीत एवं संचार माध्यम (रेडियो व टी. वी.)
7. संगीत में अवनद्य वाद्यों की भूमिका
8. संगीत गोष्ठी

जैसा कि आपको बताया जा चुका है प्रत्येक विषय के निबन्ध का आरम्भ भूमिका से किया जाता है और निबन्ध का समापन उपसंहार से किया जाता है। उपरोक्त विषयों की विषयवस्तु नीचे दी जा रही है जिसके आधार पर आप इन विषयों पर निबन्ध लिख सकेंगे।

1. **फिल्मों में संगीत**

   विषयवस्तु
   फिल्म में संगीत का प्रयोग
   पार्श्व गायन
   फिल्म में वाद्यों का प्रयोग
   गायन के साथ वाद्यों का प्रयोग
   पार्श्व संगीत में वाद्यों का प्रयोग
   फिल्मों में संगीत का स्थान एवं उपयोगिता

2. <u>संगीत में इलक्ट्रोनिक उपकरणों का योगदान</u>
 विषयवस्तु
 संगीत में प्रयोग होने वाले इलक्ट्रोनिक उपकरण
 (अ) इलक्ट्रोनिक तानपुरा
 (ब) इलक्ट्रोनिक तबला
 (स) इलक्ट्रोनिक लहरा मशीन
 संगीत के संरक्षण एवं शिक्षा में सहायक इलक्ट्रोनिक उपकरण
 1. ग्रामोफोन 2. टेपरिकार्डर

3. <u>लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत</u>
 विषयवस्तु
 लोक संगीत की पृष्ठभूमि
 शास्त्रीय संगीत का परिचय
 लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत का सम्बन्ध

4. <u>भक्ति एवं संगीत</u>
 विषयवस्तु
 भक्ति की व्याख्या
 विभिन्न धर्मों में भक्ति हेतु संगीत का प्रयोग
 1. हिन्दू 2. मुस्लिम 3. सिख 4. इसाई

5. <u>संगीत एवं आध्यात्म</u>
 विषयवस्तु
 संगीत की उत्पत्ति
 वैदिक कालीन संगीत
 आध्यात्म में संगीत का महत्व

6. <u>संगीत एवं संचार माध्यम</u>
 विषयवस्तु
 रेडियो में संगीत
 टेलीविजन में संगीत
 रेडियो तथा टेलीविजन का संगीत के प्रचार–प्रसार में भूमिका

7. <u>संगीत में अवनद्य वाद्य की भूमिका</u>
   विषयवस्तु
   संगीत का परिचय
   संगीत के तत्व
   संगीत के अवनद्य वाद्य
   संगीत में अवनद्य वाद्यों का प्रयोग
8. <u>संगीत गोष्ठी</u>
   विषयवस्तु
   संगीत गोष्ठी का परिचय
   संगीत गोष्ठी में कलाकार की भूमिका
   विभिन्न प्रकार की संगीत गोष्ठी
   संगीत गोष्ठी के श्रोता

उपरोक्त कुछ विषय आपके निबन्ध लेखन के अभ्यास के लिए दिए गए हैं। इन सभी विषयों पर आप निबन्ध लिखने का अभ्यास ऊपर अध्ययन कराई विधि के अनुसार करें। सभी विषयों पर निबन्ध के अवयव का क्रम भूमिका, विषयवस्तु एवं उपसंहार रहेगा। उपसंहार एवं भूमिका के प्रभावशाली होने से आपका निबन्ध उच्चस्तर का होता है यद्यपि विषय वस्तु भी महत्वपूर्ण है। उपसंहार में विषय वस्तु में की गई चर्चाओं अथवा विवरणों से प्रकट तथ्यों को परिणाम स्वरूप में प्रस्तुत किया जाता है। आप को इन सबका ज्ञान संगीत शिक्षा विषय पर उदाहरण स्वरूप निबन्ध के माध्यम से दिया गया है अतः उसी आधार पर आप उपरोक्त विषयों पर निबन्ध लेखन का अभ्यास करें।

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप निबन्ध लेखन की शैली से परिचित हो चुके होंगे। संगीत विषयों पर निबन्ध लेखन की शैली एवं विद्या से आपको इस इकाई के माध्यम से परिचित कराया गया। निबन्ध लेखन से आप अपने विचारों को लेखन के माध्यम से प्रकट करने की तकनीक विकसित करते है जो बाद में आपको शोधपत्र, लेख एवं शोध कार्य में सहायक सिद्ध होगी। उदाहरण स्वरूप दिए गए संगीत शिक्षा विषय पर निबन्ध से आप संगीत विषयों पर निबन्ध लेखन के विषय जान गए है एवं संगीत विषय पर लिखने में सक्षम होंगे। संगीत के गहन अध्ययन एवं संगीत के सन्दर्भों के अध्ययन से आप संगीत विषयों पर निबन्ध लिखने में सक्षम हो गए होंगे।

3.6 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वसन्त, *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. गर्ग, श्री लक्ष्मीनारायण, *निबन्ध संगीत*, संगीत कार्यालय, हाथरस।

3.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. इकाई में दिए गए अभ्यास हेतु निबन्ध विषयों में से किसी एक विषय पर निबन्ध लेखन कीजिए।

इकाई 1 – मसीतखानी गत का परिचय; पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत, स्थाई व अन्तरे के तोडे आदि को लिपिबद्ध करना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 मसीतखानी गत का परिचय
1.4 पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत व तोड़े
- 1.4.1 श्याम कल्याण
- 1.4.2 केदार
- 1.4.3 बिहागड़ा
- 1.4.4 पूरिया कल्याण
- 1.4.5 अहीर भैरव
- 1.4.6 भैरव
- 1.4.7 बैरागी
- 1.4.8 मालकौंस
- 1.4.9 झिंझोटी
- 1.4.10 जैजैवन्ती

1.5 सारांश
1.6 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0आई0–102) के चतुर्थ खण्ड की पहली इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप विद्वान संगीतज्ञों के महत्वपूर्ण योगदान तथा उनकी संगीत साधना के प्रति लगन एवं परिश्रम को जान चुके होंगे। आप भारतीय संगीत के ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।

इस इकाई में पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत व तोडों को प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई में आपकी सुविधा के लिये मसीतखानी गत की स्वरलिपियाँ प्रस्तुत की गई हैं।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप मसीतखानी गत तथा तोड़ों को लिपिबद्ध कर सकेंगे और इन्हे पढ़कर क्रियात्मक रूप में प्रस्तुत कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

1. मसीतखानी गत को स्वरलिपि के माध्यम से पढ़ एवं बजा सकेंगे।
2. स्वर को लिपिबद्ध कर सकेंगे तथा लिपिबद्ध स्वर को पढ़ सकेंगे।
3. तोड़ों के माध्यम से राग का विस्तार कर सकेंगे।

1.3 मसीतखानी गत का परिचय

फिरोज खॉ के पुत्र मसीत खॅा ने सितार वादन की एक शैली को विकसित किया जिसे मसीतखानी शैली कहते हैं। इसमें बजाई जाने वाली राग रचनाएँ मसीतखानी गत कहलाती हैं। इससे पूर्व सितार में बजाई जाने वाली सेनी घराने की गतों की कठिनाई और विस्तार के स्थान पर मसीतखानी गतों की सरलता, मधुरता तथा अल्प विस्तार ने संगीत प्रेमियों को आकर्षित किया तथा इसका प्रचार बढ़ता गया। सेनी घराने की गतें ताल की दो आवृत्तियों के स्थाई–अंतरे की होने के कारण अधिक विस्तार वाली थी जिन्हें याद रखने में वादकों को कठिनाई होती थी। मसीतखानी गत एक आवृत्ति की सरल राग रचनाऐं होती हैं जिस कारण यह लोकप्रिय है।

मसीतखानी गत को अब विलम्बित गत के रूप में भी जाना जाता है। इसमें स्थायी तथा अंतरा दो भाग होते हैं। इसे पश्चिमी बाज भी कहा जाता है।

<u>मसीतखानी गत के बोल</u> – सितार में मिजराब के आघात से बोल उत्पन्न होते हैं। बाज के तार में मिजराब से अपनी तरफ को आघात को 'आकर्ष' व **'दा'** बोल कहा जाता है। इसके विपरीत बाहर की ओर अपकर्ष 'प्रहार' से **'रा'** बोल निकलता है। इन दोनों बोलों को शीघ्रता से बजाने पर **'दिर'** बोल निकलता है। इन तीनों बोलों के कलात्मक संयोजन से सितार गतों में सौन्दर्य उत्पन्न किया जाता है। मिजराब के इन बोलों का राग–ताल के नियमों का पालन कर जो राग रचनाऐं निर्मित होती हैं, उन्हें 'गत' कहते हैं। मसीत खॉ द्वारा खोजे गए 'गत' स्वरूप को मसीतखानी गत कहते हैं। इन गतों को तीनताल में 12वीं मात्रा आरम्भ कर बजाने की प्रथा है जो इस प्रकार हैं :

<u>मसीत खानी गत (तीनताल)</u>

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
											दिर	दा	दिर	दा	रा
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा					
X				2				0				3			

इन बोलों के आधार पर विभिन्न रागों में मसीतखानी गतों को निर्माण किया जाता है।

1.4 पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत व तोड़े

<u>1.4.1 राग श्याम कल्याण</u> :–

थाट कल्याण मानत मुनि जन, पस समवाद अनूपा
ओडव सम्पूरन प्रथम रात्रि, श्याम कल्याण स्वरूप।।

<u>विवरण</u> – प्रस्तुत राग कल्याण थाट जन्य माना गया है। इसके आरोह में गन्धार और धैवत वर्ज्यं है ओर अवरोह में सातों स्वरों का प्रयोग किया जाता है अतः इसकी जाति औडव–सम्पूर्ण है। इस राग का गाने बजाने का समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। पंचम स्वर वादी तथा षडज स्वर सम्वादी है। इस राग में दोनों मध्यम तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। यह राग कल्याण का एक प्रकार है जो कि कामोद और कल्याण का सुन्दर समिश्रण है। गन्धार स्वर इस राग के अवरोह में अल्प और वक्र है। ग म प, ग म रे सा कामोद के

इस टुकड़े के साथ राग का समापन करते हैं। प्रस्तुत राग के आरोह में तीव्र मध्यम और अवरोह में शुद्ध मध्यम का प्रयोग करते हैं। गन्धार के प्रयोग से अमुक राग सरलता से शुद्ध सांरग से अलग हो जाता है। तीव्र मध्यम और निषाद को दीर्घ करने से कामोद राग सरलता से अलग हो जाता है। इस राग में गन्धार का प्रयोग कामोद अंग से किया जाता है जैसे ग म प, ग म रे सा। कुछ विद्वान इस राग में हमीर, गौड़सांरग, केदार और कल्याण राग का मिश्रण मानते है।

आरोह – नि़ सा रे मं प नी सां।
अवरोह – सां नि ध प , ध मं प ग म प ग म रे सा, नी़ सा
पकड़ – नी सां रें ऽ रे ऽ मं प ग म रे ऽ नी सा।
न्यास के स्वर – प और नी।
समप्रकृति – शुद्ध सारंग, कामोद व कल्याण।

आलाप

नि़ रे नि़ सा – सा – < सा – < , नि़ सा रे – – मं – मं
दा ––––
प – < प – < प – < , मं प , मं प ध – प – < प – < प – <
दा – दा ––––
गम रे – रे – सा – < सा – < नि़ रे नि़ सा ध़ – प –
दा ––––––
प़ – < प़ – < मं़ प़ – < मं़ प़ – < मं़ प़ सा – < सा – <
दा – दा – दा –––
नि़ सा रे मं़ प़ – < प – <, ग म प , ग म रे – रे –
सा – < सा – < , मं़ प़ ध प – < प़ – <, सां – < सां – <
सां – < ध नि ध नि सां नि रें – सां – < सां – < सां – <
नि सां ध – प , रे मं़ प़ नि – नि ध – प –,
मं़ प़ नि सां रें – सां – < सां – <, रें पं गं मं रें – सां –
नि रें नि सां ध – प़ – < प – < , मं़ प़ ध प , प ग म
रे – सा – < सा – <

मसीतखानी गत – तीनताल

स्थाई

						रे	– मं प	गम	रेरे	सा	नि़सा
						दि	– र–	दा–	दिर	दा	दिर
								3			
रे	मं	प,	पप	मं	पप	ध	प	गम	रे	सा	
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा–	दा	रा	
×				2				0			

अन्तरा

							पप	म॑	पप	सां	सां
							दिर	दा	दिर	दा	रा
								3			
सं	सां	सां,	सांसां	नि	सांसां	रें	सां	नि	प	प	
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	
×				2				0			
							पप	म॑	पप	नि	प
							दिर	दा	दिर	दा	रा
								3			
ध	म॑	प,	पप	ग	मम	प	ग	म	रे	सा	
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	
×				2				0			

तोड़े

1–	प़ नि़नि़ ध़ सा	नि़ रे नि़ सा	रे म॑म॑ पप निनि	ध– धम॑ –म॑ प–
	×			
	ग मम रे सा	नि़ सासा नि़ रे	– सा नि़ सा,	नि़ सासा नि़ रे
	2			
	–सा नि़ सा	नि़ सासा नि़ रे	–सा नि़ सा	मुखडा
	0			
2–	रे पप म॑म॑ पप	म॑ पप म॑म॑ पप	म॑ पप निनि सांसां	रें– रेंसां – सांनि
	×			
	ध पप म॑ म	ग म रे सा	ऽ नि़ – नि़	सा ऽ ऽ, नि़
	2			
	– नि़ सा ऽ	ऽ नि़ – नि़	सा ऽ ऽ, –	मुखडा
	0			
3–	म़॑ प़प़ नि़ सा	म॑ पप नि सां	रें पंप गंगं मंमं	रें – रेंनि –नि सां–
	×			
	नि –प प, ध	–म॑ म, प ग	म प गग मम	रे– रेनि़ –नि़ सा–
	2			
	ऽ ऽ रे– रे नि़	–नि सा– ऽ ऽ	रे– रेनि़ –नि़ सा–	मुखडा
	0			
5–	रे म म म	रे सा नि़ सा	रे प म॑ प	ध प म॑ प
	×			
	ग म रे सा	ऽ ऽ ऽ नि	– सा नि़ –	सा नि़ – सा ×
	3			

6–

सा म रे म	रे सा नि़ सा	रे प ग म	रे सा नि़ सा
×			
रे मं प रे	– रे मं प	नि सां रें नि	– रें सां –
2			
नि सां रें पं	मं प गं म	रें सां नि सां	रें सां नि सां
0			
ध प मं ध	– प मं प	ध प ग म,	रे सा नि़ सा
3			
रे सा नि़ सा	प ग – म	रे –, म ग	– म रे – ,
×			
प ग – म	रे – , रे सा	नि़ सा प ग	– म रे –
2			
प ग – म	रे – प ग	– म रे –	रे सा नि़ सा
0			
प ग – म	रे – प ग	– म रे –	प ग – म
3			×

1.4.2 राग केदार :–

दो मध्यम अरू शुद्ध स्वर, मानत थाट कल्याण।
सा मा वादी सम्वादी से, राग केदार बखान।।

विवरण – इस राग को कल्याण थाट जन्य माना गया है। हमीर राग की तरह इसमें भी दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है। वादी मध्यम और सम्वादी षडज है। इस राग के आरोह में रे ग और अवरोह में केवल ग स्वर वर्ज्य है, इसलिये इसकी जाति औडव–षाडव है। इस राग के अवरोह में कभी–कभी दोनों मध्यम एक के बाद एक लिये जाते हैं। इस राग के आरोह को लेते समय षडज से सीधे मध्यम पर जाते हैं। कभी–कभी अवरोह मे धैवत के साथ कोमल निषाद का अल्प प्रयोग भी किया जाता है, जो विवादी के रूप में प्रयुक्त होता है। अवरोह में गन्धार स्वर वक्र और दुर्बल है। कुछ विद्वान कहते हैं कि केदार में गन्धार गुप्त है। केदार के अनेक प्रकार प्रचलित है जैसे – शुद्ध केदार, चॉदनी केदार, जलधर केदार, मलुहा केदार इत्यादि।

आरोह – सा म , म प, ध प, नि ध सां।
अवरोह – सां नि ध प, मं प ध प म – रे सा।
पकड़ – सा म , म प, मं प ध प म – रे सा
न्यास के स्वर – सा म और प
समप्रकृति राग – हमीर और कामोद

आलाप

नि़ रे नि़ सा – ऽ सा – ऽ , ध़ – – प़ – ऽ प़ – ऽ

प़ सा – ऽ सा – ऽ सा म – ऽ म – ऽ सा रे सा – ऽ सा – ऽ

दा ––

सा म ग प़ – ऽ प़ – ऽ मं प मं प मं प ध – प – म

– ऽ म – ऽ , म ग प मं ध प म – ऽ म – ऽ म – ऽ ,

सा रे – सा – ऽ सा – ऽ , नि़ सा रे सा म – ऽ म – ऽ ,

दा ––

ग म म ग प़ – ऽ प़ – ऽ , मं प मं प ध – ध –

प़ – ऽ प़ – ऽ , मं प ध प सां – ऽ सां – ऽ सां – ऽ ,

दा –––

नि ध नि सां रें – सां – ऽ सां – ऽ, सां मं रें सा,

पं मं रें सां, नि सां रें सां, ध – प –, मं प ध प

ऽ म – ऽ म – ऽ , सा रे सा – सा – ऽ सा – ऽ

दा –

मसीतखानी गत – तीनताल

स्थाई

								पप	मं	पप	ध	प	
								दिर	दा	दिर	दा	रा	
									3				
म	म	म,	मग	प	मंप	ध	प		म	रे	सा		
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा		दा	दा	रा		
×				2					0				
								रेरे	सा	नि़सा	ध़	प़	
								दिर	दा	दिर	दा	रा	
									3				
सा	सा	सा,	मग	प	मंप	ध	प		म	रे	सा		
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा		दा	दा	रा		
×			2					0					

अन्तरा

							पप	म॑	पप	ध	प
							दिर	दा	दिर	दा	रा
								3			
सां	सां	सां	सांसां	नि	सांसां	रें	सां	ध	प	म	
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	
×				2				0			
							मम	प	सांसां	रें	सां
							दिर	दा	दिर	दा	रा
								3			
ध	ध	प	पप	म॑	पप	ध	प	म	रे	सा	
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	
×				2							

तोड़े

1–	ध़ धध नि़–	सा रे सा नि़ सा	नि सासा म ग	प म॑ ध प
	×			
	म म रे–	सां प म॑ – प	सां – ऽ – ,	प म॑ – प
	2			
	सां – ऽ –	प म॑ – प	सां – ऽ – ,	मुखडा
	0			
2–	ध़ पप म॑ प़	रे सासा नि़ सा	ध पप म॑ प	रें सांसां नि सां
	×			
	ध ध ध प	– प म॑ प	म म रे सा	ऽ नि़ सा रे
	2			
	स –,नि़ सा	रे सा –, नि	सा रे सा –	मुखडा
	0			
3–	सा सासा म –	म मम प –	प पप सां –	नि सां रें सां
	×			
	सां मंमं रें मं	रें सां नि सां	ध म॑ – प	म म रे सा
	2			
	नि़ सासा म ग	प – ध प	म – ऽ – ,	नि़ सासा म ग
	0			
	प – ध प	म – ऽ –	नि़ सासा म ग	प – ध प
	3			×

4–

नि़ सा रे, नि़	सा रे, नि़ सा	नि़ सा म म	रे सा नि़ सा
×			
मं प ध, मं	प ध, मं प	मं प नि नि	ध प मं प
2			
नि सां रें, नि	सां रें नि सां	नि सां मं मं	रें सां नि सां
0			
रें सां, सां नि,	नि ध, ध प	प म, म रे	रे सा नि़ सा
3			
प – म म	रे सा नि़ सा,	रे सा नि़ सा	रे सा नि़ सा
×			
रे सा नि़ सा	म – प, –	म म रे सा	नि़ सा, रे सा
2			
नि़ सा, रे सा	नि़ सा रे सा	नि़ सा म –	प – म म
0			
रे सा नि़ सा	रे सा नि़ सा	रे सा नि़ सा	रे सा नि़ सा
3			×

5–

सा सा म –	रे सा नि़ सा	सा सा प –	म म रे सा
×			
सा सा ध –	प प मं प	प प सां –	रें सां नि सां
2			
सां मं – रें	सां नि ध प	मं – ध प	म म रे सा
0			
ध मं – प	म – , ध मं	– प म –	ध मं – प
3			×

6–

म रे सा, प	म रे सा सा	प मं ध प	म म रे सा
×			
प नि ध सां	नि रें सां नि	ध प मं प	म म रे सा
2			
सा म ग प	मं प ध प	म – < –,	सा म ग प
0			
मं प ध प	म – < –	सा म ग प	मं प ध प
3			×

1.4.3 राग बिहागड़ा :–

थाट बिलावल शुद्ध स्वर, ओडव सम्पूरन रूप।
ग नि स्वर सम्वाद करत, राग बिहागड़ा अनूप।।

विवरण – राग बिहागड़ा थाट जन्य माना जाता है। इसमें दोनों निषाद तथा शेष स्वर शुद्ध प्रयोग किये जाते हैं। प्रस्तुत राग बिहाग अंग का राग है। आरोह में ऋषभ वर्जित होने से तथा अवरोह में सभी स्वर प्रयोग होने से इस राग की जाति षाडव–सम्पूर्ण है। धैवत स्वर आरोह में खमाज अंग से कोमल निषाद के साथ लगता है। जैसे ग म प ध नी ध प, ग म प म ग ऽ ऽ रे म। इसमें वादी स्वर गन्धार तथा सम्वादी स्वर निषाद है। आरोह और अवरोह दोनों में ही शुद्ध निषाद का प्रयोग किया जाता है। तार सप्तक जाते समय धैवत का लंघन कर जाते हैं। जैसे – ग म प नी सां इसलिए कुछ विद्वान इसको औडव–सम्पूर्ण भी मानते हैं। यह एक पूर्वांग राग है।

आरोह – सा ग म प नी सां
अवरोह – सां नि ध प, ध नी ध प ग म प म ग ऽ ऽ रे सा।।
पकड़ – ग म प ध नी ध प, ग म प म ग ऽ ऽ रे सा
समप्रकृति – विहाग, खमाज व पटबिहाग
न्यास के स्वर – सा ग प नी।

आलाप

प़ नि़ – – सा – ‹ सा – ‹, प़ नि़ सा ग – रे सा

दा –

सा – ‹ सा – ‹ ग म म ग – ग प म म प

प – ‹ प – ‹, ग म प म ग – रे सा , सा ग म प – ‹

प – ‹ प – ‹, ग म प ध नि ध प – ग म प –

म ग , ग – ‹ ग – ‹ ग – रे सा सा – ‹ सा – ‹

ग प ग म ग प – ‹ प – ‹, म ग म ग म प नि –

नि – ‹ नि – ‹ प नि सां – नि ध – प – ‹ प – ‹

प नि – ध प ग म म ग प – म ग – ‹ ग – ‹

ग – रे सा , ग म प नि सां – ‹ सां – ‹ सां – ‹

प नि सां – गं रें सां , नि रें नि सां नि ध प ,

ग म प नि प सां नि ध प, ग म प– म ग

ग – ‹ ग – ‹, ग म प नि सां गं रें सां –

सां – ‹ सां – ‹ नि रें नि सां नि ध प,

ग म ग म प म, प ध प ध नि ध प – ‹ प – ‹

ग म प – म ग – ‹ ग – ‹ रे सा – ‹ सा – ‹

मसीतख़ानी ग़त – तीनताल

स्थाई

									ग म पध नि		ध	पप	ग	–मम	प–
									दिर दा– –		दा	दिर	दा	–दिर	दा
											3				
ग	ग सा	सासा	|	ग	मम	प	प	|	ग	म	ग				
दा	दा रा	दिर	|	दा	दिर	दा	रा	|	दा	दा	रा				
X				2					0						

अन्तरा

									पप	|	ग	मम	प	नि	
									दिर	|	दा	दिर	दा	रा	
											3				
सां	सां	सां	सासां	|	नि	सांसां	गं	मं	|	गं	रें	सां			
दा	दा	रा	दिर	|	दा	दिर	दा	रा	|	दा	दा	रा			
X					2					0					
									सांसां	|	नि	सांसां	नि	प	
									दिर	|	दा	दिर	दा	रा	
											3				
नि	ध	प	पप	|	ग	मम	प	म	|	ग	ग	सा			
दा	दा	रा	दिर	|	रा	दिर	दा	रा	|	दा	दा	रा			
X					2					0					

तोडे

1–	ऩि सासा ऩि सा	–सा सा ग म	प नि सां नि	ध प – प
	×			
	ग मम प ध	नि ध – प	म ग रे सा	ऽ – ऩि सा
	2			
	रे सा –, ऩि	सा रे सा –	ऩि सा रे सा	मुखडा
	0			

2—	×	नि़ सासा ग म	प निनि सां गं	रें सां नि ध	प म ग म	
	2	ग रे सा —	ऽ — ग म	प प नि सां	ऽ — ग म	
	0	प प नि सां	ऽ — ग म	प प नि सां	मुखडा	
3—	×	नि़ सासा नि़ सा	—सा सा नि़ सा	प नि़ सा ग	म ग रे सा	
	2	नि़ सासा ग म	प ध नि॒ ध	प ग — म	ग रे सा —	
	0	ऽ नि॒नि॒ ध प	ग मम प म	ग — ऽ —	ऽ नि॒नि॒ ध प	
	3	ग मम प म	ग — ऽ —	ऽ नि॒नि॒ ध प	ग मम प म	X
4—	×	सा ग ग ग	रे सा नि़ सा	ग म प म	ग रे सा —	
	2	ग म प नि	नि नि ध प	नि॒ ध प म	ग रे सा —	
	0	नि़ सा ग म	सा ग म प	ग म प नि	म प नि सां	
	3	प नि सां रें	सां नि॒ ध प	ग म प म	ग रे सा —	
	×	ग रे सा ग	— म प म	ग — प म	ग — प म	
	2	ग — ऽ —	ऽ — ऽ —	ग रे सा ग	— म प म	
	0	ग — प म	ग — प म	ग — ऽ —	ऽ — ऽ —	
	3	ग रे सा ग	— म प म	ग — प म	ग — ऽ —	X
5—	×	प म ग प म ग	प म ग प म ग	प म ग रे सा नि़	प नि़ सा ग रे स	
	2	नि़ सा ग म प —	ग म प नि सां—	प नि सां गं रें सां	नि सां नि ध प प	
	0	ग म प नि सां सां	ध नि॒ ध प ध प	म प म ग म ग	प म ग रे सा —	
	3	ग म प ध नि॒ ध	प ध प ग — म	ग — — ग — म	ग — — ग — म	

6–	ग रे सा ग	रे सा नि़ सा	ग म प म	ग रे सा –
	×			
	प नि़ सा, नि़	सा ग , सा ग	म़, ग म प	म प नि सां
	2			
	प ऽ ऽ प	नि सां गं रें	सां ऽ ऽ नि	सां नि ध प
	0			
	ग म प ध	नि ध – प	ग प म ग	म ग रे सा
	3			
	नि़ सा ग म	प – – नि	ध प ग म	ग – ग म
	×			
	ग – ग म	ग –, नि़ सा	ग म प –	– नि ध प
	2			
	ग – ग म	ग म ग –	ग म ग –	नि़ सा ग म
	0			
	प – – नि	ध प ग म	ग – ग म	ग – ग म X
	3			

1.4.4 राग पूरिया कल्याण :–

थाट मारवा रे म विकृत, ग नि सम्वाद अनूप।
जाति समपूर्ण सायं समय, पूरिया कल्याण रूप।।

विवरण – इस राग का सृजन, पूरिया तथा कल्याण दो प्राचीन रागों के समन्वय से हुआ है। इसके पूर्वांग में पूरिया और उत्तरांग में कल्याण है। इसका प्रारम्भ स को छोड़ते हुऐ म, ध नी सा को प्रयोग करते हैं। यह मारवा थाट जन्य राग है। इसमें रे कोमल तथा मध्यम तीव्र लगता है। वादी ग और सम्वादी नि है। यह एक सायंकालीन संधिप्रकाश तथा परमेल प्रवेशक राग है। प्रस्तुत राग में ऋषभ और धैवत होने लगेगा। कल्याण राग से बचने के लिए कोमल ऋषभ और पूरिया से बचने के लिये पंचम ओर शुद्ध ध के प्रयोग से यह आसानी से पूरिया धनाश्री राग से अलग हो जाता है। यह एक बहुत ही लोकप्रिय राग है जिसको गायक और वादक दोनों ही पसन्द करते हैं। इस राग का विस्तार तीनों ही सप्तक में किया जाता है। इस राग का गन्धार ओर निषाद एक प्रबल स्वर है।

आरोह – नि़ रे ग मं प म ध नी सां।
अवरोह – सां नि ध प मं ग रे ग रे सा।।
पकड़ – नि रे ग मं प – मं ग मं रे ग, नी़ रे सा।
न्यास के स्वर – नि सा ग प
समप्रकृति राग – मारवा व पूरिया व कल्याण

आलाप

ध़ नि़ — — ध़ —   नि़ रे नि़ सो — ‹ सा — ‹ सा — ‹

दा —————

ध़ — — नि़ रे नि़ ध़ प़ — ‹ प़ — ‹ प़ — ‹

मं नि़ ध़ , ध़ सा नि़ , नि़ रे सा, सा — ‹ सा — ‹

नि़ रे ग मं प़ — ‹ प़ — ‹ प़ — ‹, ग मं ग मं ध प ,

दा —— दा दा दा

प़ — ‹ प़ — ‹ प़ — ‹ ग मं ध नि , ध नि नि ध

मं ध ध मं, ग मं मं ग , मं ध प़ — ‹ प़ — ‹

मं ग मं ग मं ध नि — ‹ नि — ‹ नि — ‹,

ध नि नि ध नि रे सां — सां — ‹ सां — ‹ सां — ‹

ध नि रे गं — ‹ गं — ‹ गं — ‹, मं ग मं गं रें — सां — ‹

सां — ‹ सां — ‹, नि रें नि ध नि ध मं ध मं, ध प़ — ‹

प़ — ‹, प़ — ‹, ग मं ग ध प़ — ‹ प़ — ‹

मं प मं ग ग मं रे मं ग , नि़ — —

रे ग मं प मं ग मं ग, रे ग रे , नि़ रे सा— ‹ सा— ‹

मसीतख़ानी गत — तीनताल

स्थाई

						मं धध नि सां			नि़ ध पप मं पप मंग		
						दा दिर दा रा			दा दिर दा दिर दारा		
									3		
मं	मं	ग	गग	नि़	रेरे	ग,	रे गग, मं प		ग	रे	सा
दा	दर	रा	दिर	दा	दिर	दा	दा दिर दा रा		दा	दा	रा
X				2					0		

अन्तरा

							पप	ग	मंमं	ध	नि
							दिर	दा	दिर	दा	रा
								3			
सां	सां	सां,	सांसां	ध	निनि	रें	सा	नि	ध	प	
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	
X				2				0			

रेंगंमंप ग गंगं रें सां
दिरदा– दा | दिर दा रा
3

मं निनि ध प | म गग मं रे | मंग रे सा
दा दिर दा रा | दा दिर दा रा | दा दा रा
X | 2 | 0

तोडे

1– नि रेरे ग मं | प मं ग मं | मं ध निनि सा रें | सां नि ध प
X
मं ग रे सानि सा नि रे | सा – ऽ – | नि सा नि रे
2
सा – ऽ – | नि सा नि रे | सा – ऽ – | मुखड़ा
0

2– मं ग रे सा | नि सा रे सानि | सा नि ध | नि रे ग –
X
मं ग प मं | ध प नि ध | सां नि ध प | मं ग रे सा
2
नि रे ग –, | रे ग मं प | मं – ऽ –, | नि रे ग –
0
रे ग मं प | मं – ऽ – | नि रे ग – | रे ग मं प | X
3

3– ग रे सा, मं | ग रे प मं | ग ध प मं | नि ध प, सां
X
नि ध रें सां | नि, गं रे सां, | नि रें गं मं | गं मं गं रें
2
सां नि रें सां | नि ध प मं | ग मं ग,मं | ग रे सा –
0
ऽ – मं प | मं –,ऽ – | मं प मं – | ऽ – मं प | X
3

	ताल					
4–	X	नि़ सा रे, नि़	सा रे सा नि़	ध – नि़ रे	ग रे ग –	
	2	नि़ नि़ नि़ मं	मं मं नि नि	ध प मं ग	मं ग रे सा	
	0	ग रे सा नि़	– रे ग प	मं –,ऽ –	ग रे सा नि़	
	3	– रे ग प	मं –,ऽ –	ग रे सा नि़	– रे ग प	X
5–	X	ध़ प़ म़ं प़	रे सा नि़ सा	ध प मं प़	रें सां नि सां	
	2	गं मं मं मं	गं रें सां नि	ध नि नि नि	ध प मं ग	
	0	ग मं मं मं	ग रे सा –	नि़ रे –, रे	ग – मं प	
	3	नि़ रे –, रे	ग – मं प	नि़ रे –, रे	ग – मं प	X
6–	X	मं ग रे सा	प मं ग रे	ध प मं ग	नि ध प मं	
	2	सां नि ध प	रें सां नि ध	गं रें सां नि	सां नि ध प	
	0	ग मं मं ध	नि सां, मं ध	नि सां रें सां	नि ध प मं	
	3	ध प मं ध	प मं, ध प	मं ग मं ग	रे सा नि़ सा	
	X	नि रे ग ग	रे ग मं मं	मं ग मं ग	रे सा नि़ सा	
	2	मं –,ऽ –	ऽ – ऽ – ,	नि़ रे ग ग	रे ग मं मं	
	0	ग मं प मं	ग रे ग प	मं –,ऽ –	ऽ – ऽ –	
	3	नि़ रे ग ग	रे ग मं मं	ग मं प मं	ग रे ग प	X

7– नि़ रे ग ग | रे ग मं मं | ग मं प प | मं प ध ध
X
प मं ग प | मं ग प मं | ग रे मं ग | रे सा नि़ सा
2
नि़ रे ग मं | प – प – | मं –,ऽ –, | नि़ रे ग मं
0
प – प – | मं –,ऽ –, | नि़ रे ग मं | प – प –
3 X

1.4.5 राग अहिर भैरव :–

भैरव पूरब अंग में काफी उत्तर भाग ।
अति विचित द्वैरूपसे होत अहीरी राग।।

विवरण – राग अहिर भैरव भैरव का एक प्रकार है। जो भैरव थाट जन्य है। यह सम्पूर्ण जाति का राग है। इसमें कोमल ऋषभ और कोमल निषाद का प्रयोग होता हैं। यह एक सम्पूर्ण जाति का प्रातः कालीन राग है। वादी मध्यम और सम्वादी षड़ज है। यह प्राचीन राग नहीं है किन्तु इसमें भैरव और काफी का मिश्रण मानते हैं एवं कुछ भैरव और खमाज है। इसके पूर्वांग में भैरव एवं उत्तरांग में खमाज है। इस राग में भैरव अंग अधिक प्रबल है। ऋषभ पर आंदोलन और म रे की संगत भैरव अंग का परिचायक है। इस राग का विस्तार तीनों ही सप्तकों में किया जाता हैं इसके आरोह में पंचम अल्प है सूक्ष्म दृष्टि से यह प्रचलित थाटों में से किसी में भी नहीं आता किन्तु भैरव अंग प्रबल होने के कारण इसे भैरव थाट में रख दिया गया है।

आरोह – सा रे ग म प ध नि सां।
अवरोह – सां नि ध प म ग रे – सा।
पकड़ – ग म रे ऽ ऽ सा नी़ सा ध़ नी़ रे सा
न्यास के स्वर – सा, रे, ग, म
समप्रकृति राग – भैरव, खमाज, काफी और बागेश्री

आलाप–:

ध़ नि ध़ ध़ सा नि सा – > सा – > सा – >
दा––– दा–––
नि़ रे – – सा – > सा – > रे सा नि़ ध़ – प़ – > प़ – >
प़ नि़ ध़ ध़ सा नि रे – – सा – > सा – > सा – >
ध़ नि सा रे ग – > ग – > ग – > ग म प ग म
दा – – – – दा – – – –
रे – – सा – > सा – >, रे ग म प – > प – > प – >
ग म म ग रे – – सा – > सा – > सा – >
ग म म गे म ध प – > प – >, प ध ध प म प प म

दा – – –　　　　दा – ––

ग म प ध नि ध प　　　ध नि – – ध सां – > सां – >

ध नि रें – – रें – –　　सां – >　　सां – >　ध नि सां रें गं – >

गं – >,　गं मं पं गं मं　रें – –　　सां – > सां – > सां – >

नि रें सां रें नि सां　　　नि ध प – > प – > प – >

दा – – – दा –

ग म प ग म　　रे – –　सा – >　　सा – >　　सा – >

मसीतखानी ग़त – तीनताल

स्थाई

							रे –ग म	रे	सासा	ध़–निनि	सारे
							दा दिर	दा	दिर	दा–दिर	दारा
								3			
ग	ग	ग,	रेरे	ग	गग	ध	प	गपगम	रे	सा	
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा––	दा	रा	
X				2				0			

अन्तरा

							पप	ग	मम	ध	नि
							दिर	दा	दिर	दा	रा
								3			
सां	सां	सां,	सांसां	ध	निनि	रें	सां	नि ध प			
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा दा रा			
X				2				0			
							रेंगमंपं	गं	गंमें	रें	सा
							दिर दा–	दा	दा–	दा	रा
								3			
ध	निनि	ध	प	ग	मम	ध	प	मगम–	रे	सा	
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा–––	दा	रा	
X				2				0			

तोड़े

1— X	ध़ निनि ध़ नि़	ध़ नि़ सा रे	ग मम प ध	नि ध — प
	म ग रे सा,	ऽ ऽ ऽ प	म ग रे सा	ऽ ऽ ऽ प
2	म ग रे सा	ऽ ऽ ऽ प	म ग रे सा	मुखड़ा
0 / 2— X	प़ ध़ध़ नि़ सा	रे गग म प	ध निनि सां रें	सां निनि ध प
2	म गग रें सा	ग म ग म	प म ध प	ग म ग म
0	प म ध प	ग म ग म	प म ध प	मुखड़ा
3— X	रे रे ग म	प — प प	ग म ध प	म ग रे सा
2	ग म ध नि	सां — सां सा—	ध नि रें सां	नि ध प म
0	ग म प, ग	म प ग म	प म ग म	ग रे सा —
3	ऽ — सा रे	ग —, ऽ —	सा रे ग —	ऽ — सा रे — X
4— X	ग ग ग ग	ग ग रे सा	म म म म	म म ग रे
2	प प प प	प म ग रे	ध प म ग	म ग रे सा
0	नि़ सा — रे	ग — ग —	ग — ऽ —	ऽ — ऽ —
3	ग — ग —	ग — ऽ —	नि़ सा — रे	ग — ग —
5— X	प़ ध़ नि़, प़	ध़ नि़ प़ ध़	नि़ सा रे सा	नि़ ध़ प़ —
2	ग म प, ग	म प ग म	प म ग म	ग रे सा —
0	ध़ नि़ सां, ध	नि सां, ध नि	ध नि रे सां	नि ध प म
3	ग — ग म	प ध नि ध	प म ग म	ग रे सा —
X	ध़ नि़ ध़ नि़	सा नि़ सा रे	ग — सा रे	ग — सा रे

ग – ऽ –   ऽ – ऽ –   ध़ नि़ ध़ नि़   सा नि़ सा रे॒

2
ग – सा रे॒   ग – सा रे॒   ग – ऽ –   ग – ऽ –

0
ध़ नि़ ध़ नि़   सा नि़ सा रे॒   ग – सा रे॒   ग – सा रे॒

3   X

1.4.6 राग भैरव :–

थाट भैरव रे ध कोमल, ध रे स्वर संवाद।
प्रात समय मिल गाइये, सम्पूरन भैरव राग।।

विवरण – इसकी रचना भैरव थाट से की गई हैं इसलिये यह आश्रय राग है। इसमें ऋषभ व धैवत स्वर कोमल तथा बाकी स्वर शुद्ध है अतः इसकी जाति सम्पूर्ण–समपूर्ण है। वादी धैवत तथा सम्वादी ऋषभ है। इसका गायन एवं वादन का समय प्रातः का प्रथम प्रहर है। इसे प्रातः काल संधिप्रकाश के समय गाते बजाते हैं। ऋषभ धैवत का आन्दोलन इस राग को भैरव अंग का राग प्रदर्शित करता हैं इसके आरोह में प्रायः ऋषभ व पंचम छोड़ देते हैं । जैसे – सा ग म प, ग म ध॒ प। यह एक प्राचीन राग है जिसे चारोमतानुसार इसे एक मुख्य राग माना है। यह राग करूण प्रकृति का और गंभीर है। इसमें ध्रुपद, धमार, बड़ा ख्याल, छोटा ख्याल तराना व मसीतखानी, रज़ाखानी गत प्रचुर मात्रा में मिलता है। मध्यम से ऋषभ की मीड़ इसमें बहुत मधुर लगता है।

आरोह – सा रे॒ ग म प ध॒ नी सां।
अवरोह – सां नी ध॒ प म ग रे॒ सा ।।
पकड़ – ग म ध प, ग म रे॒ सा
न्यास के स्वर – सा रे॒ और ध॒
समप्रकृति राग – कालिंगड़ा और रामकली

आलाप

ध़॒ – –   ध़॒ सा नि़ सा – सा – ऽ सा – ऽ सा – ऽ
दा –––––

नि़ सा – नि़ सा नि़ सा रे॒ सा   ध॒ – – सा – ऽ सा – ऽ
दा –   दा––– दा –––––   दा ––––––

सा ग – ऽ ग – ऽ ग प ग मे रे॒ – – सा – ऽ

सा – ऽ सा – ऽ,   सा ग ,–   ग म – , म प – ,

प– ऽ प– ऽ , ग म ध॒ – – प– ऽ प– ऽ

म प – , ग म – , रे॒ – – सा – ऽ सा – ऽ,

ग म ध॒ – – नि सां –   सां – ऽ सां – ऽ

निसां – , निरें॒ – , सां रें॒ – , निसां – ध॒ – – प– ऽ

प– ऽ प– ऽ, ग म ध़ नि सां ध़ – – प– ऽ प– ऽ
म प ध़ प म प – ग – ऽ ग – ऽ, ग प ग म रें – – सा
सा – ऽ सा – ऽ, ग म ध़ नि सां – सां – ऽ सां – ऽ
गं – ऽ गं – ऽ, गं पं गं मं रें – – सां – ऽ सां – ऽ
निसां– निसां निसां रें सां – ध़ – – प– ऽ प– ऽ
सा ध़ प ध़ म प ग – ऽ ग – ऽ ग म प ग म
रे – – सा – ऽ सा – ऽ सा – ऽ

मसीतखानी गत – तीनताल

स्थाई

											पप	म	पप	ग	म
											दिर	दा	दिर	दा	रा
												3			
ध़	ध़	प	पध़	म	पप	ग	म	रे़	रे़	सा					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा					
X				2				0							

अन्तरा

											पप	ग	मम	ध़	नि
											दिर	दा	दिर	दा	रा
												3			
सां	सां,	सां	सांसां	नि	सांसां	रें	सां	निसां	ध़	प	धनिसांगं	रें	सांसां	नि	सां
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा–	दा	रा	दिर दा–	दा	दिर	दा	रा
X				2				0				3			
ध़	ध़	प	पप	ग	मम	ध़	प	गम	रे़	सा					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा–	दा	रा					
X				2											

तोड़े

1– ध़ नि़नि़, सा गग | म पप ध़ निनि | सा गंगं रें सांसां | नि धध़ प मम |
X
ग मम रे़ सा सा | ध़ नि़नि़, सा, ग | – म रे़ सा, | ध़ नि़नि़, सा, ग |
2

	— म रे सा,	ध़ नि़नि़, सा, ग	— म रे सा	मुखडा	
	0				
2—	सा गग म प	ग म ध प	ग मम ध नि	सां नि ध प	
	X				
	ध प म, प	म ग म ग	रे रे सा —,	ध़ नि़नि़, सा, रे	
	2				
	सा, ध़ नि़नि़ सा	रे सा ध़ नि़नि	सा रे सा —	मुखडा	
	0				
3—	ग म ध नि	सां — सां सां	ध नि सा ग	स रे सा —	
	X				
	प ध प , म	ध प, ग म	प म ग म	ग रे सा —	
	2				
	नि़ सा ग म	प ग — म	ध — ऽ —,	नि़ सा ग म	
	0				
	प ग — म	ध — ऽ —	नि़ सा ग म	प ग — म	X
	3				
4—	ग रे सा —,	म ग रे सा	—, प म ग	रे सा — ध़	
	X				
	ग म ध नि	सां रें सां नि	ध व ग म	ग रे सा —	
	2				
	ग म —, सा	ग म प — ,	ध — ऽ —	ग म — सा	
	0				
	ग म प —	ध — ऽ —	ग म — सा	ग म प —	X
	3				
5—	ग म प —	प म ग रे	म प ध —	ध प म ग	
	X				
	प ध नि —	नि ध प म	ध नि सां —	सां नि ध प	
	2				
	नि सां गं —	गं रें सां नि	ध प ग म	ग रे सा —	
	0				
	नि़ सा ग म	प — ग म	ध — ग म	ध — ग म	X
	3				
6—	ध़ नि़ सा रे	नि़ सा ग म	सा ग म प	ग म प ध	
	X				
	म प ध नि	प ध नि सां	ध नि सां गं	रें सां नि ध	
	2				
	प म ग म	ग रे सा —	प ग — म	ध — ऽ —	
	0				
	ऽ — प ग	— म ध —	ऽ — ऽ —	प ग — म	X
	3				

1.4.7 राग बैरागी भैरव :–

ग ध विकृत जाति औढव बैरागी राग सुहाय।
भैरव थाट प्रातः गाइये म स सम्वाद।।

विवरण – प्रस्तुत राग भैरव थाट जन्य है। यह एक लोकप्रिय प्रातः कालीन राग है। एक प्रचलित राग है जिसमें रिषभ व निषाद स्वर कोमल लगते हैं तथा गंधार व धैवत स्वर वर्जित है, अतः इसकी जाति औढव–औढव है। इस राग का वादी स्वर मध्यम व सम्वादी स्वर षड़ज है। प्रस्तुत राग का विस्तार अधिकतर म॒न्द्र व मध्य सप्तक में किया जाता है। इस राग में रिषभ सदैव भैरव की तरह आन्दोलित किया जाता है। कतिपय लोग इसे बैरागी और कुछ लोग इसे बैरागी भैरव कहते हैं।

आरोह – सा रे म प नी सां ।
अवरोह – सां नी प म रे – सा– ।।
पकड़ – रे म प नी प म रे – सा –।
समप्रकृति राग – भैरव व मध्मांद सारंग।

आलाप

नि़ रे – – सा – ‹ सा – ‹, नि़ रे नि़ सा नि़ प़ – ‹
दा ––––––
प़ – ‹ प़ – ‹ प़ – ‹, म़ नि़ प़, प़ सा नि़ नि़ रे सा
सा – ‹ सा – ‹, रे – ‹ रे – ‹ रे – ‹, रे म रे – सा
सा रे म प – ‹ प – ‹, म प म प म नि प –
म प नि प म रे – सा – ‹ सा – ‹, म प नि प
नि सां – ‹ सां – ‹ सां – ‹, प नि सां रें सां रें सां नि प
म – म – नि ५।, म प नि प म रे – रे – नि रे
सा – ‹ सा – ‹, म प नि सां रें – रें – रें– सां –
नि सां रे मं रें रें – सां – ‹ सां – ‹ सां – ‹
रे मं, मं पं मं रें – रें – सां – ‹, नि सां रे सां नि सां
नि प, म प म नि प, म रे – – सा – ‹ सा – ‹

मसीतखानी गत – तीनताल

स्थाई

				रे	मम	प	नि	प	मम	रे	सा		
				दा	दिर	दा	–	दा	दिर	दा	रा		
								3					
रे	रे	सा,	सासा	रे	मम	मनि	प	म	रे	सा			
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दिर	रा	दा	दा	रा			
X					2				0				

अन्तरा

		पप	मि पप नि प
		दिर	दा दिर दा रा
			3
नि नि सां, सांसां	नि सांसा रें सां		नि प नि – प प
दा दा रा दिर	दा दिर दा रा		दा – – – दा रा
X	2		0
		नि सां रें मं	रें रेंरें सां सां
		दिर दा––	दा दिर दा रा
			3
नि सांसां नि प	म पप मनि प		म रे सा
दा दिर दा रा	दा दिर दा– रा		दा दा रा
X	2		0

तोड़े

1– नि़ सासा नि़ सा | नि रेरे सा रे | सा मम रे म | रे पप म प |
X
म रे सा – | प़ नि प नि़ | सा नि़ रे सा | प़ नि प नि़ |
2
सा नि़ रे सा, | प़ नि प नि़ | सा नि़ रे सा | मुखड़ा
0

2– सा रेरे रे मम | म पप प निनि | नि सासां सां रें | सा नि प म |
X
रे रे सा – | सा रे सा रे | म प नि सां, | सा रे सा रे |
2
म प नि सां, | सा रे सा रे | म प नि सां | मुखडा
0

3– प़ नि़नि़ प़ – | नि़ सासा नि़– | सा रेरे सा – | रे मम रे – |
X
म पप नि सां | रें सां – रें | सां नि प म | रे रे सा – |
2
स रेरे म प | – नि प म | रे – ‹ –, | सा रेरे म प |
0
– नि प म | रे – ‹ – | सा रेरे म प | – नि प म |
3
X

4–	नि सा रे, नि	सा रे नि सा,	म प नि म	प नि म प
	X			
	नि सां रें, नि	सा रें नि सां	नि प म प	म रे सा –
	2			
	प नि, नि सा	सा रे, रे म	रे – ऽ –,	प नि, नि सा
	0			
	सा रे, रे म	रे – ऽ –,	प नि नि सा	सा रे रे म
	3			X

5–	रे म प –	प प प प	प प प प	प प प प
	X			
	म प नि सा	रें सां नि प	सां नि प म	नि प म रे
	2			
	प म रे सा	रे म प नि	प म – म	रे –, रे म
	0			
	प नि प म	– म रे –,	रे म प नि	प म – म
	3			X

6–	प प प प	प प प प	म प नि प	म रे सा –
	X			
	नि नि नि नि	नि नि नि नि	प नि सां नि	प म रे सा –
	2			
	सा सा सा सा	सां सां सां सां	नि सां रें सां	नि प म –
	0			
	रे रे रे रे	रें रें रें रें	सां रें मं रें	सां नि प म
	3			
	रे म प, रे	म प, रे म	प नि प म	रे रे सा –
	X			
	रे म प नि	सां ऽ ऽ ऽ सां	– नि प म	रे – ऽ –
	2			
	ऽ –, रे म	प नि सां ऽ	ऽ सां –नि	प म रे –
	0			
	ऽ –ऽ –	रे म प नि	सां ऽ ऽ सां	– नि प म
	3			X

1.4.8 राग मालकौंस :–

थाट भैरवी वादी म सा, रखिये रे प वर्ज्य।
तृतीय प्रहर निशि गाइये, मालकौंस का अर्ज्य।।

विवरण – इर राग की उत्पत्ति भैरवी थाट से मानी गयी है। इसमें ऋषभ और पंचम वर्ज्य है अतः इसकी जाति औडव–औडव है। इस राग का वादी मध्यम और सम्वादी षडज है। इसका गायन समय रात्रि का तीसरा प्रहर है। यह एक गंभीर प्रकृति का लोकप्रिय राग है। कुछ लोग इसे मालकंश तथा कुछ लोग मालकौश कहते हैं। इस राग का विस्तार तीनों सप्तकों में समान रूप से होता है। इसमें बड़ा ख्याल छोटा ख्याल, ध्रुपद, धमार, तराना, मसीतखानी गत, रज़ाखानी गत सभी गायी–बजायी जाती है। इस राग में यदि नी को शुद्ध कर दिया जाय तो राग चन्द्रकोश का निर्माण हो जाता है।

आरोह – सा ग म , ध नि सां।
अवरोह – सां नि ध म, ग सा।।
पकड़ – ध़ नि़ सा म, ग म ग सा।
न्यास के स्वर –सा, ग , म
समप्रकृति राग– चन्द्रकोश

आलाप

ध़ नि़ ध़ ध़ सा नि़ सा –ऽ सा –ऽ सा –ऽ
नि़ सा नि़ सा नि़ सा नि़ सा ग सा, ध़ – –ऽ ध़ – –ऽ
म़ ध़ नि़ – ध़ सा –ऽ सा –ऽ
ध़ नि़ ध़ नि़ ग – सा –ऽ सा –ऽ
सा ग – ग – ग –, म – ऽ म – ऽ, म – ऽ ग म ग म ग म ध म
म – ऽ म – ऽ, म ग म , ग सा –ऽ सा –ऽ सा –ऽ
ग म ध – ध –, नि ध नि ध म – ऽ म – ऽ, म – ऽ
सा ग सा ग म ग म ध म ध नि ध म – ऽ म – ऽ, म – ऽ
ग ध ग म ग नि़ ग – सा –ऽ सा –ऽ सा –ऽ
ग म ध – नि– सां –ऽ सां –ऽ ध नि ध नि गं सां –ऽ सां –ऽ
ध नि सां गं मं गं सां – सां –ऽ सां –ऽ सां –ऽ, नि सां, नि गं सां –
ध – ध – म ध नि ध म – ऽ म – ऽ म – ऽ, ग ध ग म ग
नि़ ग सा –ऽ सा –ऽ सा –ऽ

मसीतखानी गत् – तीनताल

स्थाई

								म ग म –	ग	सासा	ध–	निनि	सा	ग		
								दिर –	दा	दिर	दा	दिर	दा	रा		
									3							
म	म	म	सम	ग	सम	ध	म	मगम–	ग	सा						
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा–––	दा	रा						
X				2			0									

अन्तरा

										मम	ग	मम	ध	नि
										दिर	दा	दिर	दा	रा
											3			
सं	सां	सां	सांसां	नि	सांसां	गं	सां	धनिध	म					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा–दा	रा					
X				2				0						
										धनिनिसांमं	गं	सांसां	नि	सां
										दा दिर दा–	दा	दिर	दा	रा
											3			
ध	निनि	ध	म	ग	मम	नि	ध	मगम–	ग	सा				
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा––	दा	रा				
X				2				0						

तोड़े

1– ध़ नि़नि़ ध़, नि़	–सा सा ग म	ऽ सासा गग ममनि–	निध –ध म–
X			
ग मम ग सा	ऽ नि़नि़ सा ग	म ध नि सां	ऽ नि़नि़ सा ग
2			
म ध नि सां,	ऽ नि़नि़ सा ग	म ध नि सां	मुखडा
0			
2– म गग सा, ध़	मम ग, नि धध	म, सां निनि ध	नि सांसां नि ध
X			
म ग सा –,	म ऽ ऽ म	– ग नि़ सा	म ऽ ऽ म
2			
– ग नि़ सा	म ऽ ऽ म	– ग नि़ सा	मुखडा
0			

3– सा ग म म	म म म म	ध म ध म	ग सा नि़ सा
X			
ग म ध नि	सां – गं सां	नि सां नि ध	म ग सा –
2			
म ग सा, नि़	– सा ग ग	म – ऽ –,	म ग सा नि़
0			
– सा ग ग	म – ऽ –,	म ग सा नि़	– सा ग ग
3			X

4– सा म ग म	ग म ग सा	ग ध म ध	म ध म ग	
X				
म नि ध नि	ध नि ध म	ध सां नि सां	नि सां नि ध	
2				
नि सां मं मं	गं मं गं सां	नि – सां गं	सां नि ध –	
0				
म ध ध, म	ध ध, म ध	नि सां नि ध	म ग सा –	
3				
म ग सा –	ध़ नि़ सा ग	म –, ध़ नि़	सा ग म –	
X				
ध़ नि़ सा ग	म –, म ग	सा –, ध़ नि़	सा ग म –	
2				
ध़ नि़ सा ग	म –, ध़ नि़	सा ग म –,	म ग सा –	
0				
ध़ नि़ सा ग	म –, ध़ नि़	सा ग म –	ध़ नि़ सा ग	X
3				
5–सा – म –	ग म ग सा	नि़ सा ग सा	नि़ सा नि़ ध़	
X				
नि़ ध़ सा नि़	ग सा म ग	ध म नि ध	सां नि गं सां	
2				
नि सां नि ध	म ग सा –,	सा ग ,म	ग सा नि़ सा	
0				
सा ग –,म	ग सा नि़ सा	सा ग – म	ग सा नि़ सा	X
3				

1.4.9 राग झिंझोटी :–

कोमल मनि झिंझोटी है, चढ़त न लगे निखाद।
कहुॅ कोमल गांन्धार है ध–ग संवादि–वादि।। –रागचंद्रिकासार

विवरण – राग झिंझोटी खमाज थाट से उत्पन्न होता है। आरोह अवरोह में यह सम्पूर्ण जाति का है। इसमें गन्धार स्वर वादी और निषाद संवादी है। कुछ विद्वान धैवत को संवादी मानते हैं। इसे खमाज थाट का आश्रय राग कहा जाता है। इसका स्वरूप बहुत सीधा और सरल है। यह भी क्षुद्र रागों में से एक है। इसका विस्तार अधिकतर मंद्र और मध्य सप्तकों में विशेष रूप से होता है। इसके आरोह में ऋषभ स्वर लगाने से यह खमाज से भिन्न हो जाता है। इसके अतिरिक्त इसका सरल आरोह भी इसे अन्य रागों से पृथक बनाये रखता है। *ध़ सा, रे म ग* यह स्वर समुदाय रागवाचक है।

आरोह – सा रे ग, म प ध नि सां
अवरोह – सां नि ध, प म ग रे सा
पकड – ध़ सा रे म ग, रे ग सा, नि़ ध़ प़ ध़ सा
न्यास के स्वर – सा, ग, प
समप्रकृतिक राग – खमाज, देश

मसीतखानी ग़त

स्थाई

रेम	ग	सारे	नि़	ध़	सा	सा	सा	रेम	प	निध	प	मग	रे	ग	सा,
दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा
	3				×				2				0		
सारे	नि़	धनि़	ध़	प़	सा	रे	सा	रेम	प	निध	प	मग	रे	ग	सा,
दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा
	3				×				2				0		

अन्तरा

मम	प	निध	प	ध	सां	सां	सां	सारें	नि	धध	प	मग	रे	ग	सा,
दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा
	3				×				2				0		

तोड़े अठगुन में

1–	सारेनि़ध़प़ध़सा–	ध़सारेमगरेसा–	रेमपधनिधप–	मपगरे–सारे,	
	×				
	नि़ध़प़ध़सारेमग	रेमगरेनि़ध़सा–	ध़सारेमग–नि़ध़	सा–––ध़सारेम	
	2				
	ग–नि़धसा–––	ध़सारेमग–नि़ध़	सा–––––––	मुखडा	––
	0				3
2–	गरेसारेनि़ध़सा–	ध़सारेमगरेसा–	मगरेगसारेमप	मगरे–सारेमप	
	×				
	निधपधसांनिधनि	पधसारेंसानिधप	निधपधमपमग	रेमगरेसारेसा–	
	2				
	पधनिधपधमप	मगरेसा––रेम	ग–––––––	पधनिधपधमप,	
	0				
	मगरेसा––रेम	ग–––––––	पधनिधपधमप	मगरेसा––रेम	ग
	3				×

1.4.10 राग जैजैवन्ती :–

द्वै गांधार निखाद द्वै संवादै प–नि सोइ।
सोरटही के अंगतें जैजैवन्ती होइ।।

विवरण – यह राग खमाज थाठ के जन्य रागों में से एक है। इसकी जाति सम्पूर्ण है। वादी स्वर ऋषभ व संवादी पंचम माना जाता है। इसका समय रात्रि के दूसरे प्रहर का अन्तिम भाग मानते हैं। इस राग में दोनों गान्धार व दोनों निषादों का प्रयोग होता है। आरोह में तीव्र ग –नि तथा अवरोह में कोमल ग–नि लेते हैं, तथापि अवरोह करने में तीव्र गान्धार भी ले सकते हैं। कोमल गान्धार केवल अवरोह में लेते हैं, किन्तु वह प्रायः दोनों ऋषभों में जकड़ा हुआ रहता है। प्रचार में इसको सोरठ–अंग का राग मानते हैं। यह मिश्र राग है। गौड़, बिलावल और सोरठ, इन तीन रागों का मिश्रण इसमें पाया जाता है। इस राग में मन्द्र पंचम और मध्य ऋषभ की संगति सुन्दर लगती है।

कोमल गान्धार के करण कुछ संगीत–मर्मज्ञ इसे 'परमेल–प्रवेशक राग' ऐसी संज्ञा देते हैं। परमेल–प्रवेशक का अर्थ है– अगले ठाठ में ले जाने वाला राग। अर्थात् खमाज ठाठ के राग समाप्त करके काफी ठाठ के राग आरम्भ होने की सूचना यह राग देता है।

आरोह – सा, रे ग म प, नि सां।
अवरोह – सा नि ध प, ध म रे ग रे सा।
पकड़ – रे ग रे सा, नि़ सा ध़ नि़ रे,
न्यास के स्वर – रे, म, प,
सम्प्रकृतिक राग – खमाज, देश, झिझोंटी

मसीतखानी गत

स्थाई

रेग	रे	सासा	ध़	नि़	रे	रे	रे	रेग	म	गम	रे	ग	रे	नि़	सा
दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा
	3				×				2				0		
रेग	म	निध	प	ध	म	म	प	पध	म	गम	रे	ग	रे	नि़	सा
दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा
	3				×				2				0		

अन्तरा

मम	प	निध	प	नि	सां	सां	सां	रेंगं	रें	निध	प	म	रे	नि़	सा
दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा
	3				×				2				0		

तोड़े

1–	रेगरेसानि़ध़प–	रेगमरेगरेसा–	रेगमपधमगम	रेगरेसानिसारेसा	|
	×				
	रेगमपनिधपध	मप गमरेगरेसा	रेगम–रेगरे–	सा–––रेगम–	|
	2				
	रेगरे–सा––––	रेगम–रेगरे–	सा––––	मुखडा	|
	0				
2–	गमगमरेगरेसा	मपमपगमरेग	पधपधमपगम	धनिधनिपधमप	|
	×				
	निसांनिसांधनिपध	सांरेंसांरेंनिसांधनि	रेंगंरेंगंरेंसांनिसां	रेंसांनिधपमगम	|
	2				
	रेगरेसानि़सानि़ध़	प़नि़सा–रे–ध़नि़	रे––––––	रेगरेसानि़सानि़ध़	|
	0				
	प़नि़सा–रे–ध़नि़	रे––––––	रेगरेसानि़सानि़ध	प़नि़सा–रे–ध़नि़	| रे
	3				×

अभ्यास प्रश्न

1. मसीतखानी गत का परिचय दीजिए।
2. पाठ्यक्रम के किसी एक राग में मसीतखानी गत को तोडों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप मसीतखानी गत की स्वरलिपि को पढ़ सकेंगे एवं उनका क्रियात्मक रूप से वादन करने में सक्षम होंगे। फिरोज खॉं के पुत्र मसीत खॉं ने सितार वादन की एक शैली को विकसित किया जिसे मसीतखानी शैली कहते हैं। इसमें बजाई जाने वाली राग रचनाऍं मसीतखानी गत कहलाती हैं। पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत दी गई हैं। इन रागों का तोडों के द्वारा विस्तार भी किया गया है जिससे आप राग में अन्य तोडों को स्वयं बनाने में भी सक्षम होंगे।

1.6 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम के किन्हीं तीन रागों में मसीतखानी गत को तोडों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

इकाई 2 – रज़ाखानी गत का परिचय; पाठ्यक्रम के रागों में रज़ाखानी गत, स्थाई व अन्तरे के तोडों को लिपिबद्ध करना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 रजाखानी गत का परिचय
2.4 पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत व तोड़े
2.4.1 श्याम कल्याण
2.4.2 केदार
2.4.3 बिहागड़ा
2.4.4 पूरिया कल्याण
2.4.5 अहीर भैरव
2.4.6 भैरव
2.4.7 बैरागी
2.4.8 मालकौंस
2.4.9 झिंझोटी
2.4.10 जैजैवन्ती
2.5 सारांश
2.6 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0आई0–102) के चतुर्थ खण्ड की दूसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप विद्वान संगीतज्ञों के महत्वपूर्ण योगदान तथा उनकी संगीत साधना के प्रति लगन एवं परिश्रम को जान चुके होंगे। आप भारतीय संगीत के ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे। आप मसीतखानी गत के बारे में भी जान चुके होंगे।

इस इकाई में पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत व तोडों को प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई में आपकी सुविधा के लिये रजाखानी गत की स्वरलिपियाँ प्रस्तुत की गई हैं।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप रजाखानी गत तथा तोड़ों को लिपिबद्ध कर सकेंगे और इन्हे पढ़कर कियात्मक रूप में प्रस्तुत कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

1. रजाखानी गत को स्वरलिपि के माध्यम से पढ़ एवं बजा सकेंगे।
2. स्वर को लिपिबद्ध कर सकेंगे तथा लिपिबद्ध स्वर को पढ़ सकेंगे।
3. तोड़ों के माध्यम से राग का प्रस्तार कर सकेंगे।

2.3 रजाखानी गत का परिचय

रजाखानी गत की रचना लखनऊ के रजा खॉ द्वारा हुई। रजाखानी गत भी सरल एवं आकर्षक होने के कारण ही लोकप्रिय हो गई। सेनी घराने की द्रुत गतों का कठिन होना इस गत के लोकप्रिय होने का मुख्य कारण रहा। इसको पूरबी बाज भी कहा जाता है।

मसीतखानी एवं रजाखानी गतें अलग–अलग घरानों की होने पर भी अब क्रमशः विलम्बित व द्रुत गतों के रूप में लोकप्रिय होने के फलस्वरूप एक के पश्चात दूसरी बजायी जाती हैं।

<u>रजाखानी गत के बोल</u> – रजाखानी गत के बोल मसीतखानी गत की तरह निश्चित नहीं होते। दिर व द्रा जैसे द्रुत लय के बोल रजाखानी गत में राग–ताल बद्ध करके बजाये जाते हैं। इसका वादन मध्य अथवा द्रुत लय में होता है। इसमें स्थायी तथा अंतरा दो भाग होते हैं। रजाखानी बाज पर गायन, विशेष रूप से ठुमरी का प्रभाव देखा जाता है। रजाखानी गतों के आधार पर गायन की तराना शैली का प्रचार हुआ।

2.4 पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत व तोड़े

<u>2.4.1 राग श्याम कल्याण</u> :–

थाट कल्याण मानत मुनि जन, पस समवाद अनूपा
ओडव सम्पूरन प्रथम रात्रि, श्याम कल्याण स्वरूप।।

<u>विवरण</u> – प्रस्तुत राग कल्याण थाट जन्य माना गया है। इसके आरोह में गन्धार और धैवत वर्ज्य है और अवरोह में सातों स्वरों का प्रयोग किया जाता है अतः इसकी जाति औडव–सम्पूर्ण है। इस राग का गाने बजाने का समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। पंचम स्वर वादी तथा षडज स्वर सम्वादी है। इस राग में दोनो मध्यम तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। यह राग कल्याण का एक प्रहर है जो कि कामोद और कल्याण का सुन्दर समिश्रण है। गन्धार स्वर इस राग के अवरोह में अल्प और वक्र है। ग म प, ग म रे सा कामोद के इस टुकड़े के साथ राग का समापन करते हैं। प्रस्तुत राग के आरोह में तीव्र मध्यम और अवरोह में शुद्ध मध्यम का प्रयोग करते हैं। गन्धार के प्रयोग से अमुक राग सरलता से शुद्ध सारंग से अलग हो जाता है। तीव्र मध्यम और निषाद की दीर्घ करने से कमोद राग सरलता से अलग हो जाता है। इस राग में गन्धार का प्रयोग कामोद अंग से किया जाता है जैसे ग म प, ग म रे सा कुछ विद्वान इस रग में हमीर, गौड़सारंग केदार और कल्याण राग का मिश्रण मानते है।

आरोह – नि़ सा रे मं प नी सां।

अवरोह – सां नि ध प , ध मं प ग म प ग म रे सा, नी़ सा

पकड़ – नी सां रे ऽ रे ऽ मं प ग म रे ऽ नी सा।

न्यास के स्वर – प और नी।

समप्रकृति – शुद्ध सारंग, कामोद व कल्याण।

<u>आलाप</u>

नि़ रे नि़ सा – सा – ‹ सा – ‹ , नि़ सा रे – – मं – मं
दा ––––
प – ‹ प – ‹ प – ‹ , मं प , मं प ध – प – ‹ प – ‹ प – ‹
दा – दा ––––
गम रे – रे – सा – ‹ सा – ‹ नि़ रे नि़ सा ध़ – प –
दा –––––

प़ — < .प — < मं.प — < मं.प — < मं.प सा — < सा — <
दा — दा — दा ———
नि़ सा रे मं़ प़ — < प — <, ग म प , ग म रे — रे —
सा — < सा — < , मं़ प़ ध प — < .प — <, सां — < सां — <
सां — < ध नि ध नि सां नि रें — सां — < सां — < सां — <
नि सा ध — प , रे मं़ प़ नि — नि ध — प —
मं़ प़ नि सां रें — सां — < सां — <, रें पं गं मं रें — सां —
नि रें नि सां ध — .प — < प — < , मं़ .प ध प , प ग म
रे — सा — < सा — <

रज़ाखानी ग़त — तीनताल

स्थाई

							म	|	रे	नि़	—सा	सा
							दा	|	रा	दा	—र	दा
									3			
रे	<	<	मं	|	—प	प	गग	मम	|	रे—	रेसा	—सा
दा	—	—	दा	|	—र	दा	दिर	दिर	|	दा—	रदा	—र
X					2					0		
							नि	|	सा	रे	मं	प
							दा	|	रा	दा	रा	दा
									3			
नि	ध	नि	प	|	ध	मं	प	गग	|	मम	रे—	रेसा	—सा
दा	—	रा	दा	|	रा	दा	रा	दिर	|	दिर	दा—	रदा	—र
X					2					0		

अन्तरा

							प	|	प	सां	—सां	सां
							दा	|	रा	दा	—र	दा
									3			
सं	<	<	रे	|	मं	पं	गंगं	मंमं	|	रें—	रेंसां	—सां
दा	—	—	दा	|	रा	दा	दिर	दिर	|	दा—	रदा	—र
X					2					0		
							नि	|	सां	रें,	नि	सां
							दा	|	रा	दा	दा	रा
									3			
ध	—	प,	ग	|	म	प	गग	मम	|	रे—	रेसा	—सा
दा	—	रा	दा	|	रा	दा	दिर	दिर	|	दा—	रदा	—र
X					2					0		

तोड़े

1– रेरे मंप मंमं पध | पप धनि धम मंप | गम रेसा ऩिसा मु0
X 2 0

2– प़नि सासा ऩिसा रेरे | सारे मंमं रेमं पप | गम रेसा ऩिसा मु0
X 2 0

3– प़नि़ सासा रेमं पप | निसां रेंरें सांनि धप |
X 2

गम पग मप गम | धप मंप गम रेसा |
0 3

गम रेसा –सा ऩिसा | रे– ऽ–, गम रेसा |
X 2

–सा ऩिसा रे– ऽ– | गम रेसा –सा ऩिसा | X
0 3

4– निसा रेमं पनि सारें | सांनि धप मंप धप |
X 2

रेरे मंप नि– धप | धग –म रेसा ऩिसा |
0 3

ऽ– ऽ– रेसा ऩिसा | रे– ऽ–, ऽ– ऽ– |
X 2

रेसा ऩिसा रे– ऽ–, | ऽ– ऽ– रेसा ऩिसा | X
0 3

5– मंप पप मंप पप | मंप पप मंप पप |

मंप निनि पनि सांसां | निसां रेंरें सांनि धप |

धप मं,ध पमं धप | धप गम रेसा ऩिसा |

रेप मंप गम रेसा | रेसा निसा रे– ऽ– |

ऽ–, रेप मंप गम | रेसा रेसा ऩिसा रे–

ऽ– ऽ–, रेप मंप | गम रेसा रेसा ऩिसा | X
0 3

नि– सा– रे– मंप | प– निसां रेंसां निसां |
x 2

रेंपं मंप मंप मंप | मंप गमं रेंसां निसां |
0 3

रेंसां	नि,सां	निध,	निध	|	प,ध	पमं	धप	मंप
X					2			
रेरे	मंप	नि–	निध	|	पप	गम	रेसा	ऩिसा
0					3			
पग	–म	रे–	ऽ–	|	ऽ–	ऽ–,	ऽ–,	पग
X					2			
–म	रे–	ऽ–,	ऽ–	|	ऽ–,	ऽ–	पग	–म
0					3			X

<u>झाला</u>

×	2	0	3
रे रे रे रे	मं मं मं मं	प प प प	नि नि नि नि
दि र दि र	दि र दि र	दि र दि र	दि र दि र
नि – नि नि	नि नि नि नि	नि – नि नि	नि नि नि नि
दा – दि र	दि र दि र	दा – दि र	दि र दि र
सां < < <	सां < < <	सां < < <	सां < < <
नि < < <	सां < < <	रें < < <	सां < < <
रें < < <	पं < < <	गं < < <	मं < < <
रें < < <	रें < < <	सां < < <	सां < < <
नि < सां <	< < रें <	< सां < <	नि < सां <
ध < < <	ध < < <	प < < <	प < < <
मं < प <	ग < म <	रे < < <	सा < < <
सा < < <	सा < < <	सा < < <	सा < < <
ऩि < सा <	रे < प <	मं < < <	प < < <
ग < < <	म < < <	रे < < <	सा < < <
रे < सा <	रे < ऩि <	सा < रे <	मं < प <
ग < < < म	< < < रे	< < <	सा < < <
सा < < < सा	< < < सा	< < <	सा < < <
रे < < < रे	< < < रे	< < <	मं < प <
ग < < < म	< < < रे	< < <	सा < < <
रे < सा < रे	< नि < सा	< रे <	मं < प <
ग < < < म	< < < रे	< < <	सा < < <
सा < ऩि < रे	– < – ऩि	< रे ऩि	सा रे ऩि सा

2.4.2 राग केदार :–

दो मध्यम अरू शुद्ध स्वर, मानत थाट कल्याण।
सा मा वादी सम्वादी से, राग केदार बखान।।

विवरण – इस राग को कल्याण थाट जन्य माना गया है। हमीर राग की तरह इसमें भी दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है। वादी मध्यम और सम्वादी षडज है। इस राग के आरोह में रे ग और अवरोह में केवल ग स्वर वर्ज्य है, इसलिये इसकी जाति औडव–षाडव है। इस राग के अवरोह में कभी–कभी दोनों मध्यम एक के बाद एक लिये जाते हैं। इस राग के आरोह को लेते समय षडज से सीधे मध्यम पर जाते हैं। कभी–कभी अवरोह मे धैवत के साथ कोमल निषाद का अल्प प्रयोग भी किया जाता है, जो विवादी के रूप में प्रयुक्त होता है। अवरोह में गन्धार स्वर वक्र और दुर्बल है। कुछ विद्वान कहते हैं कि केदार में गन्धार गुप्त है। केदार के अनेक प्रकार प्रचलित हैं जैसे – शुद्ध केदार, चॉदनी केदार, जलधर केदार, मलुहा केदार इत्यादि।

आरोह– सा म , म प, ध प, नि ध सां।

अवरोह– सां नि ध प, मं प ध प म – रे सा।।

पकड़– सा म , म प, मं प ध प म – रे सा

न्यास के स्वर –सा म और प

समप्रकृति राग– हमीर और कामोद

आलाप

नि़ रे नि़ सा – ऽ सा – ऽ , ध़ – – प़ – ऽ प़ – ऽ

प़ सा – ऽ सा – ऽ सा म – ऽ म – ऽ सा रे सा – ऽ सा – ऽ

दा ––

सा म ग प़ – ऽ प़ – ऽ मं प मं प मं प ध – प – म

– ऽ म – ऽ , म ग प मं ध प म – ऽ म – ऽ म – ऽ ,

सा रे – सा – ऽ सा – ऽ , नि़ सा रे सा म – ऽ म – ऽ ,

दा ––

ग म म ग प़ – ऽ प़ – ऽ , मं प मं प ध – ध –

प़ – ऽ प़ – ऽ , मं प ध ऽ । सां – ऽ सां – ऽ सां – ऽ ,

दा –––

नि ध नि सां रें – सां – ऽ सां – ऽ, सां मं रें सा,

पं मं रें सां, नि सां रें सां, ध – प –, मं प ध प

ऽ म – ऽ म – ऽ , सा रे सा – सा – ऽ सा – ऽ

दा ––

रज़ाखानी गत – तीनताल

स्थाई

सा	ध	–	प	मं	पप	ध	प
दा	दा	–	र	दा	दिर	दा	रा
0				3			
म	<	<	रे	–	रे	सा	सा
दा	–	–	दा	–	र	दा	रा
X				2			
नि़	ध़ध़	सा	नि़	रे	सा	म	–
दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	–
0				3			
प	मंमं	ध	प	म	म	रे	सा
दा	दिर	दा	रा	दा	दा	दा	रा
X				2			

अन्तरा

प	पप	प	सां	–	सां	नि	सां
दा	दिर	दा	दा	–	र	दा	रा
0				3			
नि	सांसां	रें	सां	ध	ध	प	–
दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	–
X				2			
नि	सांसां	मं	रें	सां	ध	–	प
दा	दिर	दा	रा	दा	रा	–	दा
0				3			
मं	पप	ध	प	म	म	रे	सा
दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	रा
X				2			

तोडे

1–	मंप	धनि	सांनि	धप	मंप	धप	मम	रेसा	
	X				2				मु0
2–	मग	पमं	धप	निध	पम	धप	मरे	सा–	
	X				2				मु0
3–	मम	रेसा	नि़सा	रेसा	पमं	धप	मम	रेसा	
	X				2				मु0
4–	मंप	सां–	सांनि	धप	मंप	धप	म–	रेसा	
	X				2				मु0
5–	साम	रेम	रेम	रेसा	पमं	धप	मम	रेसा	
	X				2				मु0

6–	ध़नि़	सारे	नि़सा,	मंप		धप	मंप	मम	रेसा		
	X					2					मु0
7–	मग	पमं	धप	निध	|	सांनि	रेंसां	मंमं	रेंसा	|	
	X					2					
	निरें	सांनि	धप	मंप	|	मंध	पप	मम	रेसा	|	
	0	3									
	सारे	नि़सा	म–	धप	|	म–	<–,	सारे	नि़सा	|	
	X					2					
	म–	धप	म–	<–,	|	सारे	नि़सा	म–	धप	|	
	0					3					X

<u>झाला</u>

×				2				0				3			
म	म	मम	मम	प	प	पप	पप	ध	ध	धध	धध	नि	नि	निनि	निनि
दा	रा	दिर	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दा	रा	दिर	दिर
सां	<	<	<	सां	<	<	<	सां	<	<	<	सां	<	<	<
नि	<	<	<	सां	<	<	<	रें	<	<	<	सां	<	<	<
नि	<	<	<	सां	<	<	<	ध	<	<	<	प	<	<	<
मं	<	प	<	ध	<	प	<	ध	<	<	<	म	<	<	<
प	<	<	<	म	<	<	<	रे	<	<	<	सा	<	<	<
सा	<	<	<	सा	<	<	<	सा	<	<	<	सा	<	<	<
नि	<	<	<	सा	<	<	<	रे	<	<	<	सा	<	<	<
म	<	ग	<	प	<	मं	<	ध	<	प	<	म	<	<	<
प	<	<	<	म	<	<	<	रे	<	<	<	सा	<	<	<
ध़	<	<	<	नि़	<	<	<	सा	<	<	<	सा	<	<	<
रे	<	<	<	रे	<	<	<	सा	<	<	<	सा	<	<	<
नि़	<	सा	<	ध	<	प	<	म	<	<	<	म	<	<	<
प	<	<	<	म	<	<	<	रे	<	<	<	सा	<	<	<
म	<	ग	<	प	<	<	<	प	<	<	<	प	<	<	<
ध	<	<	<	ध	<	<	<	प	<	<	<	प	<	<	<
मं	<	प	<	मं	<	ध	<	प	<	ध	<	मं	<	प	<
ध	<	<	<	म	<	<	<	म	<	<	<	म	<	<	<
प	<	<	<	म	<	<	<	रे	<	<	<	सा	<	<	<

2.4.3 राग बिहागड़ा :–

थाट बिलावल शुद्ध स्वर, ओडव सम्पूरन रूप।
ग नि स्वर सम्वाद करत, राग बिहागड़ा अनूप।।

विवरण – राग बिहागड़ा थाट जन्य माना जाता है। इसमें दोनों निषाद तथा शेष स्वर शुद्ध प्रयोग किये जाते हैं। प्रस्तुत राग बिहाग अंग का राग है। आरोह में ऋषभ वर्जित होने से तथा अवरोह में सभी स्वर प्रयोग होने से इस राग की जाति षाडव–सम्पूर्ण है। धैवत स्वर आरोह में खमाज अंग से कोमल निषाद के साथ लगता है। जैसे ग म प ध नी ध प, ग म प म ग ऽ ऽ रे म। इसमें वादी स्वर गन्धार तथा सम्वादी स्वर निषाद है। आरोह और अवरोह दोनों में ही शुद्ध निषाद का प्रयोग किया जाता है। तार सप्तक जाते समय धैवत का लंधन कर जाते है। जैसे – ग म प नी सां इलिए कुछ विद्वान इसको औडव–सम्पूर्ण भी मानते हैं। यह एक पूर्वांग राग है।

आरोह – सा ग म प नी सां
अवरोह – सां नि ध प, ध नी ध प ग म प म ग ऽ ऽ रे सा।।
पकड़ – ग म प ध नी ध प, ग म प म ग ऽ ऽ रे सा
समप्रकृति –विहाग, खमाज व पटबिहाग
न्यास के स्वर – सा ग प नी।

आलाप

प़ नि़ – – सा – ‹ सा – ‹, प़ नि़ सा ग – रे सा
दा –
सा – ‹ सा – ‹ ग म म ग – ग प म म प
प – ‹ प – ‹, ग म प म ग – रे सा , सा ग म प – ‹
प – ‹ प – ‹, ग म प ध नि ध प – ग म प –
म ग , ग – ‹ ग – ‹ ग – रे सा सा – ‹ सा – ‹
ग प ग म ग प – ‹ प – ‹, म ग म ग म प नि –
नि – ‹ नि – ‹ प नि सां – नि ध – प – ‹ प – ‹
प नि – ध प ग म म ग प – म ग – ‹ ग – ‹
ग – रे सा , ग म प नि सां – ‹ सां – ‹ सां – ‹
प नि सां – गं रें सां , नि रें नि सां नि ध प ,
ग म प नि प सां नि ध प, ग म प– म ग
ग – ‹ ग – ‹, ग म प नि सां गं रें सां –
सां – ‹ सां – ‹ नि रें नि सां नि ध प,
ग म ग म प म, प ध प ध नि ध प – ‹ प – ‹
ग म प – म ग – ‹ ग – ‹ रे सा – ‹ सा – ‹

रज़ाखानी गत – तीनताल

स्थाई

								ग	म	प	नि	सां
								दा	रा	दा	दा	रा
									3			
नि	–	प	नि	ध	प	ग	म	ग	–रे	सा		
दा	–	दा	दा	रा	दा	दा	रा	दा	–र	दा		
×				2				0				
								नि़	सा	ग	–म	
								दा	रा	दा	–र	
									3			
प	–	म	ग	–	म	पप	निनि	ध–	धप	–प		
दा	–	दा	रा	–	र	दिर	दिर	दा–	रदा	–र		
×				2				0				

अन्तरा

								ग	म	प	नि	–
								दा	रा	दा	रा	–
									3			
सां	–	–	सां	–	सां	नि	सां	रें	सां	–		
दा	–	–	दा	–	दा	दा	रा	दा	रा	–		
×				2				0				
								नि	सां	नि	–	प
								दा	रा	दा	–	रा
									3			
पध	नि	ध	प	–	म	ग	म	ग	–रे	सा		
दिर	दा	दा	रा	–	र	दा	रा	दा	रदा	रा		
×				2				0				

तोड़े

1–	गरे	सासा	निध	पप	गरें	सांसां	निध	पम	गम	गरे	सा–		मु0
	×				2				0				
2–	निसा	गम	प–	ऽ–	गम	पनि	सां–	ऽ–	पम	गरे	सा–		मु0
	×				2				0				
3–	गम	पध	निध	पम	गम	पम	गरे	सान्	सा–	सां–	सा–		मु0
	×				2				0				
4–	साग	गग	रेसा	निसा		गम	पग	मग	रेसा				
	×												
	ऽ–	निसां	नि–	ऽ–		निसां	नि–	ऽ–	निसां				
	0					3							×
5–	गम	पप	गम	पप		गम	पप	गम	पप				
	×					2							

	गम	पध	निध	पम	|	गम	पम	गरे	सा–	|
	0					3				
	ग–	मप	–प	निसां	|	नि–	<–	ग–	मप	|
	×					2				
	–प	निसां	नि–	<–	|	ग–	मप	–प	निसां	|
	0					3				×
6–	पप	निसा	रेसा	निसा	|	सासा	गम	पम	गम	|
	×					2				
	पप	निसां	रेंसां	निसां	|	गरें	सांनि	धप	मग	|
	0					3				
	गम	पम	गरे	सा–	|	गम	–ग	मप	निसां	
	×					2				
	गम	–ग	मप	निसां	|	गम	–ग	मप	निसां	
	0					3				×
7–	निसा	गम	प–	<–		गम	पनि	सां–	<–	
	×					2				
	पप	निसां	गं–	<–		गरें	सांनि	सांनि	धप	
	0					3				
	गम	पध	निध	पम		गम	पम	गरे	सा–	
	×					2				
	निसा	गम	पम	गम		पनि	–सां	नि–	<–	
	0					3				
	<–	निसा	गम	पम		गम	पनि	–सां	नि–	
	×					2				
	<–	<–	निसा	गम		पम	गम	पनि	–सां	
	0					3				×

झाला

ग	ग	गग	गग	म	म	मम	मर्म	प	प	पप	पप	नि	नि	निनि	निनि
दा	रा	दिर	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दा	रा	दिर	दिर
सां	<	<	<	सां	<	<	<	सां	<	<	<	सां	<	<	<
नि	<	<	<	सां	<	गं	<	रें	<	<	<	सां	<	<	<
नि	<	<	<	ध	<	<	<	प	<	<	<	प	<	<	<
ग	<	म	<	प	<	नि	<	सां	<	रें	<	नि	<	सां	<
ध	<	प	<	ग	<	म	<	ग	<	रे	<	सा	<	<	<
सा	<	<	<	सा	<	<	<	सा	<	<	<	सा	<	<	<
प	<	<	<	ग	<	म	<	ग	<	रे	<	सा	<	<	<
नि़	<	<	<	सा	<	<	<	रे	<	<	<	सा	<	<	<
नि़	<	<	<	सा	<	<	<	रे	<	<	<	सा	<	<	<

ग	ऽ	म	ऽ	प	ऽ	ध	ऽ	<u>नि</u>	ऽ	ध	ऽ	प	ऽ	म	ऽ
ग	ऽ	ऽ	ऽ	ग	ऽ	म	ऽ	ग	ऽ	रे	ऽ	सा	ऽ	ऽ	ऽ
नि़	ऽ	ऽ	सा	ऽ	ऽ	ग	ऽ	ऽ	ऽ	म	ऽ	प	ऽ	म	ऽ
ग	ऽ	म	ऽ	प	ऽ	नि	ऽ	सां	ऽ	ऽ	ऽ	सां	ऽ	ऽ	ऽ
नि	ऽ	ऽ	ऽ	सां	ऽ	ऽ	ऽ	रें	ऽ	ऽ	ऽ	सां	ऽ	ऽ	ऽ
नि	ऽ	ऽ	ऽ	सां	ऽ	ऽ	ऽ	रें	ऽ	ऽ	ऽ	सां	ऽ	ऽ	ऽ
गं	ऽ	ऽ	ऽ	गं	ऽ	मं	ऽ	गं	ऽ	रें	ऽ	सां	ऽ	ऽ	ऽ
ग	ऽ	ऽ	ऽ	म॑	ऽ	ग	ऽ	रे	ऽ	ऽ	ऽ	सा	ऽ	ऽ	ऽ
प	ऽ	सां	ऽ	नि	ऽ	रें	ऽ	सां	ऽ	गं	ऽ	रें	ऽ	सा	ऽ
नि	ऽ	ऽ	ऽ	सां	ऽ	नि	ऽ	ध	ऽ	ऽ	ऽ	प	ऽ	ऽ	ऽ
ग	ऽ	ऽ	म	ऽ	ऽ	प	ऽ	ऽ	ऽ	प	ऽ	<u>नि</u>	ऽ	ध	ऽ
प	ऽ	ऽ	ऽ	ग	ऽ	ऽ	म	ग	ऽ	रे	ऽ	सा	ऽ	ऽ	ऽ
सा	ऽ	ऽ	ऽ	सा	ऽ	ऽ	ऽ	सा	ऽ	ऽ	ऽ	सा	ऽ	ऽ	ऽ
प़	ऽ	ऽ	नि	ऽ	ऽ	नि़	ऽ	ऽ	नि़	ऽ	ऽ	नि़	ऽ	नि़	ऽ
सा	ऽ	ऽ	ऽ	सा	ऽ	ऽ	ऽ	सा	ऽ	ऽ	ऽ	सा	ऽ	ऽ	ऽ
नि़	सा	ग	म	प	म	ग	म	प	नि	सां	रे	सां	नि	ध	प
ग	म	प	ध	<u>नि</u>	ध	प	ध	प	म	ग	म	ग	रे	सा	–
नि़	सा	ग	म	प	–	नि	सां	नि	–	ऽ	–	नि़	सा	ग	म
प	–	नि	सां	नि	–	ऽ	–	नि़	सा	ग	म	प	–	नि	सां

<u>2.4.4 राग पूरिया कल्याण</u> :–

थाट मारवा रे म विकृत, ग नि सम्वाद अनूप।
जति समपूर्ण सायं समय, पूरिया कल्याण रूप।।

<u>विवरण</u> – इस राग का सृजन, पूरिया तथा कल्याण दो प्राचीन रागों के समन्वय से हुआ है। इसके पूर्वांग में पूरिया और उत्तरांग में कल्याण है। इसका प्रारम्भ स को छोड़ते हुऐ म, ध नी सा को प्रयोग करते हैं। यह मारवा थाट जन्य राग है। इसमें रे कोमल तथा मध्यम तीव्र लगता है। वादी ग और सम्वादी नि है। यह एक सायंकालीन संधिप्रकाश तथा परमेल प्रवेशक राग है। प्रस्तुत राग में ऋषभ और धैवत होने लगेगा। कल्याण राग से बचने के लिए कोमल ऋषभ और पूरिया से बचने के लिये पंचम और शुद्ध ध के प्रयोग से यह आसानी से पूरिया धनाश्री राग से अलग हो जाता है। यह एक बहुत ही लोकप्रिय राग है जिसको गायक और वादक दोनों ही पसन्द करते हैं। इस राग का विस्तार तीनों ही सप्तक में किया जाता है। इस राग का गन्धार ओर निषाद एक प्रबल स्वर है।

आरोह– नि़ <u>रे</u> ग म॑ प म ध नी सां।

अवरोह– सां नि ध प म॑ ग <u>रे</u> ग <u>रे</u> सा।।

पकड़– नि <u>रे</u> ग म॑ प – म॑ ग म॑ <u>रे</u> ग, नि़ <u>रे</u> सा।

न्यास के स्वर– नि सा ग प

समप्रकृति राग– मारवा व पूरिया व कल्याण।

आलाप

धृ नि़ – – धृ –   नि़ रे नि़ सा – ‹ सा – ‹ सा – ‹

दा –––––

धृ – – नि़ रे नि़   धृ पृ – ‹ पृ – ‹ पृ – ‹

मं नि़ धृ , धृ सा नि़ , नि़ रे सा, सा – ‹ सा – ‹

नि़ रे ग मं पृ – ‹ पृ – ‹ पृ – ‹, ग मं ग मं ध प ,

दा –– दा दा दा

पृ – ‹ पृ – ‹ पृ – ‹ ग मं ध नि , ध नि नि ध

मं ध ध मं, ग मं मं ग , मं ध पृ – ‹ पृ – ‹

मं ग मं ग मं ध नि – ‹ नि – ‹ नि – ‹,

ध नि नि ध नि रें सां – सां – ‹ सां – ‹ सां – ‹

ध नि रें गं – ‹ गं – ‹ गं – ‹, मं गं मं गं रें – सां – ‹

सां – ‹ सां – ‹, नि रें नि ध नि ध मं ध मं, ध पृ – ‹

पृ – ‹, पृ – ‹, ग मं ग ध पृ – ‹ पृ – ‹

मं प मं ग ग मं रे मं ग , नि़ – –

रे ग मं प मं ग मं ग, रे ग रे , नि़ रे सा– ‹ सा– ‹

रज़ाखानी गत – तीनताल
स्थाई

												नि़	रेरे	ग	मं
												दा	दिर	दा	रा
												3			
प	–	मं	ध	प	मं	गग	मंमं	ग–	गरे	–रे	सा–				
दा	–	दा	रा	दा	रा	दिर	दिर	दा	रदा	–र	दा–				
×				2				0							
												नि़	धृधृ	नि़	मं
												दा	दिर	दा	दा
												3			
गग	मं,	नि	ध	प	मं	गग	मंमं	ग–	गरे	–रे	सा–				
दिर	दा	दा	रा	दा	रा	दिर	दिर	दा–	–र	दा	दा				
×				2				0							

अन्तरा

ग	|	गग	मं	ध
दा	|	दिर	दा	रा
3				

नि	नि	सां	–	|	–	निनि	धध	सांसां	|	नि–	निरें	–रें	सां–
दा	रा	दा	–	|	–	दिर	दिर	दिर	|	दा–	रदा	–र	दा–
×					2					0			

नि	|	रेंरें	गं	मं
दा	|	दिर	दा	रा
3				

गं	रें	सां	नि	|	ध	प,	गग	मंमं	|	ग–	गरे	–रे	सा–
दा	रा	दा	रा	|	दा	र	दिर	दिर	|	दा–	रदा	–र	दा–
×					2					0			

तोड़े

1 गमं गमं गमं धनि | सांनि धप मंध पमं | गमं गरे सानि़ सा– | मुखडा
× 2 0

नि़ध सानि़ रे़सा गरे | मंग पमं धप निध | पमं गरे सानि़ सा– | मुखडा
× 2 0

ग– मं– ध– नि– | निध पमं धप मंग | पमं गरे मंग रे़सा | मुखडा
× 2 0

गमं प– पप पप | पप पप मंध पमं | गमं गरे सानि़ सा– | मुखडा
× 2 0

5 गमं पम गमं धनि | सांनि धप मंग रे़सा |
× 2

नि़रे गमं प– नि़रे | गमं प– नि़रे गमं |
0 3 ×

6 ऽ– गग गग गग | गमं पमं गरे सा– |
× 2

गमं –ध प–, गमं | –ध प– गम –ध |
0 3 ×

7 गमं धमं मंध निध | धनि रेंनि निरें | गंरें |
X 2

सांनि रेंसां निध पमं | गमं गरे सानि़ सा– |
0 3

निरे गमं गमं गमं | प– प– निर गमं |
X 2

प– मंध प– ऽ– | निरे गमं प– मंध |
0 3 ×

झाला

ग	ग	गग	गग	म॑	म॑	म॑म॑	म॑म॑	ध	ध	धध	धध	नि	नि	निनि	निनि
दा	रा	दिर	दा	दा	रा	दिर	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दा	रा	दिर	दिर
सां	<	<	<	सां	<	<	<	सां	<	<	<	सां	<	<	<
नि	<	<	<	रें	<	<	<	सां	<	<	<	सां	<	<	<
ध	<	ध	<	नि	<	रें	<	गं	<	<	<	गं	<	<	<
नि	<	<	<	रें	<	<	<	सां	<	<	<	सां	<	<	<
ध	<	नि	<	रें	<	नि	<	धा	<	<	<	प	<	<	<
म॑	<	धा	<	धा	<	<	<	म॑	<	<	<	नि	<	<	<
धा	<	<	<	प	<	<	<	म॑	<	<	<	ग	<	<	<
म॑	<	<	<	ग	<	<	<	नि	<	<	<	रें	<	<	<
सा	<	<	<	सा	<	<	<	सा	<	<	<	सा	<	<	<
धा़	<	<	<	नि़	<	<	<	धा़	<	<	<	सा	<	<	<
नि़	<	<	<	रें	<	<	<	सा	<	<	<	सा	<	<	<
नि़	<	रें	<	ग	<	म॑	<	प	<	<	म॑	<	<	ग	<
ग	<	म॑	<	ध	<	नि	<	सां	<	<	नि	<	<	ध	<
नि	<	रें	<	गं	<	म॑	<	गं	<	<	रें	<	<	म॑	<

2.4.5 राग अहिर भैरव :–

भैरव पूरब अंग में काफी उत्तर भाग ।
अति विचित द्वैरूपसे होत अहीरी राग।।

विवरण – राग अहिर भैरव, भैरव का एक प्रकार है जो भैरव थाट जन्य है। यह सम्पूर्ण जाति का राग है। इसमें कोमल ऋषभ और कोमल निषाद का प्रयोग होता है। यह एक सम्पूर्ण जाति का प्रातः कालीन राग है। वादी मध्यम और सम्वादी षड़ज है। यह प्राचीन राग नहीं है किन्तु इसमें भैरव और काफी का मिश्रण मानते हैं एवं कुछ भैरव और खमाज का। इसके पूर्वांग में भैरव एवं उत्तरांग में खमाज है। इस राग में भैरव अंग अधिक प्रबल है। ऋषभ पर आंदोलन और म–रे की संगत भैरव अंग का परिचायक है। इस राग का विस्तार तीनों ही सप्तकों में किया जाता हैं इसके आरोह में पंचम अल्प है सूक्ष्म दृष्टि से यह प्रचलित थाटों में से किसी में भी नहीं आता किन्तु भैरव अंग प्रबल होने के कारण इसे भैरव थाट में रख दिया गया है।

आरोह– सा रे ग म प ध नि सां।
अवरोह– सां नि ध प म ग रे – सा।
पकड़ – ग म रे ऽ ऽ सा नी़ सा ध़ नी़ रे सा
न्यास के स्वर– सा, रे, ग, म
समप्रकृति राग– भैरव, खमाज, काफी और बागेश्री

आलाप

ध़ नि ध़ ध़ सा नि सा – > सा – > सा – >

दा––– दा–––

नि रे – – सा – > सा – > रे सा नि ध़ – प़ – > प़ – >

प़ नि ध़ ध़ सा नि रे – – सा – > सा – > सा – >

ध़ नि सा रे ग – > ग – > ग – > ग म प ग म

दा – – – – दा – – – –

रे – – सा – > सा – >, रे ग म प – > प – > प – >

ग म म ग रे – – सा – > सा – > सा – >

ग म म ग म ध प – > प – >, प ध ध प म प प म

दा – – – दा – ––

ग म प ध नि ध प ध नि – – ध सां – > सां – >

ध नि रें – – रें – – सां – > सां – > ध नि सां रें गं – >

गं – >, गं मं पं गं मं रें – – सां – > सां – > सां – >

नि रें सां रें निसां नि ध प – > प – > प – >

दा – – – दा –

ग म प ग म रे – – सा – > सा – > सा – >

रज़ाखानी ग़त – तीन ताल

स्थाई

									रे	ग	म	ध	प
									दा	रा	दा	दा	रा
										3			
म	–	–	–	प	–	गग	मम	रे–	रेसा	–सा			
दा	–	–	–	दा	–	दिर	दिर	दा–	रादा	–रा			
×				2				0					
									नि	ध़	प़	–	ध़
									दा	रा	दा	–	रा
नि	सा	रे,	ग	म	प,	म	ग	रे	सा	–			
दा	दा	रा	दा	दा	दा	दा	रा	दा	रा	–			
×				2				0					

अन्तरा

										ग	म	प	–	ध
										दा	रा	दा	–	रा
											3			
नि	–	सां	–	<–	रेंरें	सांनि	निनि	ध–	धप	–प				
दा	–	रा	–	––	दिर	दिर	दिर	दा–	रदा	–रा				
×				2				0						

										ध	नि	सां	–	रें
										दा	रा	दा	–	रा
											3			
गं	रें	सां,	नि	ध	प,	मम	गग	रे–	रेसा	–सा,				
दा	रा	दा	दा	रा	दा	दिर	दिर	दा–	रदा	–रा				
×				2				0						

तोडे

1	गम	प,ग	मप,	गम	गम	पध	निसां	निध	पम	ग,रे	सा–	मुखडा
	×				2				0			
2	गम	ग–	ग–	ध–	गंमं	गं–	रेंसां	निध	पम	ग,रे	सा–	मुखडा
	×				2				0			
3	सारे	गम	प–	गम	पध	पम	गरे	सा–				
	×				2							
	<–	गप	म–,	<–	गप	म–	<–	गप				
	0				3				×			
3	गम	ग,ग	मग,	गम	गम	धप	मग	मग				
	×				2							
	सासा	सारे	रेरे	गम	म–	गप	म–	गम				
	0				3				×			
4	सारे	ग–	गग	गग	गम	प–	पप	पप				
	×				2							
	पध	नि–	निनि	निनि	धनि	सां–	सांसां	सांसां				
	0				3							
	धनि	सांरें	पध	निसां	मप	धनि	गम	पध				
	×				2							
	रेग	मप	धनि	सांनि	धप	मग	मग	रेसा				
	0				3							
	मग	रेसा	गम	धप	म–	गम	धप	म–				
	×				2							
	गम	धप	म–,	मग	रेसा	गम	धप	म–				
					3				×			

झाला

X				2				0				3			
म	म	मम	मम	प	प	पप	पप	ध	ध	धध	धध	नि	नि	निनि	निनि
दा	दा	दिर	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दा	दा	दिर	दिर	दा	रा	दिर	दिर
सां	<	<	<	सां	<	<	<	सां	<	<	<	सां	<	<	<
ध	<	<	<	नि	<	<	<	रें	<	<	<	सां	<	<	<
ध	<	नि	<	सां	<	रें	<	गं	<	<	<	गं	<	<	<
गं	<	<	<	गं	<	मं	<	रें	<	<	<	सां	<	<	<
रें	<	<	<	नि	<	<	<	सां	<	<	<	ध	<	<	<
नि	<	<	<	प	<	<	<	प	<	<	<	प	<	<	<
ग	<	<	<	ग	<	<	<	म	<	<	<	ध	<	<	<
प	<	<	<	प	<	<	<	प	<	<	<	प	<	<	<
म	<	<	<	प	<	<	<	ग	<	<	<	म	<	<	<
रे	<	<	<	रे	<	<	<	सा	<	<	<	सा	<	<	<
सा	<	<	<	सा	<	<	<	सा	<	<	<	सा	<	<	<
ध़	<	नि़	<	सा	<	रे	<	ग	<	<	<	ग	<	<	<
ग	<	<	<	ग	<	म	<	रे	<	<	<	सा	<	<	<
रे	<	सा	<	रे	<	नि़	<	सा	<	ध़	<	नि़	<	प़	<
ध़	<	<	<	नि़	<	<	<	रे	<	<	<	सा	<	<	<
ध़	<	नि़	<	सा	<	रे	<	ग	<	<	<	ग	<	<	<
मं	<	प	<	ग	<	म	<	रे	<	<	<	सा	<	<	<
रे	<	<	<	रे	<	<	<	रे	<	<	<	ग	<	म	<
ध	<	प	<	ग	<	म	<	रे	<	<	<	सा	<	<	<
ध़	<	नि़	<	<	<	सा	<	<	रे	<	<	ग	<	म	<

X

2.4.6 राग भैरव :—

थाट भैरव रे ध कोमल, ध रे स्वर संवाद।
प्रात समय मिल गाइये, सम्पूरन भैरव राग।।

विवरण — इसकी रचना भैरव थाट से की गई हैं इसलिये यह आश्रय राग है। इसमें ऋषभ व धैवत स्वर कोमल तथा बाकी स्वर शुद्ध है अतः इसकी जाति सम्पूर्ण—सम्पूर्ण है। वादी धैवत तथा सम्वादी ऋषभ है। इसका गायन एवं वादन का समय प्रातः का प्रथम प्रहर है। इसे प्रातः काल संधिप्रकाश के समय गाते बजाते हैं। ऋषभ धैवत का आन्दोलन इस राग को भैरव अंग का राग प्रदर्शित करता है। इसके आरोह में प्रायः ऋषभ व पंचम छोड़ देते हैं। जैसे — सा ग म प, ग म ध प। यह एक प्राचीन

राग है जिसे चारोमतानुसार इसे एक मुख्य राग माना गया है। यह राग करूण प्रकृति का और गंभीर है। इसमें ध्रुपद, धमार, बड़ा ख्याल, छोटा ख्याल, तराना व मसीतखानी, रज़ाखानी गत प्रचुर मात्रा में मिलता है। मध्यम से ऋषभ की मीड़ इसमें बहुत मधुर लगता है।

आरोह — सा रे ग म प ध नी सां।
अवरोह — सां नी ध प म ग रे सा ।।
पकड़ — ग म ध प, ग म रे सा
न्यास के स्वर — सा रे और ध
समप्रकृति राग — कालिंगड़ा और रामकली

आलाप

ध़ — — ध़ सा नि़ सा — सा — ऽ सा — ऽ सा — ऽ
दा ——————
नि़ सा — नि़ सा नि़ सा रे सा ध़ — — सा — ऽ सा — ऽ
दा — दा——— दा ———— दा ——————
सा ग — ऽ ग — ऽ ग प ग म रे — — सा — ऽ
सा — ऽ सा — ऽ, सा ग ,— ग म — , म प — ,
प— ऽ प— ऽ , ग म ध— — प— ऽ प— ऽ
म प — , ग म — , रे — — सा — ऽ सा — ऽ,
ग म ध— — नि सां — सां — ऽ सां — ऽ
निसां — ,निरें— , सां रें — , निसां — ध — — प— ऽ
प— ऽ प— ऽ,ग म ध नि सां ध— — प— ऽ प— ऽ
म प ध प म प — ग — ऽ ग — ऽ, ग प ग म रें — — सा
सा — ऽ सा — ऽ, ग म ध नि सां — सां — ऽ सां — ऽ
गं — ऽ गं — ऽ, गं पं गं मं रें — — सां — ऽ सां — ऽ
निसां— निसां निसां रें सां — ध— — प— ऽ प— ऽ
सा ध प ध म प ग — ऽ ग — ऽ ग म प ग म
रे — — सा — ऽ सा — ऽ सा — ऽ

रज़ाखानी ग़त — तीनताल
स्थाई

सा	धध	प	ध	म	पप	ग	म	ध	—	ध	प	ग	मम	रे	सा
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	—	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
0				3				×				2			

ध़	धध	ध़,	नि़	—निनि		सा	सा	ग	मम	धध	पप	ग—	मरे	—रे	सा—
दा	दिर	दा	रा	—र	दा	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दा—	रदा	—र	दा—
0				3				×				2			

अन्तरा

ग	मम	ध	ध	|	नि	नि	सा	–	|	नि	सांसां	रेंरें	सांसां	|	नि–	निध	–ध	प–
दा	दिर	दा	रा	|	दा	दा	रा	–	|	दा	दिर	दिर	दिर	|	दा–	रदा	–दा	रा–
0					3					×					2			

नि	सांसां	गं	मं	|	रें	रे	सां	–	|	नि	ध	–प	प	|	ग	मम	रे	सा
दा	दिर	दा	रा	|	दा	दा	रा	–	|	दा	दा	–र	दा	|	दा	दिर	दा	रा
0					3					×					2			

तोड़े

1–	धनि	सां–	सानि	धप	|	मप	गम	रेरे	सा–	मुखडा		
	×					2						
2–	गम	प,ग	मप,	गम,	|	गम	धप	मग	रेसा	मुखडा		
	×					2						
3–	ध–	नि–	सां–	गं–	|	रेंसां	निध	पम	गरे	मुखडा		
	×					2						
4–	रेग	मप	गम	ध–	|	पम	गम	रेरे	सा–	मुखडा		
	×					2						
	साग	–म	ध–	साग	|	–म	ध–	साग	–म	मुखडा	|	
	0					3						X
5–	रेग	गरे,	गम	मग	|	मप	पम,	पध	धप	मुखडा		
	×					2						
	धनि	निध,	निसा	सांनि	|	धप	गम	रेरे	सा–	मुखडा		
	0					3						
	गम	प–	पम	गम	|	ध–	<–,	गम	प–	मुखडा		
	×				2							
	पम	गम	ध–	<–,	|	गम	प–	गम	पम	मुखडा	|	
	0					3						×
6–	रेरे	सा–	गम	रेरे	|	सा–	पम	गम	रेरे	मुखडा		
	×					2						
	सा–,	धप	मप	गम	|	रेरे	सा–	निनि	धप	मुखडा		
	0					3						
	मप	गम	रेरे	सा–	|	सांनि	धप	मप	धप	मुखडा		
	×					2						
	मप	गम	रेरे	सा–	|	निसा	गम	प–	गम	मुखडा	|	
	0					3						×

झाला

×				2				0				3			
ग	ग	गग	गग	म	म	मम	मम	ध	ध	धध	धध	नि	नि	निनि	निनि
दा	दा	दिर	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दा	रा	दिर	दिर
सां	<	<	<	सां	<	<	<	सां	<	<	<	सां	<	<	<
गं	<	<	<	गं	<	मं	<	रें̲	<	<	<	सां	<	<	<
नि	<	<	<	सां	<	<	<	रें̲	<	<	<	सां	<	<	<
ध̲	<	<	<	ध̲	<	<	<	प	<	<	<	प	<	<	<
ग	<	म	<	ग	<	म	<	ध̲	<<	<	प	<	<	<	
ग	<	<	<	म	<	<	<	रे̲	<	<	<	सा	<	<	<
ध̲	<	प	<	ग	<	म	<	रे̲	<	<	<	सा	<	<	<
सां	<	नि	<	ध̲	<	प	<	म	<	प	<	ध̲	<	प	<
म	<	प	<	ग	<	म	<	रे̲	<	<	<	सा	<	<	<
ग	<	<	<	ग	<	<	<	ग	<	<	<	ग	<	<	<
ग	<	म	<	प	<	ग	<	म	<	रे̲	<	सा	<	<	<
नि़	<	<	सा	<	<	नि़	<	<	सा	<	<	नि़	<	<	सा
ग	<	<	<	म	<	<	<	रे̲	<	<	<	सा	<	<	<
ध़̲	<	<	<	ध़̲	<	<	<	ध़̲	<	<	<	ध़̲	<	<	<
नि़	<	<	<	नि़	<	<	<	सां	<	<	<	सां	<	<	<
ध़̲	<	<	नि़	सा	<	ग	<	म	<	प	<	ग	<	म	<
रे̲	<	<	<	रे̲	<	<	<	सा	<	<	<	सा	<	<	<
सा	<	<	<	ध̲	<	<	<	प	<	<	<	ध̲	<	<	<
म	<	<	<	प	<	<	<	ग	<	<	<	म	<	<	<
रे̲	<	<	<	रे̲	<	<	<	ग	<	<	<	म	<	<	<
रे̲	<	<	<	रे̲	<	<	<	सा	<	<	<	सा	<	<	<
नि़	<	सा	<	ग	<	म	<	ध̲	<	<	<	ध̲	<	<	<
ध̲	<	<	<	नि	<	ध	<	प	<	<	<	प	<	<	<
म	<	ध̲	<	<	<	प	<	ग	<	प	<	<	<	म	<
सा	<	ग	<	<	<	म	<	रे̲	<	<	<	सा	<	<	<
नि़	नि़	सा	सा	ग	ग	म	म	प	प	म	म	ग	ग	म	म
ध̲	ध̲	प	प	म	म	प	प	ग	ग	म	मरे̲	रे̲	सा	–	
नि़	नि़	सा	सा	ग	ग	म	म	प	प	म	म	ग	ग	म	म
ध	–	<	–	<	–	<	–	नि़	नि़	सा	सा	ग	ग	म	म
प	प	प	प	प	प	ग	मध	–	<	–	<	–	<	–	
नि़	नि़	सा	सा	ग	ग	म	म	प	प	म	म	ग	ग	म	म

2.4.7 राग बैरागी भैरवी :–

ग ध विकृत जाति औढव बैरागी राग सुहाय।
भैरव थाट प्रातः गाइये म स सम्वाद।।

विवरण – प्रस्तुत राग भैरव थाट जन्य है। यह एक लोकप्रिय प्रातः कालीन राग है। यह एक प्रचलित राग है जिसमें रिषभ व निषाद स्वर कोमल लगते हैं तथा गंधार व धैवत स्वर वर्जित है अतः इसकी जाति औढव–औढव है। इस राग का वादी स्वर मध्यम व सम्वादी स्वर षड़ज है। प्रस्तुत राग का विस्तार अधिकतर मन्द्र व मध्य सप्तक में किया जाता है। इस राग में रिषभ सदैव भैरव की तरह आन्दोलित किया जाता है। कतिपय लोग इसे बैरागी और कुछ लोग इसे बैरागी भैरव कहते हैं।

आरोह– सा रे म प नी सां ।
अवरोह– सां नी प म रे – सा– ।।
पकड़– रे म प नी प म रे – सा –।
समप्रकृति राग – भैरव व मध्मदि सारंग।

आलाप

नि़ रे – – सा – ‹ सा – ‹, नि़ रे नि़ सा नि़ प़ – ‹
दा ––––––
प़ – ‹ प़ – ‹ प़ – ‹, म़ नि़ प़, प़ सा नि़ नि़ रे सा
सा – ‹ सा – ‹, रे – ‹ रे – ‹ रे – ‹, रे म रे – सा
सा रे म प – ‹ प – ‹, म प म प म नि प –
म प नि प म रे – सा – ‹ सा – ‹, म प नि प
नि सां – ‹ सां – ‹ सां – ‹, प नि सां रे सां रें सां नि प
म – म – नि प, म प नि प म रे – रे – नि रे
सा – ‹ सा – ‹, म प नि सां रें – रें – रें– सां –
नि सां रे मं रें रें – सां – ‹ सां – ‹ सां – ‹
रें मं, मं पं मं रें – रें – सां – ‹, नि सां रे सां नि सां
नि प, म प म नि प, म रे ́– – सा – ‹ सा – ‹

गत – एक ताल
स्थाई

रे	–	सा	रे	म	पप,	निनि	पप	म–	मरे	–रे	सा–
दा	–	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दा–	रदा	–र	दा–
X		0		2		0		3		4	

नि़	पप़	नि़,	रे	सासा	रे,	निनि	पप	म–	मरे	–रे	सा–
दा	दिर	दा	दा	दिर	दा	दिर	दिर	दा–	रदा	–र	दा–
×		0		2		0		3		4	

अन्तरा

म	पप	नि	प	नि	नि	सां	<	<	नि	रें	सा
दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	–	–	ध	रा	दा
×		0		2		0		3		4	

नि	सांसां	रें	मं	रें	सां	निनि	पप	म–	मरे	–रे	सा–
दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दिर	दिर	दा–	रदा	–र	दा–
×		0		2		0		3		4	

तोड़े

	×		0		2		0		3		4	
1–	नि़सा	सानि़	सारे	रेसा	रेम	मरे	मप	पम	निप	पम	मरे	रेसा
2–	मप	निन	सां–	निप	मप	मरे	सा–	रेसा	रे–,	रेसा	रे–,	रेसा
3–	सारे	मप	नि़प	मप	मरे	सा–	रेसा	नि़सा	रेसा	नि़सा	नि़सा	नि़सा
4–	पनि़	सा–	नि़सा	रेम	पनि़	पम	रेरे	सा–	रे–	<–	रें–	<–
5–	सारे	मप	निसां	निप	निप	मम	रे–	निप	मम	रे–	निप	मम
6–	सारे	मप	रेम	पनि	मप	निसां	पनि	सारें	सांनि	पम	रेरे	सा–
	सनि़	–सा	रे–	<–	<–	सानि	–सा	रे–	<–	<–	सानि	–सा
7–	रेरे	रेरे	मम	मम	पप	पप	निनि	निनि	सांनि	पम	पम	रेसा
	रेम	पनि	पम	रेसा	रेम	पनि	पम	रेसा	रेम	पनि	पम	रेसा
8–	नि़नि़	रेरे	सासा	सासा	मम	निनि	पप	पप	निनि	रेंरें	सांसां	सांसां
	सांसां	निनि	पप	निनि	पप	मम,	पप	मम	रेरे,	मम	रेरे	सासा

2.4.8 राग मालकौंस :–

थाट भैरवी वादी म सा, रखिये रे प वर्ज्य।
तृतीय प्रहर निशि गाइये, मालकौंस का अर्ज्य।।

विवरण – इर राग की उत्पत्ति भैरवी थाट से मानी गयी है। इसमें ऋषभ और पंचम वर्ज्य है अतः इसकी जाति औडव–औडव है। इस राग का वादी मध्यम और सम्वादी षडज है। इसका गायन समय रात्रि का तीसरा प्रहर है। यह एक गंभीर प्रकृति का लोकप्रिय राग है। कुछ लोग इसे मालकंश तथा कुछ लोग मालकौश कहते हैं। इस राग का विस्तार तीनों सप्तकों में समान रूप से होता है। इसमें बड़ा ख्याल, छोटा ख्याल, ध्रुपद, धमार, तराना, मसीतखानी गत, रज़ाखानी गत सभी गायी बजायी जाती है। इस राग में यदि नी को शुद्ध कर दिया जाय तो राग चन्द्रकोश का निर्माण हो जाता है।

आरोह – सा ग म , ध नि सां।
अवरोह – सां नि ध म, ग सा।।
पकड़ – ध़ नि़ सा म, ग म ग सा।
न्यास के स्वर – सा, ग , म
समप्रकृति राग – चंन्द्रकोश

आलाप

ध़ नि़ ध़ ध़ सा नि़ सा –ऽ सा –ऽ सा –ऽ
नि़ सा नि़ सा नि़ सा नि़ सा ग सा, ध़ – –ऽ ध़ – –ऽ
म़ ध़ नि़ – ध़ सा –ऽ सा –ऽ
ध़ नि़ ध़ नि़ ग – सा –ऽ सा –ऽ
सा ग – ग – ग –, म – ऽ म – ऽ, म – ऽ ग म ग म ग म ध म
म – ऽ म – ऽ, म ग म , ग सा –ऽ सा –ऽ सा –ऽ
ग म ध – ध –, नि ध नि ध म – ऽ म – ऽ, म – ऽ
सा ग सा ग म ग म ध म ध नि ध म – ऽ म – ऽ, म – ऽ
ग ध ग म ग नि़ ग – सा –ऽ सा –ऽ सा –ऽ
ग म ध – नि– सां –ऽ सां –ऽ ध नि ध नि गं सां –ऽ सां –ऽ
ध नि सां गं मं गं सां – सां –ऽ सां –ऽ सां –ऽ, नि सां, नि गं सां –
ध – ध – म ध नि ध म – ऽ म – ऽ म – ऽ, ग ध ग म ग
नि़ ग सा –ऽ सा –ऽ सा –ऽ

रज़ाखानी ग़त – तीनताल

स्थाई

											ग	म	नि	–	ध
											द	रा	दा	–	र
												3			
म	ऽ	ऽ	ग	–सा	सा,	गग	मम	ग–	गसा	–सा					
दा	–	–	दा	–र	दा	दिर	दिर	दा–	रदा	–र					
X				2				0							

										नि	|	सा	ध	–	नि
										दा	|	रा	दा	–	र
												3			
स	–	ग	म	|	ध	सांसां	नि	ध	|	म	ग	सा		
दा	–	दा	रा	|	दा	दिर	दा	रा	|	दा	रा	दा		
X					2					0					

अन्तरा

ग	मम	ध	नि	|	सां	नि	सां	–	|	ध	निनि	सां	गं	|	मं	गं	सां	–
दा	दिर	दा	रा	|	दा	रा	दा	–	|	दा	दिर	दा	रा	|	दा	रा	दा	–
X					2					0					3			

नि	सांसां	नि	ध	|	–म	म,	गग	मम	|	ग–	गसा	–सा	मुखडा
दा	दिर	दा	दा	|	–र	दा	दिर	दिर	|	दा–	रदा	–र	
X					2					0			

तोड़े

1–	साग	मम	गम	धध	मध	|	निनि	धनि	सांसां	निध	मग	सा–	मु0
2–	धनि	सां,ध	निसां	धनि	सांग	|	सांनि	धनि	धम	गम	गसा	निसा	मु0
3–	सा–	ग–	म–	ध–	निसां	|	धनि	मध	गम	साग	सानि	सा–	मु0

4–	म–	धनि	सां–	सांनि	|	धम	गम	गसा	निसा	|	
	मसा	–ग	म–,	मसा	|	–ग	म–	मसा	–ग	|	×
5–	निसां	निसां	धनि	धनि	|	मध	मध	गम	गम	|	
	गसा	निसा,	धनि	साग	|	धनि	साग	धनि	साग	|	×
6–	मध	नि–	धनि	सां	|	निसां	गं–	सांनि	धम	|	
	गम	धनि	सां–	निसां	|	धनि	मध	गम	गसा	|	
	साग	–म	ग–	साग	|	म–	<–	,साग	–म	|	
	ग–	साग	म–	<–	|	साग	–म	ग–	साग	|	
	0					3					X

झाला

X				2				0				3			
ग	ग	गग	गग	म	म	मम	मम	ध	ध	धध	धध	नि	नि	निनि	निनि
दा	रादिर	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दिर
सां	<	<	<	सां	<	<	<	सां	<	<	<	सां	<	<	<
नि	<	<	<	ध	<	<	<	सां	<	<	<	सां	<	<	<
ध	<	नि	<	सां	<	गं	<	सां	<	<	<	सां	<	<	<
नि़	<	<	<	सां	<	<	<	नि़	<	<	<	गं	<	<	<
सां	<	<	<	सां	<	<	<	सां	<	<	<	सां	<	<	<
नि	<	सां	<	गं	<	सां	<	नि	<	<	<	ध	<	<	<
म	<	ध	<	नि	<	ध	<	म	<	<	<	म	<	<	<
ग	<	<	<	ग	<	<	<	म	<	<	<	म	<	<	<
ग	<	<	<	नि	<	<	<	सा	<	<	<	सा	<	<	<
सा	<	<	<	सा	<	<	<	सा	<	<	<	सा	<	<	<
ध़	<	नि़	<	सा	<	म	<	ग	<	<	<	सा	<	<	<
नि़	<	सा	<	नि़	<	ग	<	सा	<	<	<	सा	<	<	<
ग	<	<	सा	<	<	<	सा	म	<	<	ग	<	<	ग	<
ध	<	<	म	<	<	म	<	ग	<	<	<	सा	<	<	<
नि़	<	सा	<	ग	<	म	<	म	<	<	<	म	<	<	<
ग	<	<	<	म	<	नि	<	ध	<	<	<म	<	<		<
ग	<	<	म	<	<	ग	<	नि़	<	<	<	सा	<	<	<

2.4.9 राग झिंझोटी :–

कोमल मनि झिंझोटी है, चढ़त न लगे निखाद।
कहुँ कोमल गांन्धार है ध–ग संवादि–वादि।। –रागचंद्रिकासार

विवरण – राग झिंझोटी खमाज थाट से उत्पन्न होता है। आरोह अवरोह में यह सम्पूर्ण जाति का है। इसमें गन्धार स्वर वादी और निषाद संवादी है। कुछ विद्वान धैवत को संवादी मानते हैं। इसे खमाज थाट का आश्रय राग कहा जाता है। इसका स्वरूप बहुत सीधा और सरल है। यह भी क्षुद्र रागों में से एक है। इसका विस्तार अधिकतर मंद्र और मध्य सप्तकों में विशेष रूप से होता है। इसके आरोह में ऋषभ स्वर लगाने से यह खमाज से भिन्न हो जाता है। इसके अतिरिक्त इसका सरल आरोह भी इसे अन्य रागों से पृथक बनाये रखता है। *'ध़ सा, रे म ग'* यह स्वर समुदाय रागवाचक है।

आरोह – सा रे ग, म प ध नि सां
अवरोह – सां नि ध, प म ग रे सा
पकड – ध़ सा रे म ग, रे ग सा, नि़ ध़ प़ ध़ सा
न्यास के स्वर – सा, ग, प
समप्रकृतिक राग – खमाज, देश

रजाखानी ग़त

स्थाई

रे	म	ग	सा	–	रे	नि़	ध़	सा	–	–	रे	म	–ग	रे–	रेसा
दा	रा	दा	रा	ऽ	दा	ऽ	रा	दा	ऽ	ऽ	दा	दा	ऽर	दाऽ	रदा
0				3				×				2			
नि़	ध़	–	सा	–	रे	म	प	ध	मम	प	ग	म	–ग	रे–	रेसा
दा	रा	ऽ	दा	ऽ	रा	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	ऽर	दा–	रदा
0				3				×				2			

अन्तरा

मम	पप	ध	–	नि	धप	निध	सां	–	सां	सां	रें	गं	सां	सां	
दिर	दिर	दा	ऽ	रा	दिर	दिर	दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा	
0				3				×				2			
सां	रें	गं	सां	–	नि	ध	प	म–	–ग	रे–	म	–ग	रे–	रेसा	
दा	रा	दा	रा	ऽ	दा	रा	दा	दा–	–र	दा–	दा	ऽर	दाऽ	रदा	
0				3				×				2			

तोडे

1	ध़सा	रेम	गरे	मप	निध	पम	गरे	गम
	×				2			
2	सारे	गसा	रेम	पध	मप	मग	रेग	सा–
	×				2			
3	रेम	पनि	धसां	निध	पध	मग	रेग	सा–
	×				2			
	सारे	मप	धनि	धप	निध	सांनि	धनि	धप
	×				2			
					मग	रेम	गरे	गसा
	×				2			
4	रेग	सारे	मप	निध	सांरें	निध	सांनि	धप
	3				×			
	धप	मग	रेग	सा–				
	2							
5	सानि़	ध़सा	नि़ध़	प़ध़	सारे	मग	रेम	पम
	0				3			
	सांनि	धनि	धप	मग	रेप	मग	रेग	सा–
	×				2			
6	गरे	सारे	मग	रेम	धप	मप	निध	सांनि
	0				3			
	धसां	निध	सांनि	धप	मग	रेम	गरे	गसा
	×				2			

2.4.10 राग जैजैवन्ती :–

द्वै गांधार निखाद द्वै संवादै प–नि सोइ।
सोरटही के अंगतें जैजैवन्ती होइ।।

विवरण – यह राग खमाज थाठ के जन्य रागों में से एक है। इसकी जाति सम्पूर्ण है। वादी स्वर ऋषभ व संवादी पंचम माना जाता है। इसका समय रात्रि के दूसरे प्रहर का अन्तिम भाग मानते हैं। इस राग में दोनों गान्धार व दोनों निषादों का प्रयोग होता है। आरोह में तीव्र ग–नि तथा अवरोह में कोमल ग–नि लेते हैं, तथापि अवरोह करने में तीव्र गान्धार भी ले सकते हैं। कोमल गान्धार केवल अवरोह में लेते हैं, किन्तु वह प्रायः दोनों ऋषभों में जकड़ा हुआ रहता है। प्रचार में इसक सोरठ–अंग का राग मानते हैं। यह मिश्र राग है। गौड़, बिलावल और सोरठ, इन तीन रागों का मिश्रण इसमें पाया जाता है। इस राग में मन्द्र पंचम और मध्य ऋषभ की संगति सुन्दर लगती है।

कोमल गान्धार के कारण कुछ संगीत–मर्मज्ञ इसे 'परमेल–प्रवेशक राग' ऐसी संज्ञा देते हैं। परमेल–प्रवेशक का अर्थ है– अगले ठाठ में ले जाने वाला राग। अर्थात् खमाज ठाठ के राग समाप्त करके काफी ठाठ के राग आरम्भ होने की सूचना यह राग देता है।

आरोह – सा, रे ग म प, नि सां।
अवरोह – सा नि ध प, ध म रे ग रे सा।
पकड़ – रे ग रे सा, नि़ सा ध़ नि़ रे,
न्यास के स्वर – रे, म, प,
समप्रकृतिक राग – खमाज, देश, झिंझोंटी

रज़ाखानी ग़त

स्थाई

रे	गग	रे	सा	नि़	सासा	ध़	नि़	रे	–	ग	म	रे–	गसा	–नि	सा
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दाऽ	रदा	ऽर	दा
0				3				×				2			
रे	मप	प	नि	ध	–	प	ध	म	–	ग	म	रे–	गसा	–नि	सा
दा	दिर	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दाऽ	रदा	–र	दा
0				3				×				2			

अन्तरा

म	पप	नि	सां	–	नि	सां	सां	रें	–	रें	गं	रें	सां	नि	सां
दा	दिर	दा	रा	सां	दा	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा
0				3				×				2			
प	सांसां	नि	सां	नि	ध	प	म	रे	–	ग	म	रे–	गसा	–नि़	सा
दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	–	दा	रा	दाऽ	रदा	ऽर	दा
0				3				×				2			

तोडे

1	सारे	निसा	धानि	रे–	गम	रे–	रेग	रेसा
	×				2			
2	रेग	मप	निध	पध	म–	गम	रेग	रेसा
	×				2			
3	रेग	मप	निसां	निध	पम	गम	रेग	रेसा
	×				2			
4	रेग	मप	गम	पध	मप	निसां	निध	पम
	3				×			
	गम	रेग	रेसा	निसा				
	2							
5	गम	गम	रेग	रेसा	धनि	धनि	पध	मप
	0				3			
	निसां	निसां	निध	पध	पम	गम	रेग	रेसा
	×				2			

अभ्यास प्रश्न

1. रजाखानी गत का परिचय दीजिए।
2. पाठ्यक्रम के किसी एक राग में रजाखानी गत को तोडों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप रजाखानी गत की स्वरलिपि को पढ़ सकेंगे एवं उनका क्रियात्मक रूप से वादन करने में सक्षम होंगे। पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत दी गई हैं। इन रागों का तोडों के द्वारा विस्तार भी किया गया है जिससे आप राग में अन्य तोडों को स्वयं बनाने में भी सक्षम होंगे।

2.6 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम के किन्हीं तीन रागों में रजाखानी गत तोडों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

इकाई 3 – पाठ्यक्रम की तालों के ठेकों को लयकारी (दुगुन, तिगुन, चौगुन व आड़) सहित लिपिबद्ध करना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उदेद्श्य
3.3 लयकारी
3.4 तीनताल में लयकारी
3.5 झपताल मे लयकारी
3.6 एकताल में लयकारी
3.7 आडाचारताल में लयकारी
3.8 धमार ताल में लयकारी
3.9 9 मात्रा की ताल में लयकारी
3.10 चारताल में लयकारी
3.11 रुपक ताल में लयकारी
3.12 सारांश
3.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.14 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (एम0पी0ए0एम0आई0–102) के चतुर्थ खण्ड की तीसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप विद्वान संगीतज्ञों के महत्वपूर्ण योगदान तथा उनकी संगीत साधना के प्रति लगन एवं परिश्रम को जान चुके होंगे। आप भारतीय संगीत के ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे। आप पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत, मसीतखानी गत एवं तोडों को लिपिबद्ध करना भी सीख गए होंगे।

इस इकाई में पाठ्यक्रम की तालों को ठेकों एवं उनको विभिन्न लयकारी (दुगन, तिगुन, चौगुन व आड) में लिपिबद्ध करने के विषय में बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप पाठ्यक्रम की तालों के ठेकों एवं उनको विभिन्न लयकारी में लिपिबद्ध करने के विषय में जान सकेंगे। इससे आप लयकारी को बोलने एवं बजाने में भी सक्षम होंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात :—

1. आप लयकारी का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।
2. आप तबले की ताल के ठेकों को विभिन्न लयकारी में लिपिबद्ध करने एवं उसके क्रियात्मक स्वरूप को तबले में प्रस्तुत कर पायेंगे।
3. आप लयकारी का प्रयोग अपने वादन(एकल वादन, संगत) करने में सक्षम होंगे जिससे आप का वादन प्रभावशाली होगा।

3.3 लयकारी

समय की समान गति को लय कहते हैं। दो मात्राओं की क्रिया के मध्य होने वाला विश्रांति काल ही लय है और जब यह काल प्रयोग होन वाली मात्राओं के बीच समान रहता है तो वह निश्चित लय का स्वरूप ले लेता है। अतः लय का सम्बन्ध मात्रा एव मात्राओं के बीच के समय से है।

लय सामान्य रूप से तीन प्रकार की मानी गई है। विलम्बित, मध्य एवं द्रुत लय। काल के लम्बा होने पर विलम्बित लय स्थापित होती है। इस काल के कम हाने पर मध्य लय एवं उससे अधिक कम होने पर द्रुत लय हो जाती है। सामान्य रूप से मध्य लय का विश्रांति समय विलम्बित लय के विश्रांति समय का आधा होता हैं एवं द्रुत लय का विश्रांति मध्य लय के विश्रांति समय का आधा होता है। संगीत में यह मान्यता स्थापित हो चुकी है एवं प्रचलन में है। विलम्बित लय को आधार लय मानने से मध्य लय का प्रयोग विलम्बित लय में दो बार एवं द्रुत लय का प्रयोग चार बार करने की आवश्यकता होगी। अतः मध्य लय विलम्बित लय की दुगुनी, द्रुत लय मध्य लय की दुगुन होती है। लय का यही प्रयोग लयकारी कहलाता है। एक मात्रा में एक से अधिक मात्राओं का आधार लय के साथ प्रयोग लयकारी कहलाता है।

संगीत में विभिन्न लयकारी जैसे दुगुन, तिगुंन, चौगुन, आड, कुआड, एवं बिआड प्रयोग की जाती है।

दुगुन —	एक मात्रा में दो मात्रा	1 2 1 2
तिगुन —	एक मात्रा में तीन मात्रा	1 2 3 123
चौगुन —	एक मात्रा में चार मात्रा	1234 1234
आड —	एम मात्रा में डेढ़ मात्रा अथवा दो मात्रा में तीन मात्रा आड लयकारी को डयोडी लय भी लय कहा जाता हैं एवं इसको 3/2 की लयकारी के रूप में भी व्यक्त करते हैं।	1 ऽ 2 ऽ 3 ऽ

कुआड— इस लयकारी के विषय में दो मत हैं एक— आड की आड को कुआड कहते हैं अतः 9/4 जिसके अनुसार चार मात्रा में नौ मात्रा अथवा एक मात्रा में $2\frac{1}{4}$ अथवा सवा दो मात्रा का प्रयोग करते है। दो — 5/4 की लयकारी अर्थात चार मात्रा में पांच मात्रा अथवा एक मात्रा में सवा मात्रा । इस दूसरे मत का अधिक प्रचलन है एवं इसको सवागुन की लय भी कहते हैं।

पहले मत के अनुसार–:

1ऽ ऽ ऽ 2ऽ ऽ ऽ 3 ऽ ऽ ऽ 4 ऽऽ ऽ ऽ 5 ऽ ऽ ऽ 6 ऽ ऽ ऽ ऽ 7 ऽ ऽ ऽ 8 ऽ ऽ ऽ 9 ऽ ऽ ऽ

1 2 3 4

दुसरे मत के अनुसार–:

1 ऽ ऽ ऽ 2 ऽ ऽ ऽ 3 ऽ ऽ ऽ 4 ऽ ऽ ऽ 5 ऽ ऽ ऽ

1 2 3 4

बिआड लय–

इस लयकारी के विषय भी दो मत हैं। एक मत के अनुसार कुआड लय की आड बिआड लयकारी होती जिसे $^9/_4 \times {}^3/_2 = \frac{27}{8}$ के रूप में व्यक्त करते हैं एवं दूसरे मत के अनुसार $^7/_4$की लयकारी बिआड की लयकारी है। इसमें एक मात्रा में पैने दो गुन मात्रा प्रयोग की जाती है जिसे पौने दो गुन की लयकारी भी कहते हैं।

पहले मत के अनुसार –:

1ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 2 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 3 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 4 ऽ ऽ

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 5 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 6 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 7 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

ऽ ऽ 8 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 9 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 10 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 11

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 12 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 13 ऽऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 14 ऽ ऽ ऽ

ऽऽ ऽ ऽ 15 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 16 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 17 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

ऽऽ 18 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 19 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 20 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 21 ऽ

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 22 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 23 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 24 ऽ ऽ ऽ ऽ

ऽ ऽ ऽ 25 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 26 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 27 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

दूसरे मत के अनुसार :–

1 ऽ ऽ ऽ 2 ऽ ऽ ऽ 3 ऽ ऽ ऽ 4 ऽ ऽ ऽ 5 ऽ ऽ ऽ 6 ऽ ऽ ऽ 7 ऽ ऽ ऽ

कुआड एवं बिआड में दूसरा मत ही अधिक प्रचलित एवं व्यवहारिक है अतः लयकारी लिपिबद्ध करने में दूसरे मत का ही प्रयोग करेंगे। आड, कुआड एवं बिआड, लयकारी लिखने के लिए इनकी भिन्न अथवा बटे में दिखाई संख्या से भाग देते हैं। गणित के अनुसार भाग देने में बटे की संख्या उलटी हो कर गुणा में बदल जाती है।

उदाहरण आड को बट्टा संख्या 3/2 = $1\frac{1}{2}$

आडलयकारी की मात्रा संख्या = ताल की मात्रा × 2/3, किस मात्रा से आरम्भ की जानी है, इसके लिए उपर की संख्या को ताल की मात्रा संख्या से घटाते हैं।

ताल की मात्रा संख्या – ताल की भाग संख्या × 2/3 जो लयकारी लिखनी है। उसमें बट्टा के नीचे वाली राशी में से एक घटाकर उतनी संख्या के अवग्रह लगाते हैं।

उदाहरण– आड की लयकारी – $^3/_2$ = 2–1= 1

कुआड की लयकारी– $^5/_4$ = $4 - 1 = 3$

बिआड की लयकारी – $^7/_4$ = $4 - 1 = 3$

अतः आड की लयकारी को मात्रा के साथ एक अवग्रह, कुआड एवं बिआड की लयकारी में तीन अवग्रह लगाते है। इसके पश्चात बट्टा की उपर वाली राशि में विभाग बना लेते हैं। सरलता के लिए पीछे से विभाग बनाना शुरू करते हैं एवं पहली मात्रा में जितनी मात्रा कम होती हैं मात्रा से पहले उतने अवग्रह लगा देते हैं जो कि आप विभिन्न तालों में लयकारी के उदाहरण से समझेंगे।

3.4 तीनताल में लयकारी

मात्रा – 16, विभाग – 4, ताली – 1, 5 व 13 पर, खाली – 9 पर

<u>तीनताल का ठेका</u>

धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा	धा
X				2				0				3				X

<u>दुगुन की लयकारी</u>

धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धातिं	तिंता	ताधिं	धिंधा	
X				2				
धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धातिं	तिंता	ताधिं	धिंधा	धा
0				3				X

तीनताल के ठेके की दुगुन आठ मात्रा की होगी अतः सोलह मात्रा में ठेका दो बार प्रयोग करना होगा। यदि ठेके का प्रयोग एक बार ही करना है तो दुगुन लयकारी के सम पर आने के लिए नौवीं मात्रा से दुगुन आरम्भ की जायेगी इसको एक आवृति की दुगुन कहा जाता है जो निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा।

<u>एक आवृति की दुगुन</u>

धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धातिं	तिंता	ताधिं	धिंधा	धा
0				3				X

तिगुन की लयकारी

धाधिंधिं	धाधाधिं	धिंधाधा	तिंतिंता	ताधिंधिं	धाधाधिं	धिंधाधा	धिंधिंधा	
x				2				
धातिंतिं	ताताधिं	धिंधाधा	धिंधिंधा	धाधिंधिं	धाधातिं	तिंताता	धिंधिंधा	धा
0				3				x

तिगुन की लयकारी में तीनताल में ठेके को तीन बार प्रयोग किया जाता है। एक आवृति की तिगुन $\frac{16}{3}$ मात्रा अर्थात् $5\frac{1}{3}$ मात्रा की होगी अतः एवं आवृति की तिगुन की लयकारी को $10\frac{2}{3}$ मात्रा के बाद आरम्भ करना होगा।

10	11	12	13	14	15	16
1 2 3	1 2 धा	धिं धिं धा	धा धिं धिं	धा धा तिं	तिं ताता	धिं धिं धा

ग्यारवीं मात्रा 1 2 का अशं $^2/_3$ के बराबर है जो निम्न उदाहरण से स्पष्ट होगा।

तिगुन की लयकारी

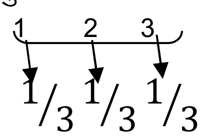

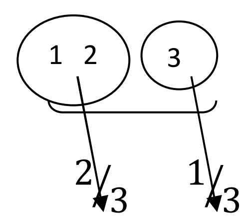

अथवा

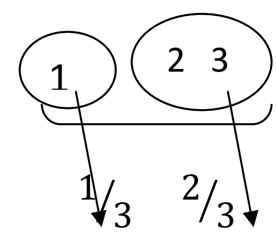

चौगुन लयकारी – तीनताल की चौगुन की लयकारी चार मात्रा की होगी। अतः ठेके के बोल को चार आवृति में प्रयोग करना होगा अथवा एक आवृति की चौगुन को तीनताल की तेरहवीं मात्रा से आरम्भ कर सम पर आया जाएगा।

13	14	15	16	
धाधिंधिंधा	धधिंधिंधा	धातिंतिंता	ताधिंधिंधा	धा
3				x

आड की लयकारी – $^3/_2$ मात्रा की लयकारी में दो मात्रा में तीन मात्रा अथवा एक मात्रा डेढ मात्रा प्रयोग की जाती हैं। अतः तीनताल के ठेके को तीन बार लिखा जाएगा जो कि तीनताल के ठेके की दो आवृति में आएगा। एक आवृति में तीनताल की आड $16 \times {^2/_3} = 10\frac{2}{3}$ मात्रा में आएगी एवं $5\frac{1}{3}$ मात्रा के बाद आरम्भ होगी।

6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	
1धाऽ	धिंऽधिं	ऽधाऽ	धाऽधि	ऽधिंऽ	धाऽधा	ऽतिंऽ	तिंऽता	ऽताऽ	धिंऽधिं	ऽधाऽ	धा
											x

3.5 झपताल में लयकारी

मात्रा — 10, विभाग — 4, ताली — 1, 3 व 8 पर, खाली — 6 पर

झपताल का ठेका

धि	ना	धि	धि	ना	ति	ना	धि	धि	ना	धि
X		2			0		3			X

दुगुन की लयकारी — झपताल की आवृति दुगुन में दो बार प्रयोग की जाएगी।

एक आवृति में दुगुन :— झपताल की दुगुन पॉच मात्रा की होगी अतः एक आवृति की दुगुन छठवीं मात्रा से आरम्भ करनी होगी।

6	7	8	9	10	
धिना	धिधि	नाति	नाधि	धिना	धि
0		3			X

तिगुन की लयकारी — झपताल की तिगुन लयकारी को झपताल की आवृति में तीन बार प्रयोग करनी होगी एवं एक आवृति की तिगुन लयकारी $\frac{10}{3} = 3\frac{1}{3}$ मात्रा की होगी एवं $10\frac{2}{3}$ मात्रा के बाद आरम्भ कर सम पर आएगी।

एक आवृति में तिगुन :—

7	8	9	10	
ऽऽधि	नाधिधि	नातिना	धिधिना	धि
	3			X

चौगुन की लयकारी — दुगुन तिगुन की भॉति ही चौगुन की लयकारी भी झपताल की आवृति में चार बार प्रयोग करनी होगी एवं एक आवृति की चौगुन $^{10}/_{4} = 2\,^{1}/_{2}$ मात्रा की होगी एवं $7\,^{1}/_{2}$ मात्रा के बाद आरम्भ कर सम पर आएगी

एक आवृति में चौगुन :—

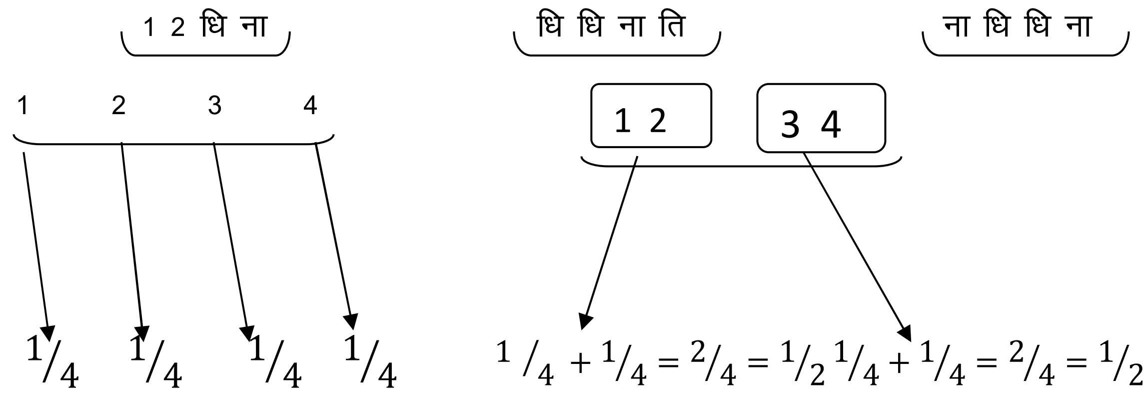

आड की लयकारी – $^3/_2$ की लयकारी अर्थात् दो मात्रा में तीन मात्रा अथवा एक मात्रा में डेढ मात्रा को समायोजित करना आड है। झपताल की आड लयकारी $10 \times \frac{2}{3} = {}^{20}/_3 = 6\,{}^2/_3$ मात्रा की होगी एवं $3\frac{1}{3}$ मात्रा के बाद आरम्भ होगी। तीनताल में भी आपने देखा कि आड, तिगुन लयकारी की आधी होती है।

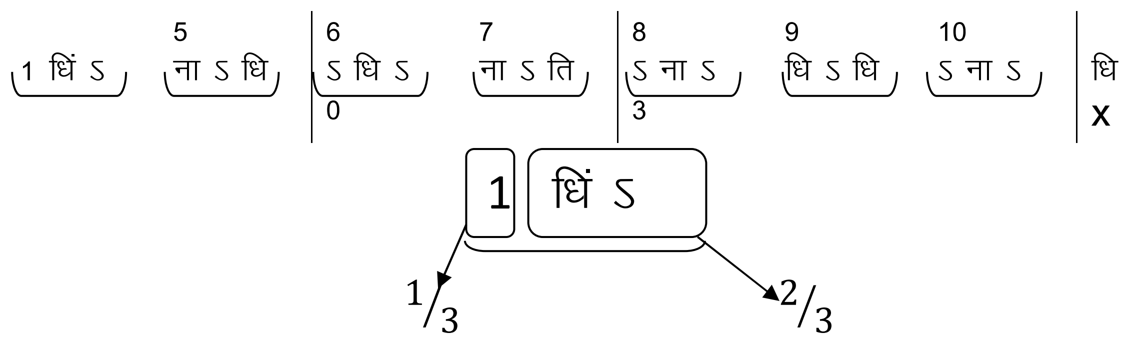

3.6 एकताल में लयकारी

मात्रा – 12, विभाग – 6, ताली – 1, 5, 9 व 11 पर, खाली – 3 व 7 पर

एकताल का ठेका

धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	ता	धागे	तिरकिट	धि	ना	धिं
x		0		2		0		3		4		x

एकताल में दुगुन, तिगुन एवं चौगुन की लयकारी एक आवृति की क्रमशः छः मात्रा, चार मात्रा एवं तीन मात्रा की होगी। अतः दुगुन सातवीं, नौवीं मात्रा एवं दसवीं मात्रा से आरम्भ हो कर सम पर आएगी। दुगुन, तिगुन व चौगुन एक आवृति में क्रमशः दो बार, तीन बार एवं चार बार प्रयोग करनी होगी।

एक आवृति की दुगुन

7	8	9	10	11	12	
धिंधिं	धागेतिरकिट	तूना	कत्ता	धागेतिरकिट	धिना	धिं
0		3		4		x

एक आवृति की तिगुन

9	10	11	12	
धिं धिं धागे	तिरकिट तूना	कत्ता धागे	तिरकिटधिना	धिं
3		4		x

एक आवृति की चौगुन

10	11	12	
धिं धिं धागे तिरकिट	तूनाकत्ता	धागेतिरकिट धिना	धिं
	4		x

आड की लयकारी – एकताल के ठेके में धागे में 'धा', व गे की मात्रा का मूल्य आधी–आधी मात्रा का है एवं तिरकिट में 'ति', 'र', 'कि' 'ट' की प्रत्येक की मात्रा का मूल्य $^1/_4$ मात्रा का है। आड की लयकारी में स्वतंत्र मात्रा जैसे धिं, तू, ना, क एवं ता बोले में एक अवग्रह लगाएगें परन्तु धागे के बोल में 'धा' एवं 'गे' बोले कर प्रथक कर देंगे एवं तिरकिट के बोल को 'तिर' व 'किट' को प्रथक कर प्रयोग करेंगे जो एकताल की आड लयकारी से स्पष्ट हो जाएगा।

5	6	7	8	9	10	11	12	
धिऽधि	ऽधागे	तिरकिटतू	ऽनाऽ	कऽता	ऽधागे	तिरकिटधि	ऽनाऽ	धिं
2		0		3		4		x

एकताल की आड की लयकारी $12 \times \frac{2}{3} = 8$ मात्रा में आती है एवं पाचवीं मात्रा से आरम्भ कर सम पर आएगी।

3.7 अडाचारताल में लयकारी

मात्रा – 14, विभाग – 7, ताली – 1, 3, 7 व 11 पर, खाली – 5, 9 व 13 पर

आडाचारताल का ठेका

धिं	तिरकिट	धिं	ना	तू	ना	क	ता	तिरकिट	धि	ना	धिं	धिं	ना	धिं
×		2		0		3		0		4		0		×

दुगुन, तिगुन एवं चौगुन की लयकारी को क्रमशः दो बार, तीनबार एवं चार बार प्रयोग किया जाता है।

एक आवृति की दुगुन – 7 मात्रा की होगी एवं आठवीं मात्र से आरम्भ कर सम पर आएगी।

धिंतिरकिट	धिंना	तूना	कता	तिरकिटधिं	नाधिं	धिंना	धिं
	0		4		0		×

एक आवृति की तिगुन – $\frac{14}{3} = 4\frac{2}{3}$ मात्रा की होगी एवं $9\frac{1}{3}$ मात्रा के बाद आरम्भ होकर सम पर आएगी।

ऽधिंतिरकिट	धिनातू	नाकता	तिरकिटधिंना	धिंधिंना	धिं
	4		0		×

एक आवृति की चौगुन – $\frac{14}{3} = 4\frac{2}{4}$ मात्रा की होगी एवं $11\frac{2}{4}$ मात्रा के बाद आरम्भ कर सम पर आएगी।

11	12	13	14	
ऽऽधिंतिरकिट	धिनातूना	कतातिरकिटधिं	नाधिंधिंना	धिं
4		0		×

आड की लयकारी – $14 \times 2/3 = \frac{28}{3} = 9\frac{1}{2}$ मात्रा में आएगी एवं $4\frac{2}{3}$ मात्रा के बाद आरम्भ कर सम पर आएगी।

5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	
ऽऽधिं	ऽतिरकिट	धिऽना	ऽतूऽ	नाऽक	ऽताऽ	तिरकिटधिं	ऽनाऽ	धिंऽधिं	ऽनाऽ	धिं
										×

3.8 धमार ताल में लयकारी

मात्रा – 14, विभाग – 4, ताली – 1, 6 व 11 पर, खाली – 8 पर

धमार ताल का ठेका

क	धि	ट	धा	ट	धा	ऽ	ग	ति	ट	ति	ट	ता	ऽ	क
X					2		0			3				X

दुगुन, तिगुन एवं चौगुन की लयकारी को क्रमशः दो बार, तीन बार एवं चार बार प्रयोग किया जाता है। इस ताल के ठेके में सातवीं मात्रा एवं चौदवीं मात्रा पर कोई पखावज का वर्ण अथवा बोल नहीं है अतः इसको 'ऽ' से दिखाया जाता है एवं यह पूर्ण मात्रा है।

<u>एक आवृति की दुगुन</u> :–

8	9	10	11	12	13	14	
कधि	टधि	टधा	ऽग	तिट	तिट	ताऽ	क
0			3				X

<u>एक आवृति की तिगुन</u> :– एक आवृति की तिगुन 7 मात्रा की होगी एवं आठवी मात्रा से आरम्भ कर सम पर आएगी। $\frac{14}{3} = 4\frac{2}{3}$ मात्रा की होगी एवं $9\frac{1}{3}$ मात्रा के बाद आरम्भ होकर सम पर आएगी।

10	11	12	13	14	
1कधि	टधिट	धाऽग	तिटति	टताऽ	क

$^1/_3$ —— 1 | क धि —— $^2/_3$

<u>एक आवृति की चौगुन</u> – $^{14}/_4 = 3\frac{2}{4}$ मात्रा की होगी एवं $11\frac{2}{4}$ मात्रा से आरम्भ कर सम पर आएगी।

11	12	13	14	
ऽऽकधि	टधिटधा	ऽगतिट	तिटताऽ	क
3				X

<u>आड की लयकारी</u> – धमार ताल की आड लयकारी $14 \times \frac{2}{3} = \frac{28}{3} = 9\frac{1}{3}$ मात्रा में आएगी एवं $4\frac{2}{3}$ मात्रा के बाद आरम्भ कर सम पर आऐगी।

	6	7	8	9	10	11	12	13	14	
12क	ऽधिऽ	टऽधि	ऽटऽ	धाऽऽ	ऽगऽ	तिऽट	ऽतिऽ	टऽता	ऽऽऽ	क
	0		3			4				X

$^2/_3$ —— 1 2 | क —— $^1/_3$

धमार ताल के ठेके में सातवीं मात्रा एवं चौदवीं मात्रा को 'ऽ' चिन्ह से दिखाई गई हैं। आड लयकारी में इसके आगे पीछे अवग्रह प्रयोग किया गया है। अतः विद्यार्थी इससे भ्रतिम न हो कि 'धा' के पश्चात तीन अवग्रह लिखे गये हैं एवं अन्तिम मात्रा के ता के पश्चात भी तीन अवग्रह है। कुआड एवं बिआड लयकारी में इसी प्रकार अवग्रह का प्रयोग किया जाएगा।

3.9 नौ मात्रा की ताल में लयकारी

पखावज पर बजाये जाने वाला ठेका :—

धा	देत	देत	थूं	थूं	तिट	कत	गदी	गिन	धा
×	2	3	4	0	5	0	6	0	×

तबले पर बजाए जाने वाला ठेका :—

धि	ना	तिरकिट	तू	ना	क	ता	धिं	ना	धि
×	2	3	4	0	5	0	6	0	×

एक आवृति की दुगुन – $^9/_2 = 4\frac{1}{2}$ मात्रा की होगी।

5	6	7	8	9	
ऽधि	नातिरकिट	तूना	कता	धिना	धि
0	5	0	6	0	×

एक आवृति की तिगुन :—

7	6	8	
धिनातिरकिट	तूनाक	ताधिना	धि
0	6	0	×

एक आवृति की चौगुन – $^9/_4 = 2\frac{1}{4}$ मात्रा की होगी एवं $6\frac{3}{4}$ मात्रा के बाद आरम्भ कर सम पर आएगी।

7	8	9	
ऽऽऽधि	नातिरकिटतूना	कताधिना	धि
0	6	0	×

आड की लयकारी – आड $9 \times {}^2/_3 = 6$ मात्रा की होगी

4	5	6	7	8	9	
धिऽना	ऽतिरकिट	तूऽना	ऽकऽ	ताऽधिं	ऽनाऽ	धि
4	0	5	0	6	0	×

3.10 चारताल में लयकारी

मात्रा – 12, विभाग – 6, ताली – 1, 5, 9 व 11 पर, खाली – 3 व 7 पर

चारताल का ठेका

धा	धा	दिं	ता	किट	धा	दिं	ता	तिट	कता	गदि	गन	धा
X		0		2		0		3		4		×

चारताल में लयकारी एकताल की लयकारी की भांति ही लिपिबद्ध होगी।

3.11 रुपक ताल में लयकारी

मात्रा – 7, विभाग – 3, ताली – 4 व 6 पर, खाली – 1 पर

<u>रुपक ताल का ठेका</u>

ती	ती	ना	धी	ना	धी	ना	ती
0			1		2		0

<u>एक आवृति की दुगुन</u> – $3\frac{1}{2}$ मात्रा में आएगी एवं $3\frac{1}{2}$ मात्रा के बाद आरम्भ कर सम पर आएगी।

4	5	6	7	
ऽती	ती ना	धी ना	धी ना	ती

<u>एक आवृति की तिगुन</u> – $\frac{7}{3} = 2\frac{1}{3}$ मात्रा में आएगी

5	6	7	
ऽ ऽ ती	ती ना धी	ना धी ना	ती

<u>एक आवृति में चौगुन</u> – $\frac{7}{4} = 1\frac{3}{4}$ मात्रा में आएगी

6	7
ऽ ती ती ना	धी ना धी ना

<u>आड की लयकारी</u> – $7\times\frac{2}{3} = 4\frac{2}{3}$ मात्रा में आएगी एवं तीसरी मात्रा से आरम्भ कर सम पर आएगी।

1	2	3	4	5	6	7	
ती	ती	ऽ ती ऽ	ती ऽ ना	ऽ धी ऽ	ना ऽ धी	ऽ ना ऽ	ती

<u>अन्य लयकारी</u> – आपने दुगुन, तिगुन, चौगुन, आड़, कुआड एवं बिआड लयकारी का अध्ययन किया एवं कुछ तालों की लयकारी किसी अन्य ताल की एक आवृति में भी प्रयोग की जा सकती है जैसे आडाचार ताल की दुगुन रूपक ताल की एक आवृति में, गजझम्पा ताल की आड झपताल की एक आवृति में, चौदह मात्रा की ताल की बिआड कहरवा ताल की एक आवृति में आती है। परन्तु इसके अतिरिक्त भी लयकारी सम्भव है जैसे तीनताल की एक आवृति को एकताल की एक आवृति में एवं एकताल की एक आवृति को तीनताल की एक आवृति में प्रयोग करना। अतः जिस ताल में लिखा जाना है उसको बटा में नीचे एवं जिस ताल को लिखना है उसको बटा में ऊपर रखकर पूर्व में बताई गई विधि द्वारा किसी ताल को दूसरी ताल में लिखा जाता है।

<u>उदाहरण–:</u> तीनताल में एकताल– $\frac{12}{16} = \frac{3}{4}$

एकताल में तीनताल– $\frac{16}{12} = \frac{4}{3}$

उदाहरण–: तीनताल में एक ताल–:

धिंऽऽ	ऽधिंऽ	ऽऽधा	ऽगेऽ	तिरकि	टतूऽ	ऽऽना	ऽऽऽ	
x				2				
कऽऽ	ऽताऽ	ऽऽधा	ऽगेऽ	तिरकि	टधिंऽ	ऽऽना	ऽऽऽ	धा
0				3				x

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. तीनताल की आड़ लयकारी लिपिबद्ध कीजिए।
2. एकताल की दुगुन, तिगुन व चौगुन लयकारी लिपिबद्ध कीजिए।
3. आडाचारताल की एक आवृति की तिगुन कितनी मात्रा की होगी एवं कितनी मात्रा पर आरम्भ करने से सम पर आएगी?
4. आडाचार ताल की एक आवृति को रूपक ताल की एक आवृति में लिखिए।

3.12 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप पाठ्यक्रम की तालों को ठेकों एवं उनको विभिन्न लयकारी (दुगन, तिगुन, चौगुन व आड) में लिपिबद्ध करने के विषय में जान चुके होंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप लयकारी को भली–भांति समझ चुके होंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप लयकारी का प्रयोग अपने वादन(एकल वादन व संगत) में करने में सक्षम होंगे जिससे आपका वादन प्रभावशाली होगा। इससे आप लयकारी को बोलने एवं बजाने में भी सक्षम होंगे। तबले की तालों के ठेकों को विभिन्न लयकारी में लिपिबद्ध करने एवं उसके क्रियात्मक स्वरूप को तबले में प्रस्तुत कर पायेंगे।

3.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वसन्त, *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. श्रीवास्तव, श्री गिरीश चन्द्र, *ताल परिचय,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।

3.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम की किन्हीं दो तालों के ठेकों को दुगुन, तिगुन, चौगुन व आड़ सहित लिपिबद्ध कीजिए।